हिन्दी सन्त-काव्य में अप्रस्तुत-योजना

इलाहाबाद विश्वविद्यालय की

डी० फिल्० उपाधि के लिए प्रस्तुत

शोध-प्रबन्ध

•

निर्देशक

डॉ० पारसनाथ तिवारी

•

प्रस्तुतकर्त्री

दीपिका बनर्जी

•

हिन्दी विभाग

इलाहाबाद विश्वविद्यालय

इलाहाबाद

१९७५

प्राक्कथन

इधर कुछ वर्षों से सन्तकाव्य के विविध पक्षों पर शोधकार्य हुआ है, किन्तु काव्य की दृष्टि से सन्त कवियों का योगदान उपेक्षित रहने के कारण काव्यशास्त्रीय दृष्टि से इसका अध्ययन बहुत कम हुआ है और अप्रस्तुतयोजना की दृष्टि से तो अभी तक सन्तकाव्य पर कोई शोधकार्य हुआ ही नहीं था । कुछ समय पूर्व डा० विद्याधर ने जायसी साहित्य की अप्रस्तुतयोजना पर शोधकार्य प्रस्तुत किया जिसे देखकर मुझे भी 'सन्तकाव्य में अप्रस्तुतयोजना' विषय पर शोधकार्य करने की प्रेरणा मिली । प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध उसी प्रेरणा के परिणामस्वरूप है ।

अप्रस्तुतयोजना विषय पर संस्कृत और हिन्दी साहित्य में कुछ कार्य हुए हैं । आधुनिक हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में इस विषय पर जो कार्य हुए हैं, वे चित्रविधान और अलंकारविधान के नाम से किए गए हैं । अप्रस्तुतयोजना पर जो कार्य हुए हैं, वे इस प्रकार हैं :—

डा० एस०डी० पराडकर : सिमिलीज इन मनुस्मृति
जे० गोंड : रिमार्क्स आन सिमिलीज इन संस्कृत लिटरेचर
के० चेलप्पन पिल्लइ : सिमिलीज आफ कालिदास
शशिभूषण गुप्त : उपमा कालिदासस्य
श्रीमती हीरा ओझा : रामचरितमानस में उपमान
पं० रामदहिन मिश्र : काव्य में अप्रस्तुतयोजना
डा० जगदीशनारायण त्रिपाठी : आधुनिक हिन्दी कविता में अलंकारविधान
डा० रामयतन सिंह भ्रमर : आधुनिक हिन्दी कविता में चित्रविधान
डा० रामकुमारी मिश्र : मध्ययुग के हिन्दी कृष्ण काव्य में अप्रस्तुतयोजना

सूरसागर के अप्रस्तुतों पर शोधकार्य हो रहा है ।

कुछ विद्वानों ने तो सन्तकवियों को कवि मानने में आपत्ति उठायी है । इन लोगों ने विशुद्ध काव्यशास्त्रीय धरातल पर रखकर सन्तों की कटु आलोचना की है,क्योंकि इन कवियों की रचनाओं में उन्हें काव्यतत्वों के दर्शन नहीं होते । परन्तु धारणाएं सर्वथा भ्रान्त सिद्ध होती हैं । सन्त भी कवि हैं और उनकी रचनाओं में काव्यतत्व के दर्शन अवश्य होते हैं । ये सन्त जनता के कवि थे,अपनी वाणियों के माध्यम से इन सन्तों ने अपने भावों एवं विचारों को जनसामान्य तक सहज ही पहुंचा दिया है । ऐसा करते समय उनकी रचनाओं में काव्यतत्व स्वयं ही अत्यन्त स्वाभाविक रूप में आ गए हैं । परिनिष्ठित भाषा का आश्रय न लेकर रस और अलंकारों को आयासपूर्वक लाकर चमत्कारपूर्ण काव्यरचना इन सन्तों ने नहीं की,किन्तु उनकी वाणियों में सौन्दर्यसृष्टि का अभाव नहीं है । सन्तों ने एक ओर तो निर्भीकतापूर्वक सत्य का निरूपण किया है और दूसरी ओर प्रेम-भक्ति जैसे मार्मिक प्रसंगों की अवतारणा की है, जिनमें कोमल एवं भावनाओं और कल्पनाओं के दर्शन होते हैं । सन्तकवि सत्य एवं सौन्दर्य को एक साथ लेकर चले हैं । वस्तुतः इन कवियों ने धर्म,दर्शन,नीति, समाज तथा साहित्य को नवीन दृष्टि प्रदान की है। सन्तकाव्य के रचयिताओं ने जनभाषाओं के महत्व की वृद्धि की, इन्हीं भाषाओं के माध्यम से देश की अशिक्षित जनता तक आदर्श जीवन का सन्देश पहुंचाया । सरलता,स्पष्टता,निर्भीकता,सहृदयता के कारण ये सन्त जनसाधारण के कवि बनकर सदैव लोकप्रिय रहेंगे ।

प्रस्तुत प्रबन्ध में सन्तकवियों की रचनाओं का अप्रस्तुतयोजना की दृष्टि से अध्ययन किया गया है । इसमें यह देखने का प्रयास किया गया है कि सन्तकवियों की वाणियों में काव्य किस परिमाण में है और जो अलंकार अपने स्वाभाविक रूप में स्वयं ही आ गए हैं, उनमें अप्रस्तुतविधान किस प्रकार का है । परम्पराप्रचलित तथा दैनिक जीवन से सम्बद्ध मौलिक दोनों ही प्रकार के अप्रस्तुतों का प्रयोग सन्तकवियों ने किया है, और सच बात तो यह है कि इन अप्रस्तुतों ने सन्तकाव्य को अधिक सरस,आकर्षक एवं प्रभावपूर्ण बना दिया है ।

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध में सात अध्याय हैं । प्रथम अध्याय में काव्य के विभिन्न तत्वों की व्याख्या की गई है । इसमें काव्यलक्षण,काव्यहेतु,सौन्दर्य, प्रतिभा,अनुभूति,अभिव्यक्ति, भाव, कल्पना आदि विषयों पर अत्यन्त संक्षेप में

विचार किया गया है । द्वितीय अध्याय में अप्रस्तुतयोजना का तात्पर्य, उपमान, उपमेय तथा अप्रस्तुतयोजना का काव्य, भाषा, अलंकार, भाव, कल्पना, बिम्ब, प्रतीक आदि से सम्बन्ध इत्यादि विषयों का चर्चा की गई है । इनके पश्चात् तृतीय अध्याय में सन्तकाव्य तथा सन्तकाव्य-परम्परा पर संक्षेप में प्रकाश डालते हुए कुछ प्रतिनिधि सन्त कवियों की जीवनी तथा उनकी रचनाओं का परिचय दिया गया है ।

चतुर्थ अध्याय में सन्तकाव्य में प्रयुक्त उपमानों या अप्रस्तुतों का वर्गीकरण किया गया है । अप्रस्तुतों को आधार बनाकर वस्तुपरक दृष्टि से यह वर्गीकरण किया गया है । यह वर्गीकरण चार आधारों पर किया गया है, जो इस प्रकार हैं— प्रकृति वर्ग, मानव वर्ग, पशु-पक्षी एवं जीव वर्ग तथा काल्पनिक वर्ग । प्रकृति वर्ग को नौ कोटियों में विभक्त किया गया है, मानव वर्ग बारह कोटियों में विभक्त है और पशु-पक्षी जीव वर्ग की तीन कोटियां हैं । इन कोटियों की कुछ उपकोटियां भी निर्धारित की गई हैं । सन्तकवियों ने `प्रकृति जगत्` और `मानव जगत्` से अपेक्षाकृत अधिक अप्रस्तुतों का चयन किया है ।

पंचम अध्याय में सन्तकाव्य में प्रयुक्त अप्रस्तुतों का भाषावैज्ञानिक दृष्टि से अध्ययन किया है । इस अध्याय में सन्तकवियों की भाषा का अप्रस्तुतयोजना से सम्बन्ध, कवियों का शब्दप्रयोग, शब्दों का परिवर्तित रूप, शब्दावली के विभिन्न रूप, सर्वनाम, विशेषण, क्रिया, शब्द और अर्थ का सम्बन्ध, अप्रस्तुतों की अर्थगत योजना, विभिन्न शब्दशक्तियां, वक्रोक्ति, प्रतीक, लोकोक्ति, सूक्ति, सन्त कवियों के भाषाप्रयोग की विशेषताओं आदि की चर्चा की गई है । इसके पश्चात् षष्ठ अध्याय में अप्रस्तुतों का काव्यशास्त्रीय परिशीलन किया गया है । जिसके अन्तर्गत अलंकार, रस, ध्वनि, प्रतीक, सादृश्य, कविप्रसिद्धियां, अप्रस्तुतयोजना का उपमा से सम्बन्ध, सन्तकवियों द्वारा प्रयुक्त विभिन्न अलंकारों के उदाहरण, इन अलंकारों की विशेषताओं आदि का अध्ययन किया गया है ।

सप्तम अध्याय में सन्तकाव्य के अप्रस्तुतों का सांस्कृतिक दृष्टि से मूल्यांकन किया गया है । संस्कृति, सभ्यता, कला, साहित्य आदि विषयों का

संक्षेप में अध्ययन करते हुए सन्तकाव्य के अप्रस्तुतों का सांस्कृतिक दृष्टि से महत्त्व निर्धारित किया गया है, अन्त में चारों वर्गों के आधार पर कुछ महत्त्वपूर्ण अप्रस्तुतों के उदाहरण दिए गए हैं ।

उपसंहार में अप्रस्तुतयोजना की दृष्टि से सन्तकाव्य का मूल्यांकन किया गया है । तत्पश्चात् विषय के स्पष्टीकरण की दृष्टि से दो परिशिष्ट दिए गए हैं । परिशिष्ट--१ में अप्रस्तुतों की विस्तृत वर्गीकृत सूची अकारादि क्रम से दी गई है । परिशिष्ट--२ में सन्तकाव्य में आए हुए अलंकारों की सूची दी गई है । अन्त में सहायक पुस्तकों की सूची है ।

सन्तकवियों की अप्रस्तुतयोजना का अध्ययन करने के पश्चात् इन कवियों के व्यक्तित्व का परिचय अधिक पूर्णरूप में प्राप्त हो जाता है । इससे सन्तों की रुचि, भावधारा, मानवजीवन का अनुभव, सौन्दर्य-बोध, भावाभिव्यक्ति आदि का ज्ञान प्राप्त हो जाता है । प्रस्तुत प्रबन्ध में विशदरूप से सन्तों की काव्यप्रतिभा को समझने का प्रयास किया गया है । उनकी भावुकता, सरलता, निर्भीकता, स्पष्टवादिता आदि गुणों के कारण सन्तकाव्य में कुछ ऐसी विशेषतायें आ गई हैं, जो उसे दूसरों से पृथक् कर देती हैं । इन कवियों ने अपने समग्र चिन्तन और अनुभव को सामान्य जन के समक्ष प्रस्तुत करने के लिए जिस वाणी का आश्रय लिया था, वह अत्यन्त सहजरूप से स्वयं ही अलंकृत हो गई, उसके लिए उन्हें किसी प्रकार का प्रयत्न नहीं करना पड़ा । सन्तकवि बाह्य प्रकृति से और जनजीवन से भी भली भांति परिचित थे, इसलिए उन्होंने इन दोनों ही क्षेत्रों से अपने अप्रस्तुतों का चयन किया है । कुछ स्थलों पर परम्परागत प्रतीकों को भी अपनाया गया है । साहित्यशास्त्र का ज्ञान तो सन्तकवियों को न था, इसलिए नियमों में बंधकर इन लोगों ने काव्यसृष्टि नहीं की, किन्तु निर्भीकतापूर्वक सरल भाषा का आश्रय लेकर उन्मुक्त हृदय से जिन वाणियों की सर्जना सन्तकवियों ने की उनका हिन्दी साहित्य में कुछ कम महत्त्व नहीं है ।

अन्त में मैं उन सभी के प्रति अपना आभार प्रकट करती हूं, जो मेरे अध्ययन में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्षरूप से सहायक हुए हैं । उन विद्वान्-लेखकों के

के प्रति कृतज्ञता-प्रकाशन आवश्यक है, जिनकी पुस्तकों से मैं लाभान्वित हुई हूं ।

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध के निर्देशक डा० पारसनाथ तिवारी जी के प्रति मैं बहुत अधिक कृतज्ञ हूं, जिन्होंने अपना बहुमूल्य समय देकर प्रारम्भ से ही इस प्रबन्ध को उपयुक्त रूप प्रदान करने में मेरी सहायता की है । अनेक महत्वपूर्ण सुझाव देकर उन्होंने प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध के महत्व की वृद्धि की है । डा० विद्याधर जी तिवारी के प्रति भी मैं अपना आभार व्यक्त करती हूं, जिनके शोध-प्रबन्ध को आधार बनाकर मैंने यह शोधकार्य सम्पन्न किया है ।

प्रयाग विश्वविद्यालय के पुस्तकालय से भी मैंने बहुत अधिक सहायता प्राप्त की है । अनेक पुस्तकों की विशेष सुविधा प्राप्त होने के कारण शोध-कार्य में विशेष सहायता मिली है । टंकित प्रतियों के मिलान करने में मेरी बहन व भिताली बनर्जी ने विशेष सहयोग दिया है, जो मेरे स्नेह की स्वतः अधिकारिणी हैं ।

जिज्ञासु एवं सन्तसाहित्य के विशेषज्ञों से आशा है कि वे प्रस्तुत प्रबन्ध की त्रुटियों को उदारतापूर्वक क्षमा करते हुए इसके उपयोगी तत्वों को ही ग्रहण करेंगे । भारतीय संस्कृति तथा साहित्य को सन्तों का जो महनीय योगदान प्राप्त हुआ है, उसके एक विशिष्ट पक्ष के मूल्यांकन में यदि मेरे इस प्रबन्ध से कुछ भी सहायता मिलेगी तो मैं अपना परिश्रम सार्थक समझूंगी ।

दीपिका बनर्जी
(दीपिका बनर्जी)
हिन्दी विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय

दिनांक, २७ अक्टूबर, १९७४ई०

--०--

अनुक्रम

विषय　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　पृष्ठसंख्या

विषय	पृष्ठसंख्या

अध्याय — १

-0-

काव्य की व्याख्या

काव्य-लक्षण

संस्कृत काव्य-शास्त्र के अनेक ऐसे आचार्य हुए हैं, जिन्होंने विस्तारपूर्वक काव्य-लक्षण पर विचार किया है। प्राय: सभी आचार्य इस विषय पर विचार प्रकट करते समय अपने-अपने सम्प्रदायों या वादों से स्पष्ट रूप से प्रभावित हुए हैं। इन आचार्यों में सर्वप्रथम हम भामह का काव्य-लक्षण ले सकते हैं।

भामह के काव्य-लक्षण पर दृष्टि डालने से पूर्व यह ध्यान रखना चाहिए कि वे अलंकारवादी आचार्य हैं। भामह कहते हैं --'शब्दार्थौ सहितौ काव्यम्'[१]। अर्थात् शब्द, अर्थ मिलकर काव्य है। शब्द और अर्थ से अभिप्राय शब्दालंकार, अर्थालंकार से है। भामह के मत में शब्दालंकार तथा अर्थालंकार दोनों ही मिलकर काव्य हैं[२]।

---

१ भामह : 'काव्यालंकार' १।१६।

२ डा० प्रेमस्वरूप गुप्त : 'रसगंगाधर का शास्त्रीय अध्ययन' २।२५।

भामह के पश्चात् दण्डी आते हैं । इन्होंने कहा है -- 'शरीरं तावदिष्टार्थव्यवच्छिन्ना पदावली'[1] । काव्य का शरीर तो इष्ट अर्थ से युक्त पदावली है । डा० प्रेमस्वरूप गुप्त के अनुसार दण्डी के इष्टार्थ की सीमा अर्थालंकारों तक ही सीमित है । इस प्रकार दण्डी के अनुसार अर्थालंकार-सौन्दर्य से विशिष्ट पदावली काव्य है ।

वामन ने गुण और अलंकार से युक्त शब्दार्थ को काव्य माना है । उन्होंने काव्य में सौन्दर्य के महत्त्व को स्वीकार किया है । आचार्य रुद्रट 'रचयेत् तमेवशब्दं रचनायाय करोति चारुत्वम्'[2] के द्वारा सुन्दर शब्द के प्रयोग द्वारा सुन्दर काव्य की रचना करने का आदेश देते हैं । कुन्तक ने मर्मस्पर्शिनी वक्रतामय,कवि-कौशल-समन्वित रचना में स्थित शब्द और अर्थ को काव्य माना है ।[3]

सुप्रसिद्ध आचार्य मम्मट ने अपने 'काव्य-प्रकाश' में प्राचीन और नवीन आचार्यों के द्वारा प्रतिपादित काव्य-लक्षणों का सुन्दररूप से समन्वय किया है । 'तददोषौ शब्दार्थौ सगुणावनलंकृती पुनः क्वापि ।'[4] अर्थात् वे शब्द और अर्थ काव्य कहे जाते हैं, जो दोष-रहित हों, गुणयुक्त हों-- अलंकृत हों या न हों । काव्य-प्रकाशकार द्वारा प्रतिपादित यह काव्य-लक्षण अपने में उत्तम,मध्यम और अधम तीनों प्रकार के काव्यों को लक्षित करता है ।

श्री विश्वनाथ कविराज ने अपने 'साहित्यदर्पण' में रसात्मक वाक्य को काव्य माना है -- ' वाक्यं रसात्मकं काव्यम्'[5] । इस लक्षण के

---

१ दण्डी : 'काव्यादर्श' १।१०।
२ रुद्रट : 'काव्यालंकार' २।१।
३ कुन्तक : 'वक्रोक्तिजीवित' प्रथम उन्मेष,कारिका ७
४ मम्मट : 'काव्यप्रकाश', प्रथम उल्लास,पृ०१३ ।
५ विश्वनाथ : 'साहित्यदर्पण', परिच्छेद १,पृ० २६ ।

द्वारा विश्वनाथ ने काव्य में रस के महत्त्व का प्रतिपादन किया है ।

`रसगंगाधर` में पण्डितराज जगन्नाथ ने रमणीय अर्थ का प्रतिपादन करने वाले शब्द को काव्य माना है -- `रमणीयार्थप्रतिपादक: शब्द: काव्यम्`[1] । जगन्नाथ के काव्य-लक्षण का अनेक विद्वानों ने स्वागत किया है । डा० प्रेमस्वरूप गुप्त कहते हैं -- पण्डितराज के काव्य-लक्षण में आधुनिक आवश्यकताओं को पूर्ण करने की क्षमता बना हुई है ।

हिन्दी के रीतिकालीन आचार्यों में आचार्य चिंतामणि, श्रीपति, सोमनाथ, भिखारीदास आदि प्रमुख आचार्यों ने काव्य-लक्षण देते समय स्पष्ट रूप से संस्कृत काव्यशास्त्रियों का अनुकरण किया है । भिखारीदास ने तो काव्य-लक्षण में अलंकार, रस, ध्वनि और गुण -- सभी का समावेश किया है । देव ने शब्द और अर्थ के सौन्दर्य को काव्य माना है --

अर्थ शब्द सुन्दर सरस प्रगट भाव रस प्रीति
उत्तम काव्य सु सब गुनन आगर नागर रीति ।[2]

आधुनिक विद्वानों में पण्डित महावीरप्रसाद द्विवेदी ने काव्य में चमत्कार को आवश्यक माना है । चमत्कार के अभाव में विलक्षणता नहीं आ सकती और न आनन्द की प्राप्ति ही हो सकती है । द्विवेदी जी के शब्दों में --`जिस रचना से चमत्कारजन्य आनन्द मिलता है, उसे काव्य कहते हैं ।`

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने कविता के विषय में इसप्रकार अपना मत व्यक्त किया है --`हृदय की मुक्तावस्था के लिए मनुष्य की वाणी जो शब्द-विधान करती है, उसे कविता कहते हैं[3] ।`

डा० रामलाल सिंह आचार्य शुक्ल की काव्य-परिभाषा के विषय में कहते हैं --`शुक्ल जी की काव्य-परिभाषा रसवाद के अनुसार है । उसमें भाव तथा कला-पक्ष दोनों का समन्वय है, किन्तु उसमें भाव-पक्ष

---

१ पण्डितराज जगन्नाथ : `रसगंगाधर`,पृ०४-५ ।
२ देव : `शब्द रसायन`,पृ०८४ ।
३ रामचन्द्र शुक्ल : `चिन्तामणि`,पहला भाग,पृ०१६३ ।

साध्यरूप में तथा कला-पक्ष साधन रूप में प्रयुक्त हुआ है।[1]

शुक्ल जी भाव या अनुभूति को काव्य के लिए आवश्यक मानते हैं। भाव के अभाव में विचित्रता युक्त काव्य को वे उत्तम काव्य नहीं मानते हैं।[2]

श्री जयशंकर 'प्रसाद' के अनुसार काव्य की परिभाषा इस प्रकार है --'काव्य आत्मा की संकल्पात्मक अनुभूति है, जिसका सम्बन्ध विश्लेषण, विकल्प या विज्ञान से नहीं है।'

श्री रामदहिन मिश्र कहते हैं --'सहृदयों के हृदयों को आह्लादक रुचिर रचना काव्य है।' प्रसिद्ध कवयित्री महादेवी वर्मा अपना मत प्रकट करते हुए कहती हैं -- 'कविता कवि-विशेष की भावनाओं का चित्रण है और वह चित्रण इतना ठीक है कि उससे वैसी ही भावनायें किसी दूसरे के हृदय में आविर्भूत हो जाती हैं।'

डा० नगेन्द्र रससिद्धान्त का आश्रय लेते हैं। उनके अनुसार 'भारतीय काव्यशास्त्र में रससिद्धान्त सबसे प्राचीन और सबसे प्रधान काव्य-सिद्धान्त है। अलंकार, रीति, ध्वनि, वक्रोक्ति तथा औचित्य सिद्धांतों का विकास इसके पश्चात् और इसी के सन्दर्भ में हुआ है।[3]' वह विभावानुभाव व्यभिचारि संयुक्त स्थायी अर्थात् परिपाक अवस्था का ही वाचक नहीं है, वरन् उसमें काव्यगत सम्पूर्ण भावसम्पदा का अन्तर्भाव है। अपारिभाषिक रूप में वह काव्यगत भाव-सौन्दर्य का पर्याय है। शब्दार्थगत चमत्कार भाव की भूमिका पर शब्दार्थ के माध्यम से भाव के आस्वाद का अथवा भाव की भूमिका पर शब्दार्थ के सौन्दर्य का आस्वाद ही वस्तुतः रस है।[4]' पाश्चात्य आलोचकों के काव्य सम्बन्धी विचार संक्षेप में इसप्रकार हैं--

---

1 डा० रामलाल सिंह : 'आचार्य शुक्ल के समीक्षा सिद्धान्त', पृ०२३३।
2 रामचन्द्र शुक्ल : 'चिन्तामणि', पहला भाग, पृ०२३०, २३२।
3,4 डॉ. नगेन्द्र : 'रससिद्धान्त', पृ०३२०, ३२१।

प्लेटो ने काव्य को कला माना है । परन्तु उन्होंने काव्य को हेय दृष्टि से देखा है । काव्य अनुकरण का भी अनुकरण है,इसलिए त्याज्य है । अरस्तू ने भी काव्य को कला बताया है । अनुकरण को काव्य की आत्मा माना है । क्रोचे ने अभिव्यंजना को काव्य की आत्मा कहा है और काव्य में कल्पना के महत्व का प्रतिपादन किया है । टी०एस० इलियट ने काव्य के लिए परम्परा का महत्व स्वीकार किया है । उसने कविता को भाव-प्रधान माना है ।सर-फिलिप सिडनी ने भी काव्य को अनुकरण ही माना है । उनके अनुसार काव्य का लक्ष्य आनन्द और उपदेश देना है ।

सुप्रसिद्ध कवि वर्ड्सवर्थ ने शान्ति के क्षणों में स्मृत भाव तथा प्रबल मनोवेगों के सहज उच्छलन को काव्य कहा है[1] । कोलरिज ने उत्तम शब्दों की उत्तम रचना[2] को काव्य माना है । शेली के अनुसार काव्य भावों तथा कल्पनाओं की अभिव्यक्ति है । इस प्रकार हम देखते हैं कि पाश्चात्य आलोचकों ने काव्य को कला माना है और काव्य में अनुकरण, कल्पना तथा भावों के महत्व को स्वीकार किया है ।

काव्य और सौन्दर्य

संस्कृत तथा हिन्दी के काव्यशास्त्रियों के मतों का अवलोकन करने के पश्चात् यह पता चलता है कि प्राय: सभी आचार्यों ने काव्य में सौन्दर्य तत्व के महत्व को स्वीकार किया है । रुद्रट,वामन, राजशेखर, कुन्तक, जगन्नाथ आदि आचार्यों ने स्पष्टरूप से सौन्दर्य को काव्य के लिए आवश्यक माना है । आचार्यों ने रमणीय तत्व का काव्य-लक्षण में महत्व प्रतिपादित किया है । देव ने भी सौन्दर्य के महत्व का उल्लेख किया है । सौन्दर्ययुक्त काव्य को ही उत्तम काव्य माना जाता है ।

---

१ 'दि स्पान्टेनियस ओवरफ्लो आफ पावरफुल फीलिंग्स'--वर्ड्सवर्थ
२ 'दि बेस्ट वर्ड्स इन दि बेस्ट आर्डर ' -- कोलरिज .

डा० रघुवंश ने काव्य को सामंजस्य माना है । वे कहते हैं कि `काव्य सौन्दर्य-व्यंजना है । सौन्दर्य कौशल का निर्भर साधना में कला को जन्म देता है और कला जब सौन्दर्य के उपकरणों से समन्वय उपस्थित कर लेती है, वह काव्य - सौन्दर्य हो जाता है । ..... काव्य में ध्वनि या व्यंग्य का आश्रय लेना पड़ता है । यह ध्वनि जब सौन्दर्य की व्यंजना- करती है, तभी काव्य है[१] ।` साहित्यिक अनुभूति रागबोधक होती है । उस अनुभूति में रागतत्व तथा बोध-तत्व विभिक्त हो जाते हैं, अलग नहीं । इस प्रकार काव्य कवि की स्वानुभूति है, भाषा के माध्यम से उपस्थित की हुई रूपात्मक अभिव्यक्ति है और इस काव्य की अभिव्यक्ति का अर्थ है, संवेदनशीलता । काव्यसौन्दर्य,अनुभूति, अभिव्यक्ति तथा प्रभावात्मक संवेदना तीनों से ही सम्बन्धित है[२] ।

काव्य-शास्त्र के सभी सम्प्रदायों में अनुभूति और अभिव्यक्ति के द्वारा सौन्दर्य बोधात्मक पक्ष को ही व्यक्त किया गया है ।काव्य में सौन्दर्य का बोधात्मक पक्ष अलंकार, रीति, वक्रोक्ति, ध्वनि, रस के माध्यम से अभिव्यक्त हुआ है । काव्य का सौन्दर्य भाव और संवेदना से सम्बद्ध है ।अतः काव्य में रमणीयता लाने के लिए कवि अलंकारों का आश्रय लेता है ।

काव्य और अलंकार

राजशेखर ने अलंकार -शास्त्र को वेद का सातवां अंग माना है । वेदों के अर्थ को भली भांति समझने के लिए अलंकार-शास्त्र का ज्ञान अत्यावश्यक है[३] ।

वैदिककाल से ही अलंकारों का प्रयोग किसी न किसी रूप में होता रहा है । उपमा,रूपक,यमक अलंकारों का प्रयोग ऋग्वेद के मंत्रों में हुआ है । निरुक्त, शतपथब्राह्मण, छान्दोग्यउपनिषद् में अलंकार शब्द आया है ।

---

१ डा० रघुवंश : `प्रकृति और काव्य`, पृ०६५ ।

२ वही पृ०६६ ।

३ राजशेखर : `काव्यमीमांसा`, दि०अ०,पृ० ६ ।

अलंकार काव्यसौन्दर्य को वृद्धि करने में अत्यधिक सहायक सिद्ध होते हैं । भामह, दण्डी, वामन, रुद्रट ,आनन्दवर्धन, कुन्तक, मम्मट, जयदेव, अप्पयदीक्षित, अग्निपुराणकार, क्षेमेन्द्र आदि आचार्यों ने काव्य-सौन्दर्य के लिए अलंकारों के महत्व का प्रतिपादन किया है । आचार्य भामह का कथन है --`न कांतमपि निर्भूषं विभाति वनितामनम्` । जिसप्रकार आभूषणहीन स्त्री का मुख शोभित नहीं होता, उसी प्रकार अलंकारों के अभाव में काव्य शोभासम्पन्न नहीं कहला सकता । दण्डी काव्यादर्श में काव्य के शोभाकारक धर्मों को अलंकार कहते हैं । दण्डी ने अलंकारों को काव्य का सर्वस्व माना है ।

जयदेव उष्णता रहित अग्नि की कल्पना के समान अलंकारहीन काव्य की कल्पना को हास्यास्पद मानते हैं --

`अंगीकरोति य: काव्यं शब्दार्थावनलंकृती ।
असौ न मन्यते कस्मादनुष्णमनलंकृती ।।`

आचार्य वामन अलंकार को काव्य का प्रमुख तत्व मानते हुए कहते हैं --अलंकार सौन्दर्य का प्रतीक है तथा अलंकार से युक्त होने पर ही काव्य ग्रहण योग्य होता है ।`

आचार्य केशवदास ने `कविप्रिया` में अलंकारों के महत्व का प्रतिपादन किया है । उनके अनुसार --

`जदपि सुजाति सुलच्छनी, सुबरन सरस सुवृत्त ।
भूषन बिनु न बिराजई, कविता बनिता मित्त ।।`[१]

सर्वगुणों से युक्त कामिनी भूषण के अभाव में सुन्दर नहीं लगती, अलंकार के अभाव में काव्य भी शोभाहीन है । महाकवि देव अपने `शब्द रसायन` में कहते हैं--

---

१ केशवदास : `कविप्रिया`,पृ०५।१

`काव्य सार शब्दार्थ को, रस तिहि काव्यागार ।
सो रस बरसत भाव बस, अलंकार अधिकार ॥`[1]

पं० रामचन्द्र शुक्ल ने अलंकारों को वर्णन की चमत्कारपूर्ण प्रणालियां माना है । शुक्ल जी के अनुसार अलंकार सुन्दर अर्थ को और अधिक सुन्दर बनाते हैं[2]। शुक्ल जी काव्य का सौन्दर्यवर्द्धन करने के लिए अलंकार को काव्य के ही अन्तर से प्रकट होते हुए देखना चाहते हैं, न कि ऊपर से बलपूर्वक लादा हुआ । वे काव्य से अलंकार का सम्बन्ध आन्तरिक कोटि का मानते हैं, बाह्य नहीं ।

शुक्ल जी की दृष्टि में अलंकार चाहे अप्रस्तुत वस्तुयोजना के रूप में हों-- जैसे,उपमा,रूपक, उत्प्रेक्षा इत्यादि में, चाहे वाक्य-वक्रता के रूप में-- जैसे अप्रस्तुतप्रशंसा, परिसंख्या, व्याजस्तुति, विरोध इत्यादि में ; चाहे वर्ण-विन्यास के रूप में -- जैसे अनुप्रास में लाए जाएं, वे प्रस्तुत भाव या भावना के उत्कर्षसाधन का काम करते हैं । इनके सहारे कविता अपना प्रभाव बढ़ाती है ; वस्तुओं के रूप, गुण, क्रिया के बहुत बढ़ाकर इनका तीव्र अनुभव कराती है[3]। शुक्ल जी अलंकारों को काव्य का साध्य नहीं, साधन मानते हैं । इस प्रकार विभिन्न आचार्यों के मतों का अवलोकन करने के पश्चात् यह निष्कर्ष निकलता है कि अलंकारों के द्वारा ही काव्य का स्वरूप निखरता है,अत: काव्य-सौन्दर्य की वृद्धि में ये परम सहायक सिद्ध होते हैं । भामह, दण्डी, रुद्रट आदि के ग्रन्थों को देखने पर पता चलता है कि इस युग में अलंकारों को कितना अधिक महत्व प्रदान किया गया था । आचार्य विश्वनाथ `साहित्यदर्पण` में कहते हैं-- `जिस प्रकार आभूषण मनुष्य के शरीर की सुन्दर बनाते हैं, उसी प्रकार अलंकार भी काव्य के शब्द और अर्थ की सौन्दर्य की वृद्धि करते हुए रसों के प्रकाशन में सहायक सिद्ध होते हैं ।`

अलंकार काव्य में रमणीयता लाते हैं । काव्य-सौन्दर्य की वृद्धि करने के लिए अलंकार प्रमुख तत्व माने जाते हैं । काव्य और अलंकारों

---

१ केशव : `शब्दरसायन`,पृ०२८

२ पं० रामचन्द्र शुक्ल : `चिन्तामणि`,पहला भाग,पृ०२५१

३ वही : वही पृ०२५७

का परस्पर अत्यन्त घनिष्ठ सम्बन्ध है ।

काव्यहेतु

संस्कृत के प्रायः सभी आचार्यों ने काव्य-रचना के कारणों में व्युत्पत्ति अभ्यास तथा प्रतिभा को अप्रत्यक्ष या प्रत्यक्ष रूप में स्वीकार किया है । आचार्य भामह प्रतिभा को सर्वाधिक महत्त्व देते हुए कहते हैं कि उसके अभाव में काव्य-रचना असम्भव है । दण्डी यह मानते हैं कि व्युत्पत्ति और अभ्यास भी आवश्यक है, केवल प्रतिभा ही मूल कारण नहीं है । आचार्य वामन के काव्यहेतु अन्य आचार्यों से भिन्न अवश्य है, परन्तु इनके सभी हेतु व्युत्पत्ति,अभ्यास तथा प्रतिभा के ही अन्तर्गत आ सकते हैं । वामन व्युत्पत्ति को प्रमुख हेतु मानते हैं । आचार्य रुद्रट ने तीनों हेतुओं को मानकर प्रतिभा को प्रधानता दी है । राजशेखर शक्ति को काव्य का मूल हेतु मानते हैं, उसके पश्चात् प्रतिभा तथा व्युत्पत्ति को भी स्वीकार करते हैं । आचार्य मम्मट ने शक्ति,व्युत्पत्ति तथा अभ्यास तीनों को ही काव्य-हेतु माना है । पण्डितराज जगन्नाथ ने प्रतिभा को काव्य का साक्षात् कारण माना है ।

काव्य और प्रतिभा

काव्य-सृजन के लिए कवि में जन्मजात प्रतिभा का होना परमावश्यक है । प्रतिभा के अभाव में किसी कवि की रचना उतनी उत्कृष्ट कोटि की नहीं हो सकती है । अतः प्रायः सभी काव्याचार्यों ने कवि-प्रतिभा को बहुत अधिक महत्त्व प्रदान किया है । नवनवोन्मेषशालिनी प्रज्ञा को ही प्रतिभा कहते हैं, ऐसी प्रज्ञा के द्वारा त्रैकालिक विषयों का ज्ञान होता है । यह प्रज्ञा कवि में जन्म से ही अस्तित्व रखती है --

'स्मृतिर्व्यतीत-विषया मतिरागामिगोचरा
बुद्धिस्तात्कालिकी प्रोक्ता प्रज्ञा त्रैकालकी मता ।।
प्रज्ञा नवनवोन्मेषशालिनी प्रतिभामता ।'

(भट्टतौत)

भामह के अनुसार काव्य-रचना प्रतिभा के अभाव में असंभव है। प्रतिभाशाली कवि ही उत्कृष्ट काव्य-रचना में प्रवृत्त हो सकता है।

आचार्य दण्डी ने प्रतिभा को नैसर्गिक माना है --

'नैसर्गिकी च प्रतिभा श्रुतं च बहुनिर्मलम्।
अमन्दश्चाभियोगोऽस्याः कारणं काव्यसम्पदः॥'[1]

अग्निपुराणकार का सुदुर्लभ शक्ति से तात्पर्य प्रतिभा से ही है --

'नरत्वं दुर्लभं लोके विद्या तत्र सुदुर्लभा।
कवित्वं दुर्लभं तत्र शक्तिस्तत्र सुदुर्लभा॥'

अर्थात् कवि-प्रतिभा अत्यन्त दुर्लभ शक्ति है, जो सभी कवियों को नहीं मिलती। आचार्य रुद्रट ने प्रतिभा को शक्ति कहा है। उनका मत संक्षेप में इस प्रकार है -- 'जिसके कारण कवि के समाहित मन में शब्द-अर्थ के अनेक पद अपने आप प्रस्फुटित होते जाते हैं, वह शक्ति है। इसे ही दूसरे आचार्यों ने प्रतिभा कहा है। इसके दो प्रकार हैं -- (१) सहजात, (२) यत्न से प्राप्त उत्पाद्य। सहजात प्रतिभा ही श्रेष्ठ कवित्व शक्ति है।'[2]

वामन ने प्रतिभा को ही कवित्व का वास्तविक बीज माना है -- 'कवित्वबीजं प्रतिभानम्'[3]।

आनन्दवर्द्धन के मत में यदि कवि में प्रतिभा है तो उसे वर्ण्य-वस्तुओं की कमी नहीं। वह किसी भी विषय को उठाकर उसमें नवीनता ला सकता है --'न काव्यार्थविरामोऽस्ति यदि स्यात्प्रतिभा गुणः'[4]।'

'ध्वन्यालोकलोचन' में अभिनवगुप्त का यह कथन स्पष्टरूप से प्रतिभा के महत्त्व का प्रतिपादन करता है --'प्रतिभा अपूर्ववस्तुनिर्माणक्षमा प्रज्ञा:; तस्या विशेषो रसावेशवैशद्य सौन्दर्यकाव्यनिर्माणक्षमत्वम्।' डा० सत्यव्रतसिंह

---

१ दण्डी : 'काव्यादर्श' १।१०३।

२ डा० जयशंकर त्रिपाठी : 'दण्डी एवं संस्कृत काव्यशास्त्र का इतिहास-दर्शन' पृ०२५२।

३ वामन : 'काव्यालंकार' सूत्र १।३।१६।

४ आनन्दवर्धन : 'ध्वन्यालोक', पृ०५४७।४

'काव्य-प्रकाश' की भूमिका में कहते हैं --'अभिनवगुप्त के उपरोक्त कथन का तात्पर्य यही है कि काव्य की जननी 'प्रतिभा' है ।'

राजशेखर ने शक्ति को काव्य का मूल हेतु माना है । उनके अनुसार जो शब्दों के समूह को, अर्थसमूह को, अलंकारों एवं उक्तिमार्ग को तथा अन्यान्य काव्य-पदार्थों को, हृदय में प्रतिभासित करता है, उसे प्रतिभा कहते हैं । राजशेखर के अनुसार यह प्रतिभा दो प्रकार की होती है-- कारयित्री, भावयित्री । कारयित्री प्रतिभा कवि के लिए सहायक होती है ।

मम्मटाचार्य ने प्रतिभा के लिए शक्ति शब्द का प्रयोग किया है --'शक्ति: कवित्वबीजरूप: संस्कारविशेष: । यां विना काव्यं न प्रसरेत् प्रसृतं वा उपहसनीयं स्यात् ।' मम्मट ने स्पष्टरूप से कह दिया है -- शक्ति(प्रतिभा) के अभाव में काव्य-रचना हो ही नहीं सकती । प्रतिभा या शक्ति के बिना रचा हुआ काव्य उपहास के योग्य है । आनन्दवर्द्धन और अभिनवगुप्त ने भी प्रतिभा और शक्ति को एक ही माना है । अभिनवगुप्त ने स्पष्ट ही कहा है --

'शक्ति: प्रतिभानं वर्णनीयवस्तुविषयनूतनोल्लेखशालित्वम्'[1] ।

पण्डितराज जगन्नाथ के अनुसार काव्य बनाने के अनुकूल शब्दों और अर्थों की उपस्थिति का नाम प्रतिभा है । 'सा च काव्य-घटनानुकूल-शब्दार्थोपस्थिति:[2] ।'

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने भी प्रतिभा के महत्व को स्वीकार किया है । प्रतिभा के अभाव में काव्य का स्वरूप तो खड़ा किया जा सकता है, परन्तु उसमें जान नहीं आ सकता । यदि आई भी तो वह दुर्बल कोटि की होगी[3] ।

पाश्चात्य आलोचक यह मानते थे कि कवि-प्रतिभा दैवीशक्ति से ही प्राप्त की सकती है । सुकरात ने जिस विशिष्ट प्रकृति का उल्लेख किया है,

---

१ अभिनवगुप्त : 'ध्वन्यालोकलोचन',पृ०१२७।

२ जगन्नाथ : 'रसगंगाधर',पृ०८ ।

३ डा० रामलाल सिंह : 'आचार्य शुक्ल के समीक्षा सिद्धान्त',पृ०२३६ ।

वह प्रकृति प्रतिभा ही है, जो कि काव्य-हेतुओं में प्रमुख है । प्लेटो ने जिस मन:विक्षेप को काव्य का कारण माना है, वह भी प्रतिभा ही है । डा० नगेन्द्र के अनुसार प्राय: सभी काव्यशास्त्रियों ने प्रतिभा को महत्त्व प्रदान किया है । अत: काव्य-हेतुओं में प्रतिभा ही मुख्य हेतु है ।

डा० प्रेमस्वरूप गुप्त ने विभिन्न आचार्यों के मतों के आधार पर प्रतिभा के कार्यों पर प्रकाश डाला है -- प्रतिभा नूतन कल्पनाओं को जागृत करती है । कवि सौन्दर्य की अनुभूति करने लगता है और भावों में लीन होने की क्षमता प्राप्त करता है । प्रतिभा कल्पनाओं को गोचर रूप प्रदान करने में सहायक होती है । शब्द-चयन ,अर्थ-योजना, अलंकार तथा उक्ति प्रकारों के द्वारा प्रतिभा चित्रण को सजीव बनाती है । इस प्रकार प्रतिभा ही काव्य-रचना में सहायक सिद्ध होती है ।

सभी कवियों में समानरूप से प्रतिभा नहीं रहती है । कवि में जितनी अधिक प्रतिभा होगी, उसकी रचना उतनी ही अधिक सुन्दर और प्रभावपूर्ण होगी । विभिन्न आचार्यों के विचारों का अध्ययन करने के उपरान्त यह देखा जा सकता है कि काव्य-सृजन में कवि-प्रतिभा को कितना अधिक महत्त्व प्रदान किया गया है । प्रतिभा के अभाव में उत्कृष्ट कोटि की रचना प्राय: असम्भव ही लगती है । प्रतिभासम्पन्न कवि सुन्दरतम एवं नवीनतम कृतियों को सहृदय के समक्षप्रस्तुत करके उनको अमरता प्रदान करता है । प्रतिभा के द्वारा ही कवि असीम, अपरिमित, परोक्ष तथा अज्ञेय की अभिव्यक्ति करता है । अलौकिक आनन्द की अनुभूति कराने में कवि समर्थ होता है । कवि-प्रतिभा अनुभूति को पार्थिव, आध्यात्मिक को भौतिक तथा आन्तरिक को बाह्य रूप प्रदान करती है । आचार्य हेमचन्द्र प्रतिभा को सूर्य के समान प्रकाशमान मानते हैं और राजशेखर का कथन है कि सहृदय में यदि भावयित्री प्रतिभा न हो तो वह कवि के श्रम का मूल्यांकन नहीं कर सकता है । इस प्रकार यह निष्कर्ष निकलता है कि काव्य और प्रतिभा में घनिष्ठ सम्बन्ध है । प्रतिभा के अभावमें उत्तम-काव्य की रचना असम्भव -सी लगती है । प्रतिभा वह उत्कृष्ट शक्ति ही है,जो कवि को नवीन प्रेरणाएं देकर अमरकृतियों की रचना करती है ।

काव्य और अनुभूति

अनुभूति और काव्य का परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध है। इसीलिए आधुनिक आलोचकों ने अनुभूति को काव्य-सौन्दर्य में महत्वपूर्ण स्थान दिया है। संस्कारवादी आचार्यों ने अनुभूति को जीवन सम्बन्धी अन्तर्दृष्टि माना है। स्वच्छन्दवादी विचारधारा के विचारकों ने अनुभूति को कवि की व्यक्तिगत भावात्मक अनुभूति माना है। भारतीय सिद्धान्तों में कवि की स्वानुभूति की उपेक्षा की गई है[1]।

अनुभूति को मन का विकार माना जाता है। साहित्यिक अनुभूति रागबोधात्मक होती है। उसमें भावोद्रेक अथवा आवेगात्मक स्फुरण रहता है अवश्य, पर साथ ही दृष्टा से भिन्न बाह्य-वस्तु-समष्टि का चेतना या दर्शन भी रहता है[2]।

काव्यानुभूति के विषय में डा० त्रिपाठी कहते हैं कि कुछ लोग काव्यानुभूति और लोकानुभूति को भिन्न नहीं मानते हैं--`काव्यानुभूति भी लोकानुभूति से भिन्न नहीं है। यदि लोकव्यवहार में सुखदु:खमयी प्रतिक्रिया उत्पन्न कर सकती है। यदि लोकानुभूति क्षोभकारिणी हो सकती है तो काव्यानुभूति भी क्षोभकर होगी ही। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल उक्त धारणा में थोड़ा परिवर्तन करते हैं। वे मानते हैं कि काव्यानुभूति भी एक प्रकार की लौकिक अनुभूति ही है, परन्तु अन्य लोकानुभूतियों की भांति काव्यानुभूति सुखदु:खमयी होती हुई भी क्षोभकारिणी नहीं होती।... पश्चिमी मनोवैज्ञानिक काव्यचिन्तकों का सहारा लेकर कुछ नये आचार्यों ने काव्यानुभूति को अनिवार्यत: आनन्दमयी चेतना स्वीकार की है[3]।` कल्पना-व्यापार के द्वारा ही काव्य की पूर्णरूप से अनुभूति होती है। काव्य की अनुभूति प्राप्त करने के लिए वस्तुगत और प्रभावसाम्य की कल्पना की जाती है। कवि अनुभूति

---

1 डा० रघुवंश : `प्रकृति और काव्य`, पृ०६६
2 डा० देवराज : `साहित्यचिन्ता`, पृ०२५ .
3 डा० राममूर्ति त्रिपाठी: `भारतीय काव्य नयी व्याख्या`, पृ०४५,४६ ।

में वस्तुजगत को ही आलम्बन बनाकर अपने को आश्रय रूप में रखता है और उससे प्रभाव ग्रहण करता है । अनुभूति में आलम्बन और आश्रय का यह सम्बन्ध केवल भौतिक प्रत्यक्ष-बोध के ही रूप में न रहकर कवि का मानसिक कल्पनात्मक स्थितियों में भी रह सकता है । कवि जब भौतिक स्वरूप में अनुभूति करता है,तब उसके समक्ष वस्तु,व्यक्ति एवं प्रकृति विशेष रहती है । मानसिक स्थिति में उस वस्तु, व्यक्ति तथा प्रकृति का विशिष्ट गुण या आचरण । इसी के आधार पर स्वानुभूति में सौन्दर्य का जन्म होता है । सौन्दर्य के साथ -साथ सत्य और शिव भी सम्मिलित हैं । अनुभूति में संवेदना भी मिली रहती है । काव्य में अनुभूति की अपेक्षा नहीं की जा सकती है, अतः काव्य-रचना में वह अपना विशिष्ट स्थान रखती है ।

काव्य और अभिव्यक्ति

काव्य-शास्त्रियों ने अनुभूति के साथ ही अभिव्यक्ति को भी काव्य में प्रमुख स्थान दिया है । अभिव्यक्ति का स्थिति काव्य में अधिक स्पष्ट है । अभिव्यक्ति ही अनुभूति और संवेदना की समन्वय की स्थिति तक ले जाती है । अनुभूति तथा प्रभावपक्ष को अभिव्यक्ति के ही अन्तर्गत माना जाता है ।

आचार्य शुक्ल जी का विचार है कि मनुष्य की पूर्ण अभि-व्यक्ति रागात्मिका वृत्ति और बोधवृत्ति दोनों के मेल में है । अतः इनमें किसी का निषेध उचित नहीं । कोई एक की ओर मुख्यतः प्रवृत्त रहता है, कोई दूसरे की ओर[1] ।

प्रायः सभी काव्याचार्यों का ध्यान अभिव्यक्ति पक्ष पर केन्द्रित रहा है । भारतीय कुछ काव्य-शास्त्रियों ने अलंकार में सौन्दर्य को काव्य की अभिव्यक्ति के रूप में स्वीकार किया है । ध्वनि के विस्तार में तो समस्त काव्य का रूप अभिव्यक्ति रूप में आ जाता है । रस-सिद्धान्त के अन्तर्गत `शब्द` तथा `वाक्य` की स्वीकृति में काव्य के अभिव्यक्ति-पक्ष को स्वीकार किया

---

१ आचार्य रामचन्द्र शुक्ल : `चिन्तामणि भाग`,पृ०५०-५१,आमुख-२

गया है और रीति-काव्य का अभिव्यक्ति का स्वरूप है ।

भाषा, अलंकार, शैली, रस और ध्वनि -- सब का समावेश अभिव्यक्ति में होता है । संस्कृत के आचार्यों ने शब्द और अर्थ को काव्य का रूप माना है । शब्द और अर्थ का सम्मिलित रूप अपनी कलात्मक अभिव्यक्ति में व्यंजना को ग्रहण करता है । आचार्य रुद्रट व्यंजनाश्रित काव्य-सौन्दर्य की कल्पना करते हुए उसी शब्द-रचना का आदेश देते हैं,[1] जिससे काव्य सुन्दर बने --'रचयेत् तमेव शब्दं रचनाया यः करोति चारुत्वम्' । रुद्रट का शब्द-रचना से तात्पर्य संभवतः वक्राभिधेय शब्दोक्ति से है । इसी वक्राभिधेय शब्दोक्ति से अलंकार, रस ध्वनि आदि की अभिव्यक्ति होती है ।

पाश्चात्य आलोचकों ने सौन्दर्य के अर्थ में अभिव्यक्ति का प्रयोग किया है । क्रोचे की अभिव्यंजना तथा कुन्तक की वक्रोक्ति को कुछ विद्वानों ने एक ही माना है । क्रोचे वस्तु से अधिक उसकी अभिव्यंजना को महत्त्व देता है । अभिव्यंजना ही सौन्दर्य का आगार है । उसने कल्पना को आन्तरिक अभिव्यक्ति माना है । यही आन्तरिक अभिव्यक्ति सुन्दर शब्दों के माध्यम से बाहर निकल कर अभिव्यंजना नाम से पुकारी जाती है । विभिन्न पाश्चात्य विद्वानों ने अभिव्यक्ति को काव्य का मुख्यरूप माना है । वर्ड्सवर्थ काव्य को स्वाभाविक सशक्त भावों का प्रवाह कहते हैं और शेली के अनुसार साधारण अर्थ में काव्य की परिभाषा कल्पना की अभिव्यक्ति के रूप में की जा सकती है ।

समग्र दृष्टि से काव्याभिव्यक्ति में अलंकार, ध्वनि और रस की यह समन्वयात्मक प्रवृत्ति अभिव्यक्ति का एक व्यापक आधार बनती है । यह अपने साथ वस्तु के रूप, गुण साम्य का आधार लेकर चलता है, जिसका सम्बन्ध भाव और कल्पना से होता है ।

----

१ रुद्रट : 'काव्यालंकार' २।८।

अनुभूति और अभिव्यक्ति का समन्वयात्मक रूप

आचार्यों ने अनुभूति और अभिव्यक्ति का साथ-साथ विवेचना की है । अनुभूति के अभाव में अभिव्यक्ति हो ही नहीं सकती । काव्याभिव्यक्ति कवि के सम्पूर्ण व्यक्तित्व को प्रस्तुत करती है । अनुभूति को अभिव्यक्ति का प्रेरक तत्व माना गया है । अनुभूति या अभिव्यक्ति के लिए यह आवश्यक नहीं है कि दोनों समान रूप से गहन हों । इन दोनों का सम्बन्ध शब्दों तक ही सीमित नहीं है । काव्य-रचना करते समय कवि की अनुभूति में संवेदना और शब्दार्थ-सौन्दर्य की प्रधानता भाषा के माध्यम से जब काव्य में अभिव्यक्त होती है, तब अपने में रस, ध्वनि, अलंकार एवं प्रतिभा को समाहित किये रहती है । इस प्रकार सिद्ध है कि अनुभूति अभिव्यक्ति का प्रेरक तत्व है ।

काव्य और भाव

कविता की जननी भाव ही है । संसार के प्राणियों की प्रवृत्ति प्रेरणाओं के मूल में सदैव भाव विद्यमान रहता है । कवि व अपने हृदय में उठने वाले भावों को काव्य के द्वारा अभिव्यक्त करता है । काव्य और भाव का घनिष्ठ सम्बन्ध है,इसीलिए काव्य की आत्मा भाव या भावपक्ष को माना गया है ।

नाट्यशास्त्रकार भरत ने भाव का विवेचन सप्तम अध्याय में किया है । डा० नगेन्द्र 'रससिद्धान्त' में भरत के भाव सम्बन्धी श्लोकों को इस प्रकार समझाते हैं -- भाव वह अर्थ है,जो विभावों के द्वारा निष्पन्न होता है और अनुभावों के द्वारा गम्य बनता है । काव्यार्थ ही भाव का अभिप्राय है । भाव ही वह तत्व है,जो कवि के अन्तर में उठने वाले भावों को, काव्यार्थों को सहृदय के हृदय में भावित करता है । भरत ने यही अर्थ ग्रहण किया है,अर्थात् जो रस का भावन करें वे भाव हैं । भावों के अन्तर्गत स्थायी,संचारी,विभाव और अनुभाव आ जाते हैं[1] ।

---

1 भरत : 'नाट्यशास्त्र' -- ७।१-२-३। --

'विभावैराहृतो यो र्थो ह्यनुभावैस्तु गम्यते ।
वागंगसत्वाभिनयैः स भाव इति संज्ञितः ।।

(शेष अगले पृष्ठ पर देखें)

अभिनवगुप्त ने प्राक्तन संस्कार रूप में निहित रागादि को भावित अथवा व्यंजित करने वाली चित्तवृत्तियों को भाव कहा है । धनंजय भाव-लक्षण इस प्रकार करते हैं-- `सुखदु:खादिकैर्भावैर्भावस्तद्भावभावनम्` । अर्थात् सुखदु:खादि भावों का भावन ही भाव है ।

आचार्य मम्मट ने देवादि विषयक रति को तथा व्यभिचारी भावों की व्यंजित अवस्था को भाव-लक्षण के अन्तर्गत लिया है । स्त्री विषयक रति को छोड़कर अन्य रति जैसे -- देव, मुनि, गुरु तथा पुत्रादि-विषयक रति को मम्मट ने भाव कहा है --`रतिर्देवादिविषया व्यभिचारी तथांजित: भाव: प्रोक्त:`[2] ।

आचार्य विश्वनाथ ने भावलक्षण में देवादिविषयक रति तथा व्यंजित संचारी के साथ ही तीसरा तत्त्व अपूर्ण-पुष्ट स्थायी भाव भी लिया है । पण्डितराज जगन्नाथ इस प्रकार अपना भाव-लक्षण प्रस्तुत करते हैं -- `विभावादिव्यज्यमानहर्षाद्यन्यतमत्वं तत्त्वम्`[3] ।

विभावादि सामग्री से व्यज्यमान हर्षादि में से कोई भी भाव है । पण्डितराज ने इस ओर सदैव ध्यान रखा है कि भावचित्तवृत्ति

(पूर्व पृष्ठ की अवशिष्ट टिप्पणी)

`वागंगमुखरागेण सत्त्वेनाभिनयेन च ।
कवेरन्तर्गतं भावं भावयन्भाव उच्यते ।`
नानाभिनयसम्बद्धान्भावयन्ति रसानिमान् ।
यस्मात्तस्मादमी भावा विज्ञेया नाट्ययोक्तृभि: ।।`

----

१ धनंजय : `दशरूपक`-- ४।४।
२ मम्मट : `काव्यप्रकाश`, चतुर्थ उल्लास ४ ।
३ जगन्नाथ : `रसगंगाधर`,पृ०७५ ।

रूप हैं । चित्त की सभी अवस्थाएं-- सुखात्मक, दु:खात्मक अथवा ज्ञानात्मक वृत्तिरूप ही हैं[१] ।

डा० नगेन्द्र `रससिद्धान्त` में कहते हैं कि संस्कृत काव्य-शास्त्र में तीन अर्थों में भाव शब्द प्रयुक्त हुआ है --(१) रस व्यंजक सामग्री के अर्थ में, जिसमें विभाव,अनुभाव, स्थायी, संचारी सभी आ जाते हैं । (२) काव्यगत संचारी, स्थायी और सात्त्विक भावों के अर्थ में तथा (३) अनुपचित स्थायी या उपचित संचारी भाव के अर्थ में । भाव को मनोवेग भी कहा गया है[२] ।

हिन्दी साहित्य के आचार्यों में रामचन्द्र शुक्ल अपना मत प्रकट करते हुए कहते हैं -- `प्रत्ययबोध, अनुभूति और वेगयुक्त प्रवृत्ति इन तीनों के गूढ़ संश्लेष का नाम भाव है[३] ।

आचार्य शुक्ल ने संवेदन, वासना, प्रवृत्ति, मनोवेग, इन्द्रियवेग, भावना, प्रत्ययबोध, इच्छा, संकल्प आदि को भाव के निर्माण-कारी तत्त्वों के रूप में लिया है । शुक्ल जी भावों को कर्म का प्रवर्तक तथा शील का संस्थापक मानते हैं ।

रस-सिद्धान्त में डा० नगेन्द्र चेतना को व्याप्त करने वाले आवेग को भाव कहते हैं । मनोविकार या मनोवेग भी भाव के ही नाम हैं । डा० नगेन्द्र के अनुसार भाव-लक्षण इस प्रकार दिया जा सकता है --`बाह्य जगत् के संवेदनों से मनुष्य के हृदय में जो विकार उठते हैं, वे ही मिलकर भाव की संज्ञा प्राप्त करते हैं । पाश्चात्य मनोविज्ञान में भाव शब्द को लेकर बहुत विवाद है । कुछ विद्वान् भाव को व अनुभाव या सहचारी मन:स्थिति या अनुभव की विधि समझते हैं । भावों को वेग या अर्जा (ऊर्जा) रूप भी माना गया है ।

---

१ डा० प्रेमस्वरूप गुप्त : `रस गंगाधर का शास्त्रीय अध्ययन`,पृ०२३८ ।

२ डा० नगेन्द्र : `रस सिद्धान्त`,पृ०२८८ ।

३ आचार्य रामचन्द्र शुक्ल : `रस-मीमांसा`,पृ०१६८ ।

कुछ विचारक भावों को संवेदनों की संहति मात्र कहते हैं तथा अन्य लोग विसंहति के रूप में मानते हैं । शैण्ड, साल, मैक्डूगल, जार्गेन्सन, विलियम्स, बर्ट आदि विद्वानों के विचारों का सार डा० नगेन्द्र के अनुसार इस प्रकार है --'भावचेतना की व्यवहारशील मात्राएं हैं -- ऐसी शक्तियां हैं,[1] जिनके निश्चित आधार और लक्ष्य होते हैं, जिनमें कर्तृत्व की क्षमता होती है ।'

वर्ड्सवर्थ ने काव्य के समस्त तत्वों में भाव तत्व पर अधिक बल दिया है । उनका कहना है --'काव्य शान्ति के समय में स्मरण किए हुए प्रबल मनोवेगों का स्वच्छ प्रवाह है ।'

भाव मानव-हृदय में सदैव वर्तमान रहते हैं और किन्हीं कारणों से जागृत हो जाते हैं । जिन कारणों से भाव जागृत होते हैं, उन्हें हम विभाव कहते हैं । ये विभाव दो प्रकार के होते हैं -- आलम्बन विभाव और उद्दीपन विभाव । आलम्बन विभाव के सहारे ही भाव उत्पन्न होते हैं और उद्दीपन विभाव इन भावों को उद्दीप्त करते हैं । काव्य में आलम्बन और आश्रय की कल्पना का सम्बन्ध वस्तु जगत और काल्पनिक जगत से होता है । कवि का यह वस्तु और काल्पनिक जगत ही अप्रस्तुतयोजना की अभिव्यक्ति में सहायक होता है ।

प्राय: सभी आचार्यों ने काव्य में भाव को प्रमुख स्थान प्रदान किया है । भाव या अनुभूति के अभाव में काव्य निस्सार है । भाव ही काव्य की आत्मा है । भावों के विषय में डा० त्रिपाठी कहते हैं --'कवि के इस भाव का मूल ही अलंकार- उद्भावना की व्युत्पत्ति है । यही काव्य-रचना की मूल प्रेरणा है । कवि के अन्तर्गत यह भाव रस की मीमांसा में स्थायी, संचारी, विभाव, अनुभाव सभी का मूल कारण है, वैसे अलंकार उद्भावना में भी यह ही मूल कारण है । भारतीय साहित्य-चिन्तकों की दृष्टि में रस के

---

१ डा० नगेन्द्र : 'रस-सिद्धान्त', पृ०२१६ ।

साधारणीकरण का समस्त व्यापार ही भाव को लेकर केन्द्रीकृत है।[1]

आनन्दवर्द्धन कहते हैं कि भाव का संस्पर्श व्यंग्यकाव्य और चित्रकाव्य दोनों में ही अनिवार्य है। वस्तु भाव का आधार है, वस्तु ही भाव को उत्पन्न करती है और वस्तु के अभाव में काव्य का निबन्धन सम्भव नहीं है।

कवि विभिन्न भावों के माध्यम से पाठक या श्रोता को नवीन दृष्टि प्रदान करता है। विभिन्न वातावरणों, प्रसंगों, विषयों एवं व्यक्तियों के द्वारा कवि अपनी चित्तवृत्ति को व्यक्त करता है। पाश्चात्य आलोचकों में सकल काव्य-तत्वों में भाव-तत्व का महत्व स्वीकार करते हैं। हैजलिट काव्य की भाषा को भावना और कल्पना की भाषा मानते हैं। प्रसिद्ध विचारक रस्किन काव्य के लिए भाव को अत्यन्त आवश्यक बताते हुए कहते हैं -- काव्य-रचना कल्पना के द्वारा उदात्त भावों के उदात्त क्षेत्र की ओर संकेत करती है। इस प्रकार पाश्चात्य आलोचकों के अनुसार काव्य में भाव ही एक ऐसा तत्व है, जो सहृदय के मन को काव्य की ओर केन्द्रीभूत करता है। भारतीय और पाश्चात्य सभी काव्य-शास्त्री काव्य में भाव की महत्ता को अवश्य स्वीकार करते हैं।

कल्पना

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल कल्पना की परिभाषा देते हुए कहते हैं--`प्रत्यक्ष देखे हुए पदार्थों के रूप-रंग, गति आदि के आधार पर खड़ा किया हुआ नया वस्तु-व्यापार- विधान या रूप-विधान कल्पना नाम से अभिहित होता है। शुक्ल जी के अनुसार कल्पना के लिए यह आवश्यक है कि वह भावों को रस-कोटि तक ले जाने में समर्थ हो। कल्पना का निर्माण संसार-सागर की रूप-तरंगों से ही होता है। `चिन्तामणि' में शुक्ल जी कहते हैं--`कल्पना, रस के विभाव,

---

1 डा० जयशंकर त्रिपाठी : `आचार्य दण्डी एवं संस्कृत काव्य-शास्त्र का - इतिहास -दर्शन`, पृ०७९।

अनुभाव आदि का रूप-विधान करती है । मानसिक रूप-विधान का नाम ही कल्पना है । यह रूपविधान दो प्रकार का होता है-- एक तो देखी हुई वस्तुओं का वैसा ही वर्णन या स्मृति रूप-विधान और दूसरा कल्पित रूप-विधान, जिसमें विभिन्न पदार्थों के रूप, रंग के आधार पर नवीन वस्तु-व्यापार -विधान किया जाता है । कल्पना द्वारा जागृत अनुभूति रसानुभूति मानी जाती है ।

प्रसिद्ध पाश्चात्य विचारक लौंजाइनस कल्पना को बिम्बों की प्रेरणा-शक्ति मानते हैं । उनके अनुसार कवि कल्पना के द्वारा वर्ण्य-विषय का साक्षात्कार करके उसे भाषा के माध्यम से प्रस्तुत करता है, जिसे पाठक अपने समक्ष प्रत्यक्ष-सा अनुभव करने लगते हैं । क्रोचे ने कल्पना को आध्यात्मिक क्रिया माना है । क्रोचे के अनुसार स्वयंप्रकाश ज्ञान का सांचे में ढलकर व्यक्त होना ही कल्पना है और कल्पना ही अभिव्यंजना है, जो भीतर होता है ।

कालरिज के अनुसार कल्पना के द्वारा हम उन वस्तुओं की प्रतिमा का निर्माण करते हैं, जो नेत्रों से स्पष्ट दिखाई देती हैं ।

पी०बी० शेली यह मानते हैं कि कल्पना वह दिव्य तथा अलौकिक शक्ति है, जिसके माध्यम से कवि इस व्यावहारिक जगत् के पीछे पारमार्थिक जगत् की झांकी पा लेता है । कल्पना संश्लेषणात्मक तथा सृजनात्मक होती है ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि कल्पना के विषय में विभिन्न आलोचकों ने अपने - अपने मत प्रस्तुत किए हैं । काव्य और कल्पना के घनिष्ठ सम्बन्ध के विषय में भी इन विद्वानों ने विस्तारपूर्वक वर्णन किया है ।

काव्य और कल्पना

काव्य के प्रमुख तत्वों में कल्पना-तत्व को अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है । भावना समन्वित कल्पना किसी विषय का सुन्दर ढंग से चित्र अंकित कर सकती है । कल्पना को काव्य का बोधपक्ष माना गया है । कल्पना को प्रेरित करने में भाव या मनोविकारों का अत्यन्त महत्व है, ये ही कल्पना-शक्ति

केआधार हैं। भारतीय आचार्यों ने इसीलिए काव्य के भावपक्ष को अधिक महत्व प्रदान किया है। परन्तु पाश्चात्य आलोचकों ने काव्य में कल्पना को इतना अधिक महत्व दिया है कि वे काव्य के भावपक्ष के साथ न्याय कर सकने में असमर्थ हैं।

आचार्य शुक्ल ने कल्पना के सम्बन्ध में कुछ विचार व्यक्त किए हैं। यद्यपि शुक्ल जी पाश्चात्य विचारकों से प्रभावित हैं। कल्पना के द्वारा ही कवि अपनी अनुभूति को पाठक तक पहुंचा कर उसे रसानुभूति कराने में समर्थ होता है। कल्पना के द्वारा ही भावों का परिचालन होता है। कवि-कर्म-विधान में कल्पना का स्थान सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। कल्पना-शक्ति के अभाव में कवि पूर्ण स्वाभाविक चित्र प्रस्तुत नहीं कर सकता[1]। कवि की मौलिकता, नूतन-दृष्टि, नयी दृष्टि इसी की कृति समझी जाती है।

इस प्रकार शुक्ल जी की दृष्टि में रसावयवों का निर्माण कल्पना करती है। अप्रस्तुतों की योजना भी कल्पना द्वारा ही होती है, जो भावोत्कर्ष अथवा रस-संचार में सहायक सिद्ध होते हैं।

अधिकतर पाश्चात्य विचारकों ने कल्पना के महत्व का प्रतिपादन किया है। प्रसिद्ध विचारक विलियमब्लेक ने काव्य में कल्पना को अत्यन्त महत्व प्रदान किया है। उनके अनुसार काल्पनिक जगत् ही वास्तविक जगत है। वास्तविक भौतिक जगत् की वस्तुएं असत्य हैं। ब्लेक के कल्पना-सिद्धान्त से अनेक विचारक प्रभावित हैं। वर्ड्सवर्थ और कालरिज ने भी काव्य में कल्पना के महत्व का प्रतिपादन किया। काण्ट ने यह माना कि कल्पना ही प्रज्ञा तथा संविद् का आधार है। कल्पना से ही विभिन्न वस्तुओं का निर्माण होता है। काण्ट से प्रभावित होकर कालरिज ने यह बताया कि यह सत्य नहीं है कि कल्पना में डूबा हुआ कवि सत्य या वास्तविकता से दूर चला जाता है। कल्पना वास्तविक होती है। कल्पना प्रज्ञा का प्रतिफल है। अतः कल्पना द्वारा कवि प्राकृतिक जगत् की वास्तविकता के प्रति अन्तर्दृष्टि का विकास कर लेता है[2]।

---

१ रामचन्द्र शुक्ल : `चिन्तामणि`, पहला भाग, पृ० ३६१।

२ रवीन्द्र सहाय वर्मा: `साहित्यालोचन और हिन्दी पर उसका प्रभाव`।

अत: काव्य में कल्पना को प्रमुख स्थान मिलना चाहिए। कल्पना जिन भावों को प्रेरित करती है, वे भाव काव्य के लिए अधिक महत्व रखते हैं।

प्रसिद्ध कवि शैली यह मानते हैं कि कल्पना एक दिव्य शक्ति है, जिसके द्वारा कवि संसार की वस्तुओं को रम्य रूप प्रदान करके पाठक के समक्ष प्रस्तुत करता है। क्रोचे भी कल्पनात्मकता को काव्य के लिए प्रमुख प्रेरणा मानता है। कल्पना-शक्ति कवि में जन्मजात होती है। क्रोचे ने काव्य या कला में कल्पना को प्रमुख स्थान प्रदान किया है। उनके अनुसार यही कल्पना कला का आधार है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि काव्य और कल्पना का परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध है। कल्पना के अभाव में काव्य-रचना असम्भव है। कवि में विकसित कल्पना-शक्ति का होना नितान्त अनिवार्य है।

काव्य में कल्पना का आनन्द और रसानन्द

काव्यानन्द के विषय में भारतीय और पाश्चात्य विद्वानों में कुछ मतभेद है। भारतीय विचारक तो रसानुभूति से जो आनन्द प्राप्त होता है, उसे ही काव्यानन्द मानते हैं,परन्तु पाश्चात्य आलोचक कल्पना से प्राप्त आनन्द को काव्यानन्द मानते हैं।

प्रसिद्ध पाश्चात्य विद्वान् अरस्तु के अनुसार काव्य का आनन्द लौकिक है, आध्यात्मिक नहीं। कल्पनात्मक प्रत्यभिज्ञान का आनन्द है। यह आनन्द इन्द्रिय-आनन्द की अपेक्षा सूक्ष्म है[1]। रस्किन ने इसी आनन्द को कल्पना का आनन्द माना है। प्रसिद्ध विचारक क्रोचे ने भी कल्पना के आनन्द को सहजानुभूति का आनन्द माना है। डा० नगेन्द्र के मत में यह धारणा अंशत: ठीक है कि कल्पनानन्द है। काव्य के आनन्द में भाव का भी अंश रहता है। केवल कल्पना के द्वारा काव्य-स्वरूप का निर्माण सम्भव नहीं है।

-0-

---

1 डा० नगेन्द्र : `रससिद्धान्त`,पृ०११४।

अध्याय -- २

-0-

अप्रस्तुत योजना

अप्रस्तुतयोजना का तात्पर्य

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने `उपमान` शब्द के स्थान पर अप्रस्तुतयोजना तथा अप्रस्तुतविधान शब्दों का प्रयोग किया है । अप्रस्तुतयोजना ही उपमान के लिए उपयुक्त-अर्थ-बोधक शब्द है, क्योंकि `अप्रस्तुत` शब्द विशेषण है और इसी रूप में ही प्रयुक्त भी हुआ है । `साहित्यदर्पण` में विश्वनाथ ने विशेषण रूप में ही `अप्रस्तुत` का प्रयोग किया है —

`क्वचिद्विशेष: सामान्यात्.....अप्रस्तुतात्प्रस्तुतं चेत्... ।`

`साहित्यदर्पण` में अप्रस्तुतविधान में `अप्रस्तुत` शब्द विशेष्य रूप में प्रयुक्त हुआ है । विधान का अर्थ करना, बनाना, प्रयोग करना तो होता है, परन्तु इसका अर्थ जुटाना, रचना करना, वर्ण्य वस्तु के लिए अवर्ण्य वस्तु को ला बिठाना आदि अर्थ व्यवहार और कोष से स्पष्ट नहीं होते[1] ।

कवि का वर्ण्य ही प्रस्तुत है । प्रस्तुत को उपमेय, प्रासंगिक, प्राकरणिक, प्रकृत तथा प्रधान भी कहा जाता है । समस्त जगत् ही अप्रस्तुत है,

---

१ रामदहिन मिश्र : `काव्य में अप्रस्तुतयोजना`, पृ०२ ।

वर्ण्य है । परन्तु कवि का वर्णन यहीं तक सीमित नहीं है । कवि की दृष्टि प्रस्तुत के समान रूप, गुण, धर्म वाली वस्तुओं की ओर भी जाती है । इसी को अप्रस्तुत, अवर्ण्य, अप्राकरणिक, अप्रासंगिक, अप्रकृत तथा उपमान आदि विभिन्न नामों से पुकारा जाता है । अप्रस्तुत का प्रयोग कवि द्वारा वर्णन में चमत्कार लाने या अधिक प्रभाव लाने के लिए किया जाता है । अत: यह कवि का वर्ण्य नहीं है, कवि द्वारा अप्रस्तुत को लाया जाता है । उपमान अपने भीतर जितना अर्थ ग्रहण करता है, उससे कहीं अधिक अप्रस्तुतयोजना के पेट में अर्थ पैठ जाता है[1] ।

काव्य में अप्रस्तुतयोजना, प्रस्तुतभाव या वर्ण्य के उत्कर्ष में साधक रूप होती है । अप्रस्तुतयोजना बाहर से लायी जाने वाली समस्त वस्तुओं को ग्रहण करती है, चाहे अप्रस्तुत का जैसा भी रूप क्यों न हो । अप्रस्तुतयोजना के अन्तर्गत समस्त कल्पना-व्यापार आ जाता है । और उसका काव्यात्मक सृजन प्रतिभा का चमत्कार है । कवि की इस प्रतिभा का सम्बन्ध कल्पना से है[2] ।

अप्रस्तुतयोजना में सादृश्य का बहुत अधिक महत्त्व है । प्रस्तुत के प्रभाव को बढ़ाने के लिए कवि प्रस्तुत के समान रूप,गुण वाली वस्तुओं की खोज करता है और इस प्रकार उन्हीं अप्रस्तुतों को काव्य में लाकर प्रस्तुतों के उत्कृष्ट वर्णन द्वारा कवि अपने काव्य की श्रीवृद्धि करता है । चाहे उपमेय के लिए उपमान या प्रकृत के लिए अप्रकृत अथवा प्रस्तुत के लिए अप्रस्तुत की योजना की जाए, उसमें सादृश्य का होना आवश्यक है ।

अप्रस्तुत को भी प्रस्तुत के समान भावोद्बोधक होना चाहिए। इससे श्रोता भी कवि के समान ही भावों की अनुभूति करेगा । अनुभवी कवि की अप्रस्तुतयोजना हृदय को स्पर्श कर लेने वाली एवं सफल होती है । कवि की अनुभूति भावनाओं को उद्दीप्त करने की शक्ति होनी चाहिए । सादृश्यविधान में

---

१ रामदहिन मिश्र : 'काव्य में अप्रस्तुतयोजना',पृ०३ ।

२ विद्याधर : 'जायसी साहित्य में अप्रस्तुतयोजना',पृ०११ ।

कवि० की अनुभूति गहन तथा मार्मिक होनी चाहिए, तभी वह श्रोता के हृदय को प्रभावित करने में समर्थ होगी । सादृश्य और साधर्म्य पर ही अप्रस्तुतयोजना आधारित होती है । 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' में शुक्ल जी कहते हैं -- 'साम्य का आरोप भी निस्संदेह एक बड़ा विशाल सिद्धान्त लेकर काव्य में चला है । वह जगत् के अनन्त रूपों या व्यापारों के बीच फैले हुए उन मोटे और महीन सम्बन्धसूत्रों की झलक-सी दिखाकर नरसत्ता के जुदेपन का भाव दूर करता है, अखिल सत्ता में एकत्व की आनन्दमयी भावना जगाकर हमारे हृदय का बन्धन खोलता है ।' शुक्ल जी के अनुसार सिद्ध कवि ऐसे अप्रस्तुतों की खोज करके उन्हें काव्य में स्थान देते हैं, जो कि प्रस्तुतों के समान ही सौन्दर्य, दीप्ति, कांति, कोमलता, प्रचण्डता, भीषणता, उग्रता, उदासी, अवसाद, खिन्नता आदि की भावनाओं को जाग्रत करती हैं ।

अप्रस्तुतयोजना में रूप, रंग, आकार आदि को ही नहीं देखा जाता है, इसके साथ ही यह भी देखा जाता है कि भावना पर उसका कैसा प्रभाव पड़ता है । प्रभावसाम्य से काव्य का महत्त्व बढ़ता है । यदि सादृश्य और साधर्म्य में प्रभाव-वृद्धि की क्षमता नहीं है, तो ऐसा अप्रस्तुत या उपमान निरर्थक है, अर्थात् उससे किसी प्रभाव की अपेक्षा नहीं की जा सकती है । 'प्रभावसाम्य के लिए यह आवश्यक नहीं है कि वस्तु के प्रत्येक अवयव या गुण का पूर्णतः साम्य हो । सादृश्य या साधर्म्य के लेश या कुछ मात्र से भी भाव की वृद्धि हो तो पूरा आरोप अनावश्यक है ।'[1] इस प्रकार हम देखते हैं कि अप्रस्तुतयोजना के द्वारा कवि काव्य-सौन्दर्य की वृद्धि करता है । अप्रस्तुतों के द्वारा काव्य-स्रष्टा अपने वर्णन में नवीनता तथा प्रभावोत्पादकता उत्पन्न करता है । कवि अपनी अद्भुत कल्पना-शक्ति के द्वारा उपमानों में सजीवता भर देता है । मूर्त या अमूर्त को अभिव्यक्त करने के लिए वह अप्रस्तुतों का ही आश्रय लेता है ।

अप्रस्तुतयोजना का अत्यन्त व्यापक क्षेत्र है । इसके अन्तर्गत मूर्त वस्तुओं की अमूर्त से, अमूर्त की मूर्त से या मूर्त की मूर्त से एवं अमूर्त से तुलना

---

१ रामदहिन मिश्र : 'काव्य में अप्रस्तुतयोजना', पृ०६४ ।

की जाती है । अप्रस्तुतयोजना के अन्तर्गत समस्त विश्व अन्तर्भुत है । इसमें मनोभावों की भी पदार्थों से तुलना की जाती है । अप्रस्तुतयोजना तभी सफल हो सकती है, जब अप्रस्तुतों में सृजनात्मक शक्ति, भावप्रवणता तथा तत्वों के एकीकरण की क्षमता हो ।

नवीन एवं मौलिक अप्रस्तुत अधिक प्रभावशाली सिद्ध होते हैं। ऐसे अप्रस्तुतों के प्रयोग से अप्रस्तुतयोजना अधिक आकर्षक लगती है तथा वह उत्कृष्ट भावों को प्रकाशित करने में सफल होती है । सिद्ध कवि प्राचीन अप्रस्तुतयोजना पर दृष्टि रखते हुए मौलिक एवं नवीन योजना करते हैं । प्राचीन उपमानों को तिरस्कार की भावना से नहीं देखना चाहिए । ऐसे अप्रस्तुत प्रयुक्त हों,जिनमें सत्कल्पनाओं को सुन्दर ढंग से व्यक्त करने की क्षमता हो, ऐसे अप्रस्तुतों के द्वारा ही अमूर्त विचार मूर्त रूप धारण करके पाठक के समक्ष उपस्थित हो सकते हैं । रामदहिन मिश्र का विचार है -- 'अप्रस्तुतयोजना में सादृश्य,साधर्म्य, प्रभाव आदि का जितना ध्यान रखा जायेगा उतनी ही उसमें प्रेषणीयता, भावोद्बोधकता और रमणीयता आयेगी[1] ।'

अप्रस्तुतयोजना का काव्य से सम्बन्ध

अप्रस्तुतयोजना को काव्य का प्राण माना जाता है ।इसी के द्वारा पाठक कवि के काव्य-कौशल को परख लेता है । अप्रस्तुतयोजना के द्वारा कवि अपनी रचना के भाव को तीव्र करने, सरस तथा सुन्दर बनाने में समर्थ होता है । इससे भाव-व्यंजित करने तथा काव्य में चमत्कार लाने में सहायता मिलती है । अप्रस्तुतयोजना के द्वारा काव्य की श्रीवृद्धि होती है और काव्य प्रभावशाली बन जाता है । रामदहिन मिश्र कहते हैं --'यह काव्य का प्राण है, कला का मूल है और कवि की कसौटी है । यही काव्य में प्रभाव उत्पन्न करती है,प्रेषणीयता लाती है, भावों को विशद बनाती है और रसनीयता को वर्धित करती है[2] ।

---

१ रामदहिन मिश्र : 'काव्य में अप्रस्तुतयोजना',पृ०६४ ।
२ वही पृ०७३ ।

अप्रस्तुतयोजना के द्वारा ही कवि अपने काव्य की कल्पनात्मक परिणति करने में समर्थ हो सकता है । काव्य का अन्तरंग विवेचन भी अप्रस्तुतयोजना के द्वारा ही सम्भव है । अप्रस्तुतयोजना के अभाव में रस का परिपाक एवं ध्वनि का पूर्ण प्रसार सम्भव नहीं है । कवि के सृजनात्मक शक्ति का परिचय अप्रस्तुतयोजना के द्वारा प्राप्त होता है । प्राय: सभी काव्य-रचनाओं में अप्रस्तुतयोजना किसी-न-किसी रूप में विद्यमान रहती है । उपमा,रूपक,उत्प्रेक्षा,सन्देह, भ्रान्ति,अपन्हुति,दीपक, अप्रस्तुतप्रशंसा आदि अलंकारों में तथा अन्य अलंकारों में भी अप्रस्तुतयोजना मिलती है। कहीं-कहीं बाहरी सादृश्य के अभाव में आभ्यन्तर प्रभावसाम्य लेकर भी अप्रस्तुतों का प्रयोग किया जाता है । यह प्रतीकवत अप्रस्तुत होते हैं-- जैसे सुख,आनन्द आदि के स्थान पर ऊषा, प्रभात आदि का प्रयोग ।

अप्रस्तुतयोजना का कार्य सुन्दर वस्तु को और अधिक सुन्दर दिखाने के साथ-ही-साथ कुरूप वस्तुओं को भी सुन्दर बनाना है । अप्रस्तुतयोजना कवि के सम्पूर्ण व्यक्तित्व पर प्रकाश डालती है । उसके संस्कारों,भावों,विचारों, रुचियों एवं परिस्थितियों से समन्वित करके कवि के व्यक्तित्व को काव्य में अभिव्यक्त कराती है । अप्रस्तुतयोजना -शून्य रचना न तो हृदय को आकर्षित कर सकती है,और न ही सहृदय के हृदय में आनन्दोत्पत्ति करने में समर्थ हो सकती है । किन्तु अप्रस्तुत-योजना या उपमानों का विधान सहज सम्भव नहीं । इसके लिए लोक-शास्त्र का निरीक्षण-परीक्षण तो आवश्यक है ही, साथ ही मर्म-ग्रहण में निपुण होना भी आवश्यक है । कवि जितना ही सहृदय होगा, जितना ही अनुभवी होगा,उतनी ही उसकी अप्रस्तुतयोजना मार्मिक होगी, हृदयग्राहिणी होगी और अपना उद्देश्य सिद्ध करने में समर्थ होगी ।

अप्रस्तुतयोजना और उपमान

उपमा में चार मुख्य अंग होते हैं-- उपमेय,उपमान,साधारण धर्म, वाचक शब्द । जिसका वर्णन होता है या जिसकी तुलना की जाती है, उसे उपमेय कहा जाता है । उपमान को अप्रस्तुत, अप्रकृत, अप्राकरणिक, अवर्ण्य आदि नामों से भी पुकारा जाता है । उपमान शब्द ही यह प्रकट करता है कि जहां तुलना हो,वहीं उसका

प्रयोग उचित है और उन्हीं अलंकारों में हो सकता है,जो औपम्यगर्भ हैं और जिनकी एक श्रेणी है । पर बात ऐसी नहीं है । सादृश्यगर्भ अलंकार का बहुत व्यापक क्षेत्र है । रामदहिन मिश्र का यह कथन नितान्त उपयुक्त है कि उपमान अपने भीतर जितना अर्थ ग्रहण करता है, उससे कहीं अधिक अप्रस्तुतयोजना के पेट में अर्थ पैठ जाता है । उपमान शब्द के सुनते ही काव्य में औपम्यमूलक अलंकारों का स्मरण हो जाता है, इसीलिए उपमान के लिए `अप्रस्तुत` शब्द का प्रयोग उचित प्रतीत होता है । अप्रस्तुत का क्षेत्र बहुत व्यापक है ।`अप्रस्तुत-योजना बाहर से लायी जाने वाली सारी वस्तुओं को ग्रहण करती है, चाहे अप्रस्तुत का कैसा ही रूप क्यों न हो । अप्रस्तुत विशेष्य हो, विशेषण हो,क्रिया हो, मुहावरा हो, चाहे और कुछ हो, इसके भीतर सब समा जाते हैं[1] ।`

इस प्रकार हम देखते हैं कि `अप्रस्तुत` शब्द काव्य में अपना अलग महत्त्व रखता है । अप्रस्तुत आलंकारिक वस्तु है और वह कवि द्वारा लायी जाती है । `अप्रस्तुत` शब्द उपमालंकार में तुलना के लिए प्रयुक्त होता है । रूपक में एकरूपता के लिए, व्यतिरेक में आतिरेक के लिए,प्रतीप में हीनता के लिए। कहीं पर रूपकातिशयोक्ति अलंकार की व्यंजना इसके द्वारा हो जाती है ।

अप्रस्तुत और उपमेय

उपमा अलंकार के चार मुख्य अंगों में उपमान और उपमेय का परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध है । उपमेय ही कवि का वर्ण्य है, इसे प्रस्तुत, प्रकृत, प्राकरणिक आदि नामों से भी अभिहित किया जाता है, जैसे उपमान को अप्रस्तुत कहा जाता है । विभिन्न आचार्य अप्रस्तुत तथा प्रस्तुत या उपमेय के सम्बन्ध को विविध दृष्टियों से देखते हैं । आचार्य वामन के अनुसार उपमान उत्कृष्ट गुणवान होता है और उपमेय निकृष्ट गुणवान[2] ।

उपमा अलंकार में अप्रस्तुत और प्रस्तुत का धर्मगत सम्बन्ध होता है । उपमा,उत्प्रेक्षा आदि अलंकारों में तो अप्रस्तुत तथा प्रस्तुत दोनों

---

१ रामदहिन मिश्र : `काव्य में अप्रस्तुतयोजना`,पृ०३-४ ।

२ वामन : `काव्यालंकार सूत्रवृत्ति`,पृ०१८६ ।

की स्थिति बनी रहती है । परन्तु रूपकातिशयोक्ति तथा अन्योक्ति जैसे अलंकार में अप्रस्तुत ही रहकर प्रस्तुत की केवल व्यंजना करा देता है ।अत: कुछ लोग प्रस्तुत की अपेक्षा अप्रस्तुत को ही अधिक महत्वपूर्ण मानते हैं । आचार्य शुक्ल कहते हैं --`प्रस्तुत के मेल में जो अप्रस्तुत रखा जाये, चाहे वह वस्तु, गुण या क्रिया हो अथवा व्यापार-समष्टि, वह प्राकृतिक और चित्ताकर्षक[1] हो तथा उसी प्रकार का भाव जगाने वाला हो , जिस प्रकार का प्रस्तुत ।` शुक्ल जी के मत में भी अप्रस्तुत तथा प्रस्तुत का घनिष्ठ संबंध है ।

अप्रस्तुतयोजना और भाषा

भाषा के द्वारा हम अपने मन का भाव प्रकट करते हैं । अप्रस्तुतयोजना में भाषा को प्रमुख स्थान प्राप्त है,क्योंकि भाषा की शक्ति अपरिमित है । भाषा के बिना कवि अपने विचारों एवं भावनाओं को दूसरों तक नहीं पहुंचा सकता । सुन्दर भाषा के माध्यम से ही काव्य-स्रष्टा अपनी रचनाओं को पाठक के समक्ष उपस्थित करके उसके हृदय को आकर्षित करता है । उपयुक्त भाषा का प्रयोग करके ही कवि सफलता प्राप्त कर सकता है । जिस भाषा में भावप्रकाशकता का गुण विद्यमान है, वही भाषा उपयुक्त समझी जाती है । रामदहिन मिश्र कहते हैं --`भाषा चित्ताकर्षक हो,हृदय-ग्राहक हो, विचारोत्तेजक हो, धारावाहिक हो, रागात्मक हो,ओजस्विनी हो, चित्रात्मक हो और ऐसी हो कि वस्तु के स्वरूप को मूर्त तथा ग्राह्य रूप में उपस्थित कर सके तथा भावप्रवणता से रागात्मक वृत्तियों को उद्भासित कर सके । सबसे बड़ी बात यह कि कवि के उद्भासित भावों को भली भांति प्रकट करने में वह समर्थ हो ।`

काव्य की भाषा एक तो संकेतात्मक होती है और दूसरी बिंबात्मक । संकेतात्मक भाषा अपने में सीमित रहती है । इसमें संकेत द्वारा अर्थ का बोध होता है । बिंबात्मक भाषा में वस्तु का चित्र या बिंब

---

१ रामचन्द्र शुक्ल : `भ्रमरगीतसार` (भूमिका),पृ०२५ ।

हृदय में अंकित हो जाता है । कवि अधिकतर बिंबात्मक भाषा का आश्रय लेकर शीघ्र वर्णन करते हैं । बिंबात्मक भाषा का स्थान चित्रमय भाषा ने ले लिया है । पन्त जी इस विषय में अपना मत इस प्रकार व्यक्त करते हैं-- 'कविता के लिए चित्रभाषा की आवश्यकता पड़ती है । उसके शब्द सस्वर होने चाहिए जो बोलते हों, जो भाव को अपनी ही ध्वनि में आंखों के सामने चित्रित कर सकें, जो झंकार में चित्र और चित्र में झंकार हों, जिनका भाव-संगीत विद्युद्धारा की भांति रोम-रोम में प्रवाहित हो सके[1] ।'

भाषा में भावनाओं को उद्दीपित करने की शक्ति होनी चाहिए । भाषा में शक्ति शब्द-शक्तियों के द्वारा आती है । व्यंजक शब्दों के द्वारा काव्य-हृदय को स्पर्श करने में समर्थ होता है । अत: कवि सुन्दर व्यंजक शब्दों के माध्यम से अपने भावों एवं विचारों को अभिव्यक्त करता है । इसलिए अप्रस्तुतयोजना के लिए भाषा में ध्वन्यात्मकता का होना अनिवार्य है । 'यदि भाषा में सांकेतिकता, ध्वन्यात्मकता, लाक्षणिकता, चित्रमयता आदि गुण हों तो उसके द्वारा किसी भी वर्ण्यवस्तु का मूर्तिमान् चित्रण सहज सम्भव है ।

अप्रस्तुत और अलंकार

भावों का उत्कर्ष दिखाने और वस्तुओं के रूप, गुण और क्रिया का अधिक तीव्र अनुभव कराने में कभी-कभी अलंकार अत्यधिक सहायक होते हैं । अलंकारों के द्वारा कवि अपने भावों को सरलता से पाठक तक पहुंचाता है और वस्तुओं, रूपों, गुणों, क्रियाओं के अनुभवों को तीव्रता प्रदान करता है । जो अलंकार इन उपकार्यों को करने में समर्थ हों, उन्हें ही हम सार्थक मान सकते हैं । अलंकारों के द्वारा काव्य की शोभावृद्धि होती है । तभी तो वामन कहते हैं -- 'सौन्दर्यमलंकार:' । प्राचीन आचार्यों ने तो अलंकारों को इतनी अधिक मान्यता प्रदान की थी कि अलंकार उनके लिए साधन न रहकर साध्य ही बन जाते थे । श्री रामदहिन मिश्र लिखते हैं— 'कहां-कहां भावपक्ष की पुष्टि के लिए काव्य में

---

१ द्रष्टव्य : 'पल्लव' (भूमिका)

अलंकार का प्रवेश कराया गया है, वहां-वहां भाव चमक उठा है । आज भी अलंकारों का प्रभाव अक्षुण्ण है ।'

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल,प्रस्तुत भाव के उत्कर्ष में साधन रूप अलंकारों की महत्ता का प्रतिपादन इन शब्दों में करते हैं --'अलंकार चाहे अप्रस्तुत वस्तुयोजना के रूप में हो, जैसे-- उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा आदि में, चाहे वाक्य-वक्रता के रूप में, जैसे-- अप्रस्तुतप्रशंसा, परिसंख्या, व्याजस्तुति, विरोध इत्यादि में, चाहे वर्ण्य-विन्यास के रूप में जैसे अनुप्रास में लाये जाते हैं । वे प्रस्तुतभाव या भावना के उत्कर्ष-साधन के लिए ही हैं । सादृश्य या साधर्म्य दिखाना उपमा, उत्प्रेक्षा इत्यादि का प्रकृत लक्ष्य नहीं है ।'[1]

इस प्रकार हम देखते हैं कि अप्रस्तुतयोजना में अलंकारों का कितना अधिक महत्त्व है । अप्रस्तुतयोजना और अलंकारों का यह सम्बन्ध शैलीगत है । इसके द्वारा कवि अपने भावों को बोधगम्य बनाता है । अप्रस्तुत-योजना में यह अनिवार्य नहीं है कि कवि सादृश्य का आधार लेकर जो अप्रस्तुत-योजना कर रहा है, वह सौन्दर्यबोधात्मक ही हो । सौन्दर्य की धारणा तो सदैव बदलती रहती है । इस सम्बन्ध में डा० ब्रह्मानन्द शर्मा लिखते हैं--'कवि सादृश्य का आधार लेकर ही भावों तथा विचारों को अभिव्यक्त करता है । सादृश्य में भेद भी होता है और अभेद भी । वस्तुओं की सत्ता क्योंकि धर्मों के रूप में होती है, इसलिए वे भेद और अभेद भी धर्मों के रूप में होती है,इसलिए वे भेद और अभेद भी धर्मों के रूप में ही होते हैं । साधारण और असाधारण धर्म होते हैं । सादृश्य में सामान्य और विशेष दो तत्त्व होते हैं, जो कि साधारणता और असाधारणता से बनते हैं । सामान्य तत्त्व को ही साधर्म्य तथा विशेष तत्त्व को वैधर्म्य भी कहते हैं । साधर्म्य तथा वैधर्म्य के मिलने से सादृश्य का जन्म होता है ।'[2]

आचार्य रुय्यक ने भी सामान्य तथा विशेष तत्त्वों को माना है --'यत्र किंचित्सामान्यं कश्चिच्च विशेषः स विषयः सादृश्यतायाः'[3] ।

---

१ रामचन्द्र शुक्ल : 'रसमीमांसा',पृ०४६ ।

२ डा० ब्रह्मानन्द शर्मा : 'संस्कृत साहित्य में सादृश्यमूलक अलंकारों का विकास' पृ०१-२।

३ रुय्यक : 'अलंकार सर्वस्व',पृ०४०

'साधर्म्य' शब्द 'सादृश्य' की अपेक्षा अधिक व्यापक अर्थ में प्रयुक्त होता है। सादृश्य का सम्बन्ध महत्वपूर्ण क्षेत्र से है। सादृश्य कई प्रकार का होता है। पहला बहुत शब्दों या वाक्यों का सादृश्य और दूसरा स्वरूप का सादृश्य। इनका काव्य में उतना महत्व नहीं है। भावों को उद्दीप्त करने वाले सादृश्य को अधिक महत्वपूर्ण माना जाता है।

सादृश्य से दृश्यात्मक समानता अथवा रूपसाम्य का बोध होता है। उदाहरणतया मुख और कमल में सादृश्य है,परन्तु अमृत और जल में साधर्म्य है। यह दोनों तत्व भिन्न भी हैं और अभिन्न भी। भरत से लेकर बाद तक के अधिकांश आचार्यों ने 'सादृश्य' शब्द का प्रयोग किया है। केवल उद्भट, मम्मट,रुय्यक, अप्पयदीक्षित आदि ने साधर्म्य शब्द का प्रयोग किया है।

आचार्य भामह काव्यालंकार में कहते हैं कि वक्रोक्ति ही अलंकारों का प्रमुख तत्व है। श्री रामचन्द्र शुक्ल 'रस मीमांसा' में कहते हैं -- 'हिन्दी की नयी काव्यधारा में साम्य पहले उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक जैसे अलंकारों के बड़े-बड़े सांचों के भीतर ही फैलाकर दिखाया जाता था। पर अब प्राय: थोड़े में या तो लाक्षणिक प्रयोगों के द्वारा झलका दिया जाता है अथवा कुछ ऐसे प्रच्छन्न रूपों में प्रतीयमान रहता है। इसी प्रकार किसी तथ्य या पूरे प्रबंध प्रबंध के लिए दृष्टान्त, अर्थान्तरन्यास आदि का सहारा न लेकर अब अन्योक्ति पद्धति ही अधिक चलती है। यह बहुत परिष्कृत पद्धति है[1]।

अलंकारों का अप्रस्तुतयोजना से बहुत घनिष्ठ सम्बन्ध है। अप्रस्तुतयोजना में रूप या आकार, गुण, क्रिया आदि की समानता के सहारे द्वारा प्रस्तुत के सौन्दर्य की वृद्धि होती है। रूपसाम्य एवं साधर्म्य की समानता के अन्तराल में एक प्रभावसाम्य भी छिपा रहता है। प्रभावसाम्य के द्वारा कविता महत्व बढ़ जाता है। सादृश्य और साधर्म्य के आधार पर कवि अप्रस्तुतयोजना

---

१ 'रसमीमांसा', पृ० ३४४ ।

करता है । साम्य पर दृष्टि रखते हुए वह भावात्मकता, अतिशयता और उक्ति-वैचित्र्य की भी व्यंजना करता है । साधारण धर्म प्रस्तुत और अप्रस्तुत दोनों के मध्य सम्बन्ध स्थापित करता है । सादृश्य के आधार पर अप्रस्तुतयोजना करते हुए कवि प्रस्तुत के विशेष तथा सम्पूर्ण गुणों की भी अभिव्यंजना करता है । अप्रस्तुत अनेक प्रकार के हो सकते हैं तथा उनकी योजना भी कई प्रकार की हो सकती है । कवि प्रस्तुत के उत्कृष्ट सिद्ध करने के लिए अनेक अप्रस्तुतों की योजना कर देता है । इस प्रकार वह काव्य की भी श्रीवृद्धि करने में सफल हो जाता है ।

अप्रस्तुतयोजना का उपमा से सम्बन्ध

उपमा अत्यन्त व्यापक अलंकार है । काव्य-ग्रन्थों में सर्वत्र कवियों ने उपमा के द्वारा ही अपने वर्णन को सुन्दर एवं सजीव रूप प्रदान किया है । सभी महाकवियों ने उपमा के महत्व को भली भांति समझा है । वेद,शास्त्र, काव्य सभी में उपमा ने अपना चमत्कार दिखाकर पाठकों को मुग्ध कर लिया है । साधारण जन भी परस्पर वार्तालाप करते समय उपमाओं का प्रयोग करते हैं । अर्थालंकारों में उपमा को प्रमुख स्थान प्राप्त है । अलंकारों के मूल में साम्य या विरोध रहता है । सादृश्यमूलक अलंकारों में शिरोमणि उपमा ही है । यह अत्यन्त प्राचीन अलंकार है । इसका प्रयोग वेद,उपनिषद्, ब्राह्मण-ग्रन्थ,व्याकरण तथा शास्त्र और महाकाव्य तक में हुआ है । महाकवि कालिदास ने `उपमाद्रव्य` शब्द का प्रयोग उपमा के स्थान पर किया है --

`सर्वोपमाद्रव्यसमुच्चयेन यथाप्रदेशं विनिवेशितेन ।
सानिर्मिताविश्वसृजाप्रयत्नादेकस्थसौन्दर्यदिदृक्षयेव[१] ।।`

`उपमाद्रव्य` शब्द अप्रस्तुतयोजना का बोध कराता है ।
आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी कहते हैं --`उपमा द्रव्य कहकर कालिदास ने उस सर्वस्वीकृत सिद्धान्त की ओर इंगित किया है, जिसके अनुसार अरूप भावनाएं (एब्स्ट्रैक्ट फीलिंग) अपनी अभिव्यक्ति के लिए किसी ज्ञात रूप का आश्रय

---

१ कालिदास :`कुमारसंभवम्` -- १।४९ ।

सोचता है[1]।'

श्री अप्पयदीक्षित कहते हैं --'काव्यरूपी रंगशाला में यह उपमा रूपी नटी चित्रभूमिका के भेद से अनेक रंग रूपों में आकर नाचती हुई काव्यमर्मज्ञों का मनोरंजन करती है।'

'उपमैषा शैलूषी संप्राप्ता चित्रभूमिकाभेदात् ।
रंजयति काव्यरंगे नृत्यन्ती तद्विदां चेतः ।।'

(चित्रमीमांसा)

'अलंकारशेखर' में राजशेखर उपमा के महत्व का इस प्रकार प्रतिपादन करते हैं --

'अलंकारशिरोरत्नं सर्वस्वं काव्यसम्पदाम् ।
उपमा कविवंशस्य मातैवेति मतिर्मम ।।'

(अलंकारशेखर)

अर्थात् उपमा अलंकारों की मुकुटमणि है, काव्यसम्पत्ति का सर्वस्व है और मेरा कहना तो यह है कि उपमा कविवंश की माता के समान है।

आचार्य रुय्यक का मत है -- प्रकार-भेद से उपमा अलंकार ही अनेक अलंकारों का मूल है। रामदहिन मिश्र कहते हैं --'उपमान' का अप्रस्तुत-योजना का बीज अर्थालंकार है। अर्थालंकारों में सादृश्यमूलक उपमा अलंकार।'अतः अप्रस्तुतयोजना में उपमा अलंकार का विशेष महत्व है।

'काव्यालंकार' में आचार्य भामह उपमा का विवेचन करते हुए उपमान की व्याख्या करते हैं। उनके मतानुसार उपमान के द्वारा ही 'उपमा की निष्पत्ति 'होती है। उपमान चाहे एक हो अथवा अनेक 'उपमा की निष्पत्ति' उपमान के माध्यम से ही होती है। भामह कहते हैं-- सादृश्य एक उपमान से भी स्पष्टतम से व्यक्त हो जाता है। आचार्य वामन उपमित अर्थात् सादृश्य को आवश्यक मानते हैं। वामन अधिक और न्यून गुण से उत्पन्न सादृश्य या साम्य को उपमालंकार कहते हैं। [illegible]

---

१ आलोचना : पूर्णांक ३२ नवांक १ जुलाई १९६४ : डा०हजारीप्रसाद द्विवेदी
शिल्पकार का स्वतंत्र आत्मदान की व्याकुलता,पृ०१०

के अनुसार सादृश्य की कल्पना ही उपमालंकार कहते हैं। उन्होंने गुण-बाहुल्य को उपमान का और न्यून गुण को उपमेय का धर्म कहा है। दण्डी, रुद्रट, आनन्दवर्द्धन, राजशेखर, कुन्तक, मम्मट, रुय्यक, जयदेव, विश्वनाथ, जगन्नाथ आदि आचार्यों ने भी उपमालंकार का विवेचना में उपमान के तात्विक स्वरूप का निरूपण किया है।

• अप्रस्तुतयोजना का उपमा से अत्यन्त घनिष्ठ सम्बन्ध है। अप्रस्तुत के संयोजन का विधि जो मात्र अलंकार नहीं है, इसी उपमा के अंत: संबंध से होता है। इस उपमा में अप्रस्तुत और प्रस्तुत की परिणति होती है। उपमेय और उपमान के सादृश्य के आधार पर उपमा अलंकार में ही अप्रस्तुत-योजना की संगति होती है। उपमेय और उपमान के सादृश्यगत और साधर्म्यगत सम्बन्ध से ही काव्य सुन्दर बनता है। रमणीयता में भाव, गुण, रस, ध्वनि आदि की सत्ता अनिवार्य मानी गई है। इसीलिए प्रस्तुत और अप्रस्तुत में जो सादृश्य की योजना की जाती है, उसमें यह आवश्यक है कि वह सादृश्यस्वरूप या आकृति के सौन्दर्यबोध की एवं तीव्रतम भावों की अभिव्यंजना कराये।

अप्रस्तुतयोजना और भाव

आचार्यों ने विभिन्न प्रकार से `भाव` शब्द की व्याख्या की है। भरत ने `नाट्यशास्त्र` में जो होते हैं अथवा जो भावित करते हैं उन्हें भाव कहा है। जो रस का भावन करें वे भाव हैं। धनञ्जय ने सुखदु:खादि भावों का भावन करने वाले को भाव कहा है। विश्वनाथ ने भाव को `निर्विकार` माना है। जगन्नाथ कहते हैं, विभावादि व्यञ्जना से व्यज्यमान हर्षादि में से कोई भी भाव है। आचार्य शुक्ल `रसमीमांसा` में कहते हैं --`प्रत्ययबोध, अनुभूति और वेगयुक्त प्रवृत्ति इन तीनों के गूढ़ संश्लेष का नाम भाव है।` शुक्ल जी ने चित्त की वेदना व्याप्तिविशेष को भाव माना है।

डा० नगेन्द्र ने `रससिद्धान्त` में भाव-लक्षण इसप्रकार दिया है --`बाह्य जगत् के सम्पर्क से उत्पन्न मन के विकार जो चेतना को व्याप्त कर लेते हैं, भाव कहलाते हैं --बाह्य जगत् के संवेदनों से मनुष्य के हृदय

में जो विकार उठते हैं, वे ही मिलकर भाव की संज्ञा प्राप्त करते हैं ।

प्रसिद्ध महाकवि वर्ड्सवर्थ काव्य में भाव के महत्व का प्रतिपादन करते हुए कहते हैं -- काव्य शान्ति के समय में स्मरण किए हुए प्रबल मनोवेगों का स्वच्छ प्रवाह है । कुछ पाश्चात्य विचारक भाव को अनुभाव या सहचारी मन:स्थिति या अनुभव की विधि समझते हैं । कुछ ने भावों को वेग या ऊर्जा रूप भी माना है । कुछ विचारक भावों को संवेदनों की संहति मात्र मानते हैं और कुछ विसंहति के रूप में मानते हैं । अनेक मनोवैज्ञानिक भाव के विशिष्ट रूप और भेद- प्रभेदों को स्वीकार करते हैं ।

निष्कर्ष यह है कि हृदय में उठने वाले विकार भाव हैं। भावों की उद्भावना मूलत: मूर्त और गोचर तथा अमूर्त और अगोचर रूपों से हुआ करती है, जो बिम्बात्मक रूप में अप्रस्तुतों की योजना में सहायक होते हैं । अत: इसप्रकार काव्य में भावों की अनिवार्य और व्यापक महत्ता है । रामदहिन मिश्र कहते हैं --`अप्रस्तुतयोजना तो भावव्यंजना के लिए ही की जाती है । भावव्यंजक अप्रस्तुतयोजना से कवि की अभिव्यक्ति की कुशलता आंकी जाती है ।`[1] मिश्र के अनुसार भावानुगामिनी अप्रस्तुतयोजनायें बड़ी मर्मस्पर्शिनी होती हैं और भाव को हृदय खोलकर रख देती हैं । आचार्य रामचन्द्र शुक्ल कहते हैं-- `भाव की प्रेरणा से जो अप्रस्तुत लाए जाते हैं, उनकी प्रभविष्णुता पर कवि की दृष्टि इस बात पर रहती है कि इनके द्वारा भी वैसी ही भावना जगे, जैसी प्रस्तुत के सम्बन्ध में है । भारतीय काव्यपद्धति में उपमान चाहे उदासीन हों, पर भाव के विरोधी कभी नहीं होते । भाव का अभिप्राय साहित्य में तात्पर्य-बोध मात्र नहीं, बल्कि वह वेगयुक्त और जटिल अवस्थाविशेष है,जिसमें शरीर वृत्ति और मनोवृत्ति दोनों का योग रहता है ।`[2]

शुक्ल जी के उपर्युक्त कथन से भाव और अप्रस्तुतयोजना का सम्बन्ध स्पष्ट हो जाता है । भाव अनुभूतिपरक होते हैं । कवि वस्तुओं के माध्यम से कल्पना के द्वारा हृदय में एक बिम्ब ग्रहण करता है, उस बिम्ब के

---

१ `काव्य में अप्रस्तुतयोजना`,पृ०८० ।

२ `रसमीमांसा`, पृ०२६५,२५५ ।

द्वारा वह सादृश्य के आधार पर अप्रस्तुत को लाता है,जो प्रस्तुत के रूप को अभिव्यक्त करता है । अप्रस्तुतयोजना में तद्गत भावों की आन्तरिक संगति अनिवार्य है । इस प्रकार अप्रस्तुतयोजना में भावों को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है ।

अप्रस्तुतयोजना और कल्पना

भारतीय साहित्यशास्त्र में जिसे प्रतिभा कहा गया है, उसे ही पाश्चात्य विद्वानों ने कल्पना कहा है । प्रतिभा और कल्पना को एक ही माना गया है । कवि प्रस्तुत के लिए कल्पनाश्रित बिम्बात्मक अप्रस्तुत की योजना करता है । भावों के प्रवर्तन के लिए भावना या कल्पना की आवश्यकता पड़ती है । काव्य-तत्वों में कल्पना को अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है । कल्पना के द्वारा ही कवि पूर्ण स्वाभाविक चित्र प्रस्तुत करता है । पाश्चात्य विद्वानों ने तो भावपक्ष की उपेक्षा करके कल्पना को अधिक महत्व प्रदान किया है,परन्तु भारतीय विद्वान् भावप्रेरित कल्पना को अधिक आकर्षक मानते हैं । ऐसी कल्पनाएं पाठक के हृदय में भाव जागृत करके उसे काव्यानन्द की प्राप्ति कराती है । शुक्ल जी के अनुसार रसावयवों का निर्माण कल्पना करती है । अप्रस्तुतों की योजना भी कल्पना द्वारा ही होती है,जो भावोत्कर्ष अथवा रसंचार में सहायक सिद्ध होते हैं । कल्पना के द्वारा ही बिम्बनिर्माण होता है । अप्रस्तुतयोजना में कल्पना के अभाव में बिम्बनिर्माण होना असंभव है । कल्पना के द्वारा ही भावों एवं विचारों को अभिव्यक्त किया जाता है । आधुनिक पाश्चात्य समीक्षा क्षेत्र में तो कल्पना शब्द से अप्रस्तुत विधायिनी कल्पना ही समझी जाती है । कल्पना और अप्रस्तुतयोजना का घनिष्ठ सम्बन्ध है । कल्पना के अभाव में बिम्ब-निर्माण असम्भव है और बिना बिम्बों के अप्रस्तुतयोजना नहीं की जा सकती है । अप्रस्तुतों की योजना में समनुरूप कल्पना,भाव और भाषा का योगदान आवश्यक है ।

अप्रस्तुतयोजना और बिम्ब

बिम्ब उसको कहते हैं जो पदार्थ को मूर्त रूप प्रदान करता है, चित्रबद्ध करता है तथा प्रतिबिम्बित करता है । बिम्ब को हम भावगर्भितशब्द-चित्र कह सकते हैं । यह पाठक के हृदय में भावजागृत करता है । डा० नगेन्द्र कहते हैं-- `काव्य-बिम्ब शब्दार्थ के माध्यम से कल्पना द्वारा निर्मित एक ऐसी मानस-छवि है, जिसके मूल में भाव की प्रेरणा रहती है`[1]। कवि भाव, विचार, कल्पना और अनुभूति के माध्यम से ही बिम्ब की कल्पना करता है । अलंकार, ध्वनि, वक्रता के साथ बिम्ब का घनिष्ठ सम्बन्ध है । सादृश्यमूलक अलंकार प्राय: बिम्बात्मक होते हैं । भारतीय काव्यशास्त्रियों -- मम्मट, विश्वनाथ आदि ने अलंकार-लक्षण में `बिम्ब` शब्द का प्रयोग किया है ।

`दृष्टान्त: पुनरेतेषां सर्वेषां प्रतिबिम्बनम्` ।

(मम्मट : काव्यप्रकाश १०।१५५)

`दृष्टान्तस्तु सधर्मस्य वस्तुन: प्रतिबिम्बनम्` ।

(विश्वनाथ : साहित्यदर्पण १०।५०)

डा० नगेन्द्र ने बिम्ब को पदार्थ नहीं माना है, वरन् उसकी प्रतिकृति या प्रतिच्छवि माना है अर्थात् बिम्ब मूलसृष्टि नहीं, पुन:सृष्टि है । इन्द्रियों के सन्निकर्ष से प्रमाता के चित्त में उद्बुद्ध होने वाले चित्र को बिम्ब कहते हैं । बिम्ब का रूप मूर्त ही होता है, परन्तु उसका विषय मूर्त और अमूर्त दोनों हो सकता है । अनाकृष्ट और गोचर, अमूर्त बिम्बों को काव्यबिम्ब कहते हैं । काव्य-बिम्ब के लिए यह आवश्यक नहीं है कि कोई पदार्थ सामने उपस्थित हो, कल्पना के द्वारा उद्बुद्ध होने वाले काव्यबिम्बों में परोक्ष रूप से ऐन्द्रिय तत्त्व विद्यमान रहते हैं । सार्थक शब्द में बिम्ब अवश्य विद्यमान रहता है, शब्द और अर्थ ही तो काव्य-बिम्ब के माध्यम हैं । काव्य-बिम्ब का निर्माण सर्जनात्मक कल्पना से होता है और उसके मूल में राग की प्रेरणा अवश्य रहती है । शुक्ल जी ने लिखा है कि काव्य का कार्य केवल अर्थ-ग्रहण कराना नहीं है,

---

१ `काव्यबिम्ब`, पृ०५ ।

बिम्ब ग्रहण कराना ही आवश्यक है । यह बिम्ब-ग्रहण निर्दिष्ट,गोचर और मूर्त विषय का ही हो सकता है[1]। कवियों को चाहिए कि वे नए बिम्बों का प्रयोग करें । घिसेपिटे पुराने बिम्ब पाठकों को आकर्षित नहीं कर सकते । संवेदनशील कवि नवीन एवं विषयों के अनुकूल बिम्बों का प्रयोग करते हैं । बिम्ब और विषय की संगति के अभाव में बिम्ब-योजना सफल नहीं हो सकती । बिम्बों में ऐसी शक्ति होनी चाहिए कि कम-से-कम शब्दों के द्वारा अधिक-से-अधिक भाव व्यक्त हो । कवि उपयुक्त शब्दों को चुनकर काव्य में यदि स्थान दे तो बिम्ब-योजना सफल हो सकती है, इसके लिए आवश्यक है कि उसका भाषा पर पूर्ण अधिकार हो ।

`बिम्ब` शब्द का प्रयोग पश्चिम में तीन सन्दर्भों में हुआ है-- मनोवैज्ञानिक, सौन्दर्यशास्त्रीय, कलात्मक कहते हैं -- बिम्ब किसी पूर्वबोध का मूल उद्दीपन के अभाव में आंशिक अथवा समग्र रूप से पुन: सृजन करने वाली स्मृतियां हैं । स्मृति का सम्बन्ध अन्तत:कल्पना से है । स्मृति और कल्पना दोनों के संयोजन से बिम्बोत्पादन की प्रक्रिया चलती है[2]।

सी० डे लेविस के अनुसार बिम्ब एक प्रकार का भाव-समन्वित शब्दचित्र है । एक अन्य स्थल पर लेविस कहते हैं--`बिम्ब-निर्माण में पहली स्थिति है कवि और वर्ण्यवस्तु का तदाकार हो जाना[3]।`इसप्रकार के तादात्म्य के लिए यह आवश्यक है कि कवि में भावोद्रेक की स्थिति एवं कल्पना-शक्ति हो । पाश्चात्य विद्वान् स्पर्जियन कहते हैं --`प्रत्येक उपमा,रूपक, कल्पनाचित्र या काल्पनिक अनुभूति, जिसे कवि अपने विचारों या भावों से समन्वित करके काव्य में प्रयुक्त करता है, बिम्ब कहलाते हैं[4]।

आधुनिक आलोचक बिम्ब को काव्य का अनिवार्य तत्त्व या जीवनी-शक्ति मानते हैं । काव्य-बिम्ब विषयों को स्पष्ट करते हैं,दृश्य,व्यापार

----

१ रामचन्द्र शुक्ल : `रसमीमांसा`,पृ०१६७ ।
२ डा०[illegible] शुक्ल : `काव्य में बिम्बविधान`,पृ०१०४ ।
३ सी०डे० लेविस : `पोयटिक इमेज`,पृ०१८,१७।
४ एफ०ई०स्पर्जियन : `शेक्सपियर्स इमेजरी एण्ड व्हाट इट टेल्स अस`,पृ०५

या भाव को समृद्ध बनाने में सहायक सिद्ध होते हैं तथा कवि की अनुभूति को तीव्रता प्रदान करते हैं । लेविस के अनुसार बिम्ब केवल दृश्य, व्यापार या भाव को ज्यों-का-त्यों प्रतिबिम्बित ही नहीं करते, उन्हें विशिष्ट आकार सजीवता और दिव्य आलोक भी प्रदान करते हैं ।

कवि मानवप्रकृति, मानवेतर प्रकृति, पौराणिक गाथाओं और प्रसंगों, सामाजिक जीवन, धार्मिक वातावरण आदि से सामग्री एकत्र करके सजीव बिम्बों का निर्माण करता है और इस प्रकार अपनी रचनाओं को प्रभावशाली तथा कलापूर्ण रूप प्रदान करता है । अप्रस्तुतयोजना और बिम्बों का अत्यन्त निकट सम्बन्ध है । उपमान, प्रतीक और अलंकार आदि अप्रस्तुत-योजना के माध्यम-उपकरण हैं । उपमान बिम्ब-रचना का साधन है । उपमान का अपना बिम्ब होता है, जो कि अनुभूति या विचार को मूर्त रूप प्रदान करने में सहायक होता है । बिम्ब-विधान के अनेक उपकरणों में से उपमान भी एक उपयोगी उपकरण है । बिम्ब का अलंकारों से भी घनिष्ठ सम्बन्ध है । अलंकारों का क्षेत्र अधिक व्यापक है । बिम्ब का क्षेत्र साम्यमूलक अलंकारों तक ही सीमित है । `अप्रस्तुत -विधान में प्रस्तुत तथ्य अथवा अभीष्ट अर्थ को प्रभावी रीति से व्यक्त करने के लिए कल्पनात्मक साम्य पर आधृत अप्रस्तुत उपकरणों का प्रयोग किया जाता है । ये उपकरण प्रस्तुत विषय के अंग न होकर कल्पनाजात होते हैं, अतः इनके लिए `अप्रस्तुत` शब्द का प्रयोग होता है और सामान्यतः प्रस्तुत विषय का इनके साथ उपमेय-उपमान सम्बन्ध होता है । इस प्रकार यह अप्रस्तुत-विधान सादृश्यमूलक होने के कारण प्रायः बिम्बात्मक ही होता है । परन्तु आधुनिक आलोचनाशास्त्र का बिम्ब-विधान और भारतीय अलंकारशास्त्र का अप्रस्तुत-विधान एक नहीं है, इनमें तदव्याप्ति मानना समीचीन नहीं है । बिम्ब-विधान की परिधि में प्रस्तुत और अप्रस्तुत दोनों का समावेश हो सकता है, केवल अप्रस्तुत ही नहीं, प्रस्तुत भी बिम्ब रूप हो सकता है और होता है[१] ।

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि बिम्ब संवेदना, भाव, अलंकार, रूपक, उपमान, मुहावरे, प्रतीक आदि का समन्वित रूप है । ये सभी

---

१ डा० नगेन्द्र : `काव्य-बिम्ब`, पृ० ७-८ और ४१ ।

काव्याभिव्यक्ति के माध्यम हैं । बिना काव्य-बिम्ब के अप्रस्तुतयोजना नहीं की जा सकती है । सजीवता, नवीनता, तीव्रता, व्यंजकता और भावों या विचारों को उद्वेलित करने की शक्ति जिसमें हो वह बिम्ब अप्रस्तुत-योजना के लिए सफल सिद्ध होता है । अप्रस्तुतों की योजना में प्रस्तुत के अनुरूप कवि बिम्बात्मक कल्पना के द्वारा उपमान को लाता है, जिससे काव्य-अभिव्यक्ति होती है । अत: अप्रस्तुतों की योजना में बिम्बों का विशेष महत्त्व है ।

अप्रस्तुत और प्रतीक

'प्रतीक' शब्द का सामान्य अर्थ है-- अवयव,अंग,पता, चिह्न,निशान आदि । वेद,उपनिषद्,पुराण आदि ग्रन्थों में भी 'प्रतीक' शब्द का उल्लेख हुआ है । ऋग्वेद में प्रतीक शब्द आया है --'पृथुप्रतीक - मध्येधे: अग्नि:' अर्थात् पृथु ने पृथ्वी का प्रतीक अवयव बनाया ।'अमरकोश' में कहा गया है --'अंगप्रतीको अवयव:' अर्थात् प्रतीक का अर्थ है-- अंग अथवा अवयव । अभिधान रत्नमाला में इस प्रकार प्रतीक का अर्थ दिया गया है--'प्रतीयते प्रत्येति वा इति ; एक देश:, अंग:, अवयव: ।' किसी के अवयव को,अंग को प्रतीक कहा जाता है ।

आचार्य शुक्ल प्रतीक के विषय में कहते हैं -- किसी देवता का प्रतीक सामने आने पर जिस प्रकार उसके स्वरूप और उसकी विभूति की भावना चट मन में आ जाती है, उसी प्रकार काव्य में आई हुई कुछ वस्तुएं विशेष मनोविकारों या भावनाओं को जागृत कर देती हैं । जैसे 'कमल' माधुर्यपूर्ण कोमल सौन्दर्य की भावना जागृत करता है । 'कुमुदिनी' शुभ्र हास की, 'चन्द्र' मृदुल आभा की, 'समुद्र' प्राचुर्य, विस्तार और गम्भीरता की, 'आकाश' शून्यता और अनन्तता की, इसी एक प्रकार 'सर्प' से क्रूरता और कुटिलता का,'अग्नि' से तेज और क्रोध का, वीणा से वाणी या विद्या का, चातक से निस्वार्थ प्रेम का संकेत मिलता है ।'

श्री गिरधा मोहन कहते हैं--'प्रत्येक भाषा में प्राय: ऐसे शब्द रहा करते हैं जिनसे केवल ऊपरी अर्थ का ही बोध नहीं होता, बल्कि उस शब्द का उच्चारण करते ही एक रेखा-सी हमारी स्मृति के

समझा जा जाती है ।`

हिन्दी साहित्य-कोश में प्रतीक के विषय में इसप्रकार कहा गया है-- प्रतीक शब्द का प्रयोग उस दृश्य (अथवा गोचर) वस्तु के लिए किया जाता है,जो किसी अदृश्य अगोचर या अप्रस्तुत विषय का प्रतिविधान उसके साथ अपने साहचर्य के कारण करती है अथवा कहा जा सकता है कि किसी अन्य स्तर की समान रूप-वस्तु द्वारा किसी अन्य स्तर के विषय का प्रतिनिधित्व करने वाली वस्तु प्रतीक है । जैसे-- अदृश्य या अगम्य ईश्वर, देवता अथवा व्यक्ति का प्रतिनिधित्व उसकी प्रतिमा या अन्य कोई वस्तु कर सकती है ।

डा० सुधीन्द्र का इस विषय में यह मत है--`प्रतीक वस्तुत: अप्रस्तुत की समस्त आत्मा या धर्म या गुण का समन्वित रूप लेकर आने वाले अप्रस्तुत का नाम है । प्रतीक अप्रस्तुत रूप में अवतार ही है ।` प्रतीक किसी विशेष अर्थ को व्यक्त करने वाला होता है । प्रस्तुत को अभिव्यक्त करने के लिए ये प्रतीक अप्रस्तुत रूप में लाये जाते हैं । चन्द्र सूर्य आदि सद् प्रतीकों का प्रयोग वैदिक काल से होता आ रहा ह ।

प्राकृत,अपभ्रंश और हिन्दी भाषा के कवियों तथा संतों ने प्रतीकों का यथेष्ठ रूप में प्रयोग किया है । प्रतीकों से पूर्व `संधा-भाषा` तो प्रसिद्ध ही है । नाथ,सिद्धों ने अपने सम्प्रदाय के सिद्धान्तों का प्रतिपादन प्रतीकों के माध्यम से किया है । सन्तों तथा सूफियों ने भी बहुतायत से इन प्रतीकों का प्रयोग करके अपनी रचनाओं को गूढ़,रहस्यात्मक रूपप्रदान किया है । प्रतीकों ने उलटबांसियों का रूप ले लिया है । इनके द्वारा दार्शनिक विचारों की अभिव्यक्ति हुई है ।

आधुनिक हिन्दी काव्यधारा के छायावादी तथा रहस्यवादी कवियों ने अनेक प्रतीकों का प्रयोग किया है ।

पाश्चात्य आलोचकों ने प्रतीक को `सिंबल` का पर्याय माना है । पाश्चात्य साहित्य में भी प्रतीकों का प्रयोग होता है । वे सिंबल

शब्द की व्याख्या करते हैं-- किसी अदृश्य वस्तु का दृश्य संकेत । फिर कहते हैं कि किसी अन्य वस्तु को व्यक्त करने वाला संकेत, प्रतीक है । हिन्दी विश्व-कोश में इस मत का खण्डन हुआ है । उसके अनुसार अदृश्य वस्तु को व्यक्त करने वाली वस्तु प्रतीक है, संकेत नहीं हो सकती है । कमल आनन्द का, लक्ष्मी वैभव का प्रतीक है, संकेत नहीं । प्रतीक का प्रयोग अधिक व्यापक अर्थ में होता है । `साइन` और `सिंबल` इन दोनों शब्दों से प्रतीक जाने बढ़ जाता है । भावना तथा धारणा से मन को निर्धारित करता है, उससे प्रतीक समझ में आता है । प्रतीकात्मक स्वभाव का ही परिणाम है कि साहित्यकार तथा कलाकार ऊंची से ऊंची कल्पना कर लेते हैं ।[1] प्रतीक भावना प्रधान होता है जो आस्था और विश्वास समन्वित होता है ।

प्रतीकों का प्रयोग अप्रस्तुत को अधिक भावव्यंजक एवं स्पष्ट करने के लिए किया जाता है । काव्य में प्रतीकों के द्वारा भावाभिव्यक्ति को सबल बनाया जाता है । सौन्दर्य-विधान के लिए भी प्रतीक प्रयुक्त होते हैं । हृदय के भावों को अत्यन्त सुचारु रूप से व्यक्त करने के लिए कवि प्रतीकों का आश्रय ग्रहण करता है, इन्हीं प्रतीकों के द्वारा कवि की भाषा सबल तथा आकर्षक रूप धारण करती है । लाक्षणिक भाषा का प्राण प्रतीक को ही माना जाता है । कवि प्रतीकों की सहायता लेकर अत्यल्प शब्दों के द्वारा रहस्यमयी भावनाओं को प्रकट करता है । श्री सुमित्रानन्दन पन्त प्रतीकों के विषय में अपना मत इस प्रकार प्रकट करते हैं--`प्रतीक एक भावात्मक दर्शन है, जो काव्य के लिए अपेक्षित है ।....काव्य के लिए प्रतीक का महत्व शैली और दर्शन दोनों ही दृष्टियों से अन्योन्याश्रित है ।

श्री लक्ष्मीनारायण `सुधांशु` ने प्रतीक के महत्व पर प्रकाश डाला है, वे कहते हैं `काव्य में अप्रस्तुतयोजना का मुख्य उद्देश्य है, भावोत्तेजना । जिस अप्रस्तुत में जितना ही प्रतीकत्व रहेगा, उसपर की गई अन्योक्ति उतनी ही मार्मिक होगी ।`[2] डा० केसरीनारायण शुक्ल कहते हैं --

---

१ `हिन्दी विश्वकोश`, खण्ड७, पृ०४५८,४६० ।

२ लक्ष्मीनारायण `सुधांशु` : `काव्य में अभिव्यंजनावाद`, पृ०१२८

'काव्य में प्रतीकों का उद्देश्य केवल सजावट नहीं है, प्रत्युत वे काव्य के आधारभूत अंग हैं, केवल कवि के भावावेश में उद्भूत प्रतीक ही पाठकों में वैसी भावना जगाने में समर्थ होते हैं ।' आगे वे कहते हैं--'सुन्दर रूप के समान सौन्दर्यपूर्ण उपमान और प्रतीक भी कवि की सच्ची भावानुभूति के द्योतक होते हैं । इन प्रतीकों का अपनी देश की परम्परा, इतिहास, जलवायु तथा जाति के आचार-विचार से घनिष्ठ सम्बन्ध होता है'[1] । डा० रामकुमार वर्मा ने व प्रतीकात्मक शैली को छः वर्गों में विभक्त किया है-- सौन्दर्यात्मक अनुभूति की अभिव्यक्ति के लिए, किसी भाव को छिपाकर चमत्कार उत्पन्न करने के लिए, दार्शनिक भावधारा को अभिव्यक्ति के लिए, रहस्यात्मक अनुभूति की परस्पर विरोधी उलटवासियों के रूप में : अभिव्यक्ति के अवसर पर, कवि-सत्य को आदर्श रूप देने के लिए तथा मनोवैज्ञानिक भावना के क्षेत्र-विस्तार के लिए[2] ।

मार्मिक अन्तर्दृष्टि सम्पन्न कवि ही सफलतापूर्वक प्रतीकों का प्रयोग कर सकता है ।सशक्त एवं सफल काव्याभिव्यक्ति के लिए प्रतीकों में व्यंजकता का गुण होना आवश्यक है । प्रतीक अपने मूल रूप में उपमान होता है । जो उपमान स्वतन्त्र न रहकर किसी वस्तु या पदार्थ विशेष के मूर्त हो जाते हैं, वे ही प्रतीक कहलाते हैं । सभी साहित्यकारों ने प्रतीक के महत्व को स्वीकार किया है । अलंकार,रस,शब्दशक्तियाँ आदि सभी तत्वों को प्रतीक अपने में आत्मसात् किए हुए है । काव्य के ये सभी तत्व प्रतीकात्मक और आलंकारिक शैली में सौन्दर्यात्मक अनुभूति के आधार पर सादृश्य और साधर्म्य के द्वारा एक समग्र बिम्ब का निर्माण करते हैं । काव्यजगत का यह काल्पनिक बिम्ब दूसरे शब्दों में अप्रस्तुत ही है ।

'अप्रस्तुत योजना के उपर्युक्त संबंध-निर्वाह की भावभूमि को ध्यान में रखकर समग्र रूप से यह कहा जा सकता है कि अप्रस्तुत योजना का

---

१ डा० केसरीनारायण शुक्ल : 'आधुनिक काव्यधारा',पृ०१२७ ।

२ डा० रामकुमार वर्मा : 'हिन्दी साहित्य में प्रतीक योजना',पृ०३८८ हिन्दी अनुशीलन, धीरेन्द्र वर्मा विशेषांक

काव्य के समस्त क्षेत्रों में अभिव्यंजनावश्यात्मक और समन्वयात्मक सम्बन्ध है। वैसे भी काव्य का कोई भी तत्व चाहे वह अलंकार हो, रस हो, भाव हो, कल्पना हो, प्रतीक हो या बिम्ब हो, सभी एक-दूसरे के पूरक हैं। इनका अलग-अलग विश्लेषण तो मात्र सुविधा के लिए आचार्यों द्वारा किया गया है। काव्य में अप्रस्तुतों की योजना जो कल्पना जब कवि करता है तो वह अनुभूति के समय अपनी दृष्टि का केन्द्रबिन्दु काव्य के उपर्युक्त सभी तत्वों पर केन्द्रित करता है। कवि की यह अनुभूति भावों और विचारों का आधार ग्रहण करती है और भाषा के माध्यम से एक काल्पनिक बिम्ब के रूप में मूर्त की तुलना अमूर्त से, अमूर्त की तुलना मूर्त से, एवं मूर्त की मूर्त से करती है। अस्तु अप्रस्तुतयोजना काव्य का आधारस्तम्भ है जो कवि एवं सहृदय वर्ग को एक ऐसे लोक की कल्पना कराता है, जिसमें सौन्दर्यजनित आह्लादकता होती है।[१]

-o-

---

१ विद्याधर : 'भारती साहित्य में अप्रस्तुतयोजना', पृ०१२२।

अध्याय -- ३

-0-

प्रतिनिधि सन्त कवियों तथा रचनाओं का परिचय

हिन्दी साहित्य के भक्तिकाल की निर्गुण शाखा

भक्तिकाल की निर्गुण धारा के सन्तकवियों का मुख्य उपजीव्य निर्गुण ब्रह्म की उपासना का उपदेश था । विभिन्न धार्मिक सिद्धान्तों से प्रभावित इन सन्तों की भक्ति-भावना का प्रभाव हिन्दू तथा मुसलमान दोनों पर पड़ा । सिद्धों तथा नाथों से प्रभावित होकर इन सन्तों ने योग को भी अपनी भक्ति में स्थान दिया । दार्शनिक दृष्टि से सन्त कवि शांकर अद्वैत से भी प्रभावित थे । मूर्ति-पूजा तथा धर्म के कर्मकाण्डों के खण्डन द्वारा इन सन्तों ने अन्धविश्वास में डूबी हुई जनता का उद्धार करने का प्रयत्न किया । ज्ञान तथा भक्ति का आश्रय ग्रहण करके अपने उपदेशों द्वारा उन्होंने समाज को सुधारने का प्रयास किया ।

निर्गुण धारा के अन्तर्गत सूफी कवियों ने भक्ति में प्रेम-तत्त्व को प्रधान मानकर निःस्वार्थ प्रेम के द्वारा भक्त को ईश्वर में लीन हो

जाने का उपदेश दिया । इन कवियों ने लौकिक प्रेम के द्वारा अलौकिक प्रेम की ओर संकेत किया । भारतीय प्रेम -कथाओं को सूफियों ने अपने काव्य-ग्रन्थों का विषय बनाया । इन कवियों ने ईश्वर को स्त्री रूप में तथा भक्त को पुरुष रूप में चित्रित किया है । सूफियों पर इस्लाम धर्म का यथेष्ठ प्रभाव पड़ा । सन्त कवियों पर उपर्युक्त सूफी सिद्धान्तों का भी थोड़ा-बहुत प्रभाव परिलक्षित होता है ।

वैष्णव-भक्तों से भी सन्तकवि बहुत अधिक प्रभावित हैं । कबीर ने अनेक स्थलों पर वैष्णवों के प्रति असीम श्रद्धा प्रकट की है । विभिन्न धर्मों के ग्राह्य सिद्धान्तों को ग्रहण करके इन सन्तों ने सभी धार्मिक सिद्धान्तों का सुन्दर रूप से समन्वय किया । हिन्दुओं और मुसलमानों की पारस्परिक घृणा एवं असंतोष की भावना को इन सन्तों ने दूर करने का प्रयत्न किया । इस प्रकार तत्कालीन धार्मिक, सामाजिक एवं राजनीतिक दशाओं की शोचनीयता को देखते हुए प्रतीत होता है कि सन्त कवि अपने पृथक व्यक्तित्व को लेकर खड़े हुए । अपनी वाणियों के द्वारा उन्होंने जन-साधारण को अपनी ओर आकर्षित करके उनके भावी कल्याण के मार्ग को प्रशस्त किया ।

सन्त और सन्तकाव्य

विद्वानों ने 'सन्त' शब्द के विभिन्न अर्थ किए हैं-- श्री पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल 'सन्त' शब्द को 'शान्त' से विकसित हुआ मानते हैं । अतः उनके अनुसार 'सन्त' का अर्थ वैरागी या निवृत्तिमार्गी है । आचार्य विनयमोहन शर्मा ने कहा है--"सन्त वह है जो अपनी आत्मा की उन्नति के द्वारा ब्रह्ममिलन के लिए व्याकुल रहता है और लोकमंगल की भावना से युक्त है ।' 'उत्तरीभारत की संत परम्परा' में आचार्य परशुराम चतुर्वेदी इस विषय में विवेचन करते हुए कहते हैं-- ' संत' शब्द का प्रयोग प्रायः बुद्धिमान्,पवित्रात्मा,सज्जन, परोपकारी या सदाचारी व्यक्ति के लिए किया गया मिलता है । कभी-कभी साधारण बोलचाल में इसे भक्त,साधु एवं महात्मा जैसे शब्दों का भी पर्याय

समझ लिया जाता है[1]। `आचार्य चतुर्वेदी कहते हैं कि कुछ लोग `संत` को `शान्त` शब्द का रूपान्तर होना ठहराते हैं। पालि के धर्मग्रन्थ `धम्मपद` में `संत` शब्द का `शान्त` के अर्थ में प्रयोग हुआ है। कुछ विद्वान् `संत` का अर्थ `फलदाताओं में श्रेष्ठ` भी बतलाते हैं। संत का अर्थ लोकानुग्रहकारी भी बतलाया जाता है। परन्तु चतुर्वेदी जी के मत में ये सब अर्थ जिनका विभिन्न विद्वानों द्वारा अनुमान किया गया है, संतों की प्रशंसा के द्योतक जान पड़ते हैं[2]। कुछ महात्माओं ने, जैसे गोस्वामी तुलसीदास, गरीबदास, पलटू साहब आदि ने, सन्त एवं परमात्मा में कोई मौलिक अन्तर नहीं माना है। इस विषय में आचार्य चतुर्वेदी इस प्रकार अपना मत प्रकट करते हैं --
``संत` शब्द, इस विचार से उस व्यक्ति की ओर संकेत करता है, जिसने सद्‌रूपी परमतत्व का अनुभव कर लिया हो और जो, इस प्रकार अपने व्यक्तित्व से ऊपर उठकर उसके साथ तद्रूप हो गया हो। जो सत्यस्वरूप, नित्यसिद्ध वस्तु का साक्षात्कार कर चुका है अथवा अपरोक्ष के उपलब्धि के फलस्वरूप अखण्ड सत्य में प्रतिष्ठित हो गया है, वही संत है[3]।` वस्तुतः `संत` शब्द का अर्थ बहुत व्यापक है। संतों को आदर्श महापुरुष माना जाता है। सन्त निरासक्त होकर समाज में रहते हैं और निःस्वार्थ भाव से विश्व-कल्याण में लगे रहते हैं। निर्गुण भक्ति के आधार पर साधना करने वाले विट्ठल या वारकरी सम्प्रदाय के प्रचारक जिनमें ज्ञानदेव, नामदेव, तुकाराम प्रमुख हैं, संत कहलाते थे। अनेक बातों में इन्हीं के समान होने के कारण उत्तरी भारत के कबीर आदि भक्त भी संत ही कहलाए।

इन संतों ने अपने उपदेशों को जन-साधारण तक पहुंचाने के लिए अनेक पदों की रचनाएं कीं, जो कि `बानियों` के नाम से प्रसिद्ध हैं। साखी या दोहा तो संतों का प्रिय छन्द है। इसके अतिरिक्त रमैनी, कवित्त तथा सवैया आदि छन्दों में भी उनकी रचनाएं मिलती हैं। सन्त कवियों ने

---

1 `उत्तरी भारत की संत परम्परा`, पृ०३।
2 वही, पृ०४
3 वही, पृ०५

अपने उपदेशों के द्वारा समाज का कल्याण करने का प्रयत्न किया है । सन्तों ने अपनी रचनाओं में निर्गुण ब्रह्म, राम नाम की महिमा, भक्तिभाव, गुरुभक्ति, दया, क्षमा, संतोष, परोपकार आदि का उपदेश दिया है तथा हिंसा, कपट, जातिपांति भेद, माया, कामिनी, कंचन, तीर्थ व्रत, रोजा, नमाज प्रभृति बाह्याचारों का घोर विरोध किया है । संत कवियों ने ईश्वर के प्रति अनन्य प्रेम तथा भक्ति को आवश्यक माना है । इसीलिए उन्होंने अपनी रचनाओं में वैष्णवों के प्रति विशेष आदर व्यक्त किया है । सन्त-काव्य में नाथ सिद्धों की जटिल यौगिक क्रियाओं का भी वर्णन हुआ है । स्थान-स्थान पर इड़ा, पिंगला, सुषुम्ना, कुण्डलिनी,प्राणायाम, विभिन्न चक्र,सहस्रार, सहज, शून्य, सुरति तथा अनाहत नाद आदि शब्दों का प्रयोग किया गया है । संतों ने अपनी गूढ़ साधना-पद्धति का वर्णन प्राय: उलटबांसियों में किया है,जो कि जनसाधारण के लिए अत्यन्त दुरूह है । सन्तकाव्य के संक्षेप में यही विविध विषय हैं ।

संत कवियों की भाषा अत्यन्त सरल है,क्योंकि वे विशेष शिक्षित भी नहीं थे, और इन्होंने जनसाधारण के लिए ही रचनाएं की थी । इनकी सीधी-सादी भाषा में विभिन्न प्रदेशों की भाषाओं के शब्दों का समावेश हो गया है, क्योंकि सन्त कवि प्राय: देश भ्रमण करते रहते थे । इन्होंने आडम्बरहीन भाषा का प्रयोग किया है । अलंकारों को जानबूझ कर लाने का प्रयास कहीं भी नहीं किया गया है, बल्कि इनकी रचनाओं में अलंकार स्वयं ही आ गए हैं । इसीलिए भाषा की स्वाभाविकता न बढ़ गई है । यद्यपि इनकी भाषा साहित्यिक या परिनिष्ठित नहीं है । तथापि इसमें भावों को अभिव्यक्त करने की अद्भुत क्षमता है । सन्तकवि और उनके काव्य अत्यन्त लोकप्रिय रहे हैं । सन्तों के अनेक सम्प्रदाय बने । प्रभावशाली संतों ने अपने-अपने सम्प्रदायों का प्रवर्तन किया । सन्तकाव्य - परम्परा में अनेक कवि हुए हैं । संक्षेप में यह परम्परा इस प्रकार है --

सन्तकाव्य- परम्परा

आचार्य परशुराम चतुर्वेदी ने `उत्तरी भारत की संत परंपरा` में विस्तारपूर्वक सन्त-परम्परा का वर्णन किया है । उन्होंने पूर्वकालीन सन्तों में जयदेव का वर्णन सर्वप्रथम किया है । जयदेव अत्यन्त प्रसिद्ध कवि हैं, इनकी रचना `गीत गोविन्द` लोकप्रिय काव्य-रचना है । इनका जीवनकाल विक्रमीय सम्वत् की १३ वीं शताब्दी माना जाता है । जयदेव के पश्चात् सन्त सदना आते हैं, ये नामदेव के समकालीन माने जाते हैं । नामदेव (सं०१३२७-१४०७) ने इनका उल्लेख किया है । इनका एक पद सिक्खों के `आदिग्रंथ` में पाया जाता है तथा `संतगाथा` इनके कुछ पदों का संग्रह है । संतलालदेव या लल्ला का जन्म सं०१३६२ में हुआ था । इनकी वाणियां कुछ संग्रहों के रूप में प्रकाशित की गयी हैं, जैसे — `लल्ला वाक्यानि`, `लल्लेश्वरी वाक्यानि `, `दि वर्ड ऑफ लल्ला`, `दि प्रोफेटेस ` आदि । संत बेणी को नामदेव के समकालीन संतों में गिना जा सकता है । सिक्खों के `आदिग्रन्थ` में इनके तीन पदों का संग्रह मिलता है । इनके पश्चात् प्रसिद्ध संत नामदेव का नाम आता है । ये ज्ञानदेव के समकालीन माने जाते हैं, ज्ञानदेव का समय ईसवी सन् की तेरहवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध माना जाता है । सिक्खों के `आदिग्रन्थ` में नामदेव की रचनाएं संगृहीत हैं । मराठी संग्रहों में भी इनके पद पाए जाते हैं । आदिग्रन्थ में नामदेव के ६१ पद हैं तथा मराठी संग्रह में १०२ हिन्दी पद संगृहीत हैं । इसके बाद नामदेव के समकालीन संत त्रिलोचन आते हैं । इसके बाद नामदेव के समकालीन संत त्रिलोचन आते हैं । इनका जन्म-काल सं०१३२४ माना जाता है । संत त्रिलोचन के चार पद `आदिग्रन्थ` में संगृहीत हैं ।

इन पूर्वकालीन संतों के पश्चात् कबीर आते हैं ।कबीरदास जी का जन्म संवत् १४५५ में हुआ । संत कवियों में कबीर को प्रमुख स्थान प्राप्त है । कबीर की वाणियों का संकलन बीजक, पंचवाणी तथा गुरुग्रन्थ साहब में हुआ है । इन्हीं के आधार पर कबीर ग्रन्थावली आदि के रूपान्तर हुए,जिनमें

कबीर के पद, साखी तथा रमैनी संगृहीत हैं। कबीर के समकालीन सन्तों में स्वामी रामानन्द अत्यन्त प्रभावशाली व्यक्तित्व लेकर आए। उत्तरी भारत में उन्होंने भक्ति-साधना का प्रचार किया। उनका जन्म-काल सं० १३५६ माना जाता है। रामानन्द की रचनाएं संस्कृत तथा हिन्दी में मिलती हैं। 'श्री वैष्णवमताब्ज भास्कर' तथा 'श्री रामार्चन पद्धति' प्रमुख हैं। सेन नाई का समय सं०१५०५ सन् १४४८ ईसवी माना जाता है। इनका एक पद 'आदिग्रन्थ' में संगृहीत है। सन्त पीपा रामानन्द के प्रसिद्ध शिष्यों में थे। इनका जन्म-काल सं०१४६५-१४७५ के लगभग माना जा सकता है। 'श्री पीपा जी की बानी' नामक संग्रह ग्रन्थ में इनकी रचनाएं संगृहीत हैं। परन्तु ये रचनाएं अभी तक हस्तलिखित रूप में ही हैं। 'आदिग्रन्थ' में भी इनका पद संगृहीत है। इनके पश्चात् श्री रैदास जी आते हैं। संत रविदास या रैदास अपने समय के अत्यन्त प्रसिद्ध सन्त हैं। उनका समय विक्रम की १६ वीं शताब्दी के अन्त तक कहा जाता है। इनकी रचनाओं का संग्रह 'रैदास जी की बानी' में हुआ है, जो बेलवेडियर प्रेस, प्रयाग द्वारा प्रकाशित है। इसके कुछ पद गुरुग्रन्थ साहब में भी मिलते हैं। रैदास जी के पदों का संग्रह श्री संगमलाल पाण्डे तथा श्री रामानन्द शास्त्री एवं वीरेन्द्र पाण्डेय ने भी किया है। धन्ना भगत का समय विक्रम की १६ वीं शताब्दी का प्रथम अथवा द्वितीय चरण माना जाता है। धन्ना भगत के तीन पद 'आदिग्रन्थ में संगृहीत हैं। संत मलिकुन्दर १६ वीं-१७वीं शताब्दी में हुए। इनके पद कुछ संग्रहों में पाए जाते हैं। इस लिखित 'बेगणी संग्रहों' के अन्तर्गत कुछ पद संगृहीत हैं, ऐसा बताया जाता है। कबीर के शिष्यों में कमाल, पद्मनाभ, ज्ञानी, जागूदास, सुरतगोपाल, धर्मदास आदि संत प्रसिद्ध हैं। कबीर के पश्चात् उनके शिष्यों ने कबीर के नाम से पंथ चलाया। इसके पश्चात् तो अनेक सन्तों ने विभिन्न पंथों तथा सम्प्रदायों की स्थापना की और इन सम्प्रदायों के अन्तर्गत अपनी-अपनी रचनाओं के द्वारा जनता को सदुपदेश दिया।

बिश्नोई सम्प्रदाय के प्रवर्तक सन्त जम्भदेव माने जाते हैं। इनका जन्म संवत् १५०८ में हुआ। इनकी रचनाओं में १२० सबद मिलते हैं।

`जंभगीता` के नाम से एक संग्रह प्रकाशित हुआ है, जिसमें इनकी फुटकर रचनाएं संगृहीत हैं । डा० हीरालाल माहेश्वरी ने अत्यन्त अध्यवसायपूर्वक इस सम्प्रदाय के संतों तथा उनकी वाणियों का अनुसंधान किया है । `जांभोजी, विश्नोई सम्प्रदाय और साहित्य` नामक विशाल ग्रन्थ के प्रथम भाग में जांभोजी के जीवन-वृत्त और जम्भवाणी का संकलन है, दूसरे भाग में सम्प्रदाय के परवर्ती संतों और उनकी रचनाओं का परिचय है, जिनमें प्रमुख हैं -- ऊदोजी नैण (सं०१५०५-९४), मेहोजी गोदारा (सं०१५४०-१६०१), वील्होजी (सं०१५८९-१६७३), केसोजी गोदारा (सं०१६३०-१७३६) ।

निरंजनी सम्प्रदाय का प्रवर्तन करने का श्रेय सन्त हरिदास को दिया जाता है । इनका जीवन-काल विवादास्पद है । परशुराम चतुर्वेदी ने यह समय संवत् १५१२-१५८५ माना है । १६ वीं शताब्दी में इन्होंने जन्म ग्रहण किया था । इनके कतिपयों के-संग्रह किन्तु वस्तुतः इनका आविर्भाव १७ वीं शताब्दी वि० में हुआ था । इनकी वाणियों का संग्रह `श्री महाराज-जी की वाणी` में हुआ है । अन्य निरंजनी सन्तों में तुरसीदास, मोहनदास, ध्यानदास, कल्याणदास, सेवादास, नरीदास, आत्माराम, रूपदास, भगवानदास, हरिरामदास, पूर्णदास, जानकीदास आदि प्रमुख हैं । इन संतों की वाणियां भी उपलब्ध हैं ।

इसके पश्चात् नानक-पंथ के प्रवर्तक गुरु नानकदेव का नाम आता है । इनका जन्म विक्रमी संवत् १५२६ में हुआ था । नानक के पद `आदिग्रन्थ` में संगृहीत हुए । गुरुग्रन्थ साहब में नानकदेव की रचनाएं संगृहीत हैं । इनके पश्चात् गुरु अंगद, गुरु अमरदास, गुरु रामदास, गुरु अर्जुनदेव, गुरु हरगोविन्द सिंह, गुरु तेगबहादुर, गुरु गोविन्द सिंह आदि प्रसिद्ध सिक्ख सन्त आते हैं ।

सिद्ध सम्प्रदाय के प्रवर्तक सिद्ध जसनाथ प्रसिद्ध सन्त हैं । `हीरादासी परम्परा` के सन्त हीरादास तथा कमलदास की वाणियां भी उपलब्ध हैं । जैनकवि बनारसीदास तथा आनन्दघन भी सन्त कवि माने जाते हैं । दादू-पंथ के प्रवर्तक संत दादूदास का जन्म संवत् १५६७ में हुआ था ।` दादूदास की ज्ञानवाणी` नामक संग्रह में इनकी वाणियां संगृहीत हैं ।

दादू-पंथ का प्रवर्तन सुप्रसिद्ध संत दादूदयाल ने किया । इनका जन्म समय संवत् १६०१ सन् १५४४ ईसवी माना जाता है । दादूदयाल ने अनेक पदों तथा साखियों की रचना की है, अत: इनकी रचनाओं के कई संग्रह प्रकाशित हुए हैं । रज्जब जी दादूदयाल के प्रधान शिष्य थे। रज्जब जी की रचनाओं का संग्रह डा० ब्रजलाल वर्मा ने `रज्जब बाणी` नाम से प्रकाशित कराया है । इन्होंने `सर्वंगी` नाम का प्रसिद्ध संग्रह ग्रन्थ भी तैयार किया था जो अभी तक अप्रकाशित है । इनका जन्म समय संवत् १६२४ के लगभग हुआ था । संत सुन्दरदास भी दादूदयाल के शिष्य थे । इनका जन्म संवत् १६५३ में हुआ था । इन्होंने ४२ ग्रन्थों की रचना की थी जो `सुन्दर ग्रन्थावली` के अंतर्गत सम्पादित किए गए हैं । दादू के शिष्यों में सन्त गरीबदास,प्रागदास,जगजीवन-दास,रामोदास आदि भी प्रसिद्ध हुए हैं ।

बावरी साहिबा ने बावरी-पंथ की यह प्रसिद्ध संत हैं । इनका समय संवत् १५६६ : १६६२ माना जाता है । बीरू साहब इन्हीं के शिष्य थे । बीरू साहब के शिष्य यारी साहब, मलूकदास(मृ०संवत् १७३९) संत प्राण-नाथ (मृ०सं०१७५१) के समकालीन जान पड़ते हैं । `रत्नावली` में इनकी रचनाएं संगृहीत हैं । इनके शिष्य बुल्ला साहब की रचनाओं का संग्रह `बुल्ला साहब का शब्द सार` मिलता है । गुलाल साहब भी प्रसिद्ध सन्त हो गए हैं । इनके पश्चात् भीखा साहब का स्थान आता है । `भीखा साहब की बानी` में इनकी रचनाएं मिलती हैं । पलटू साहब भी अत्यन्त प्रसिद्ध संत थे ।इनका समय संवत् १८२६ के आस पास माना जाता है । इन्होंने अनेक शब्दों,साखियों, कुण्डलियों आदि की रचना की । मलूक-पंथ के प्रवर्तक संतमलूकदास का जन्म संवत् १६३१ को हुआ था । बेलवेडियर प्रेस द्वारा `मलूकदास जी की बाणी` नाम से इनका रचना-संग्रह प्रकाशित किया गया है ।

प्रणामी सम्प्रदाय की स्थापना संत प्राणनाथ ने सं० १७३५ में हरिद्वार के कुम्भ मेले के अवसर पर अनेक मतावलम्बियों को पराजित कर की थी । इनकी रचनाओं का संकलन `कुलजम स्वरूप` के नाम से प्रकाशित हुआ है, जिसमें इनकी चौदह रचनाएं संगृहीत हैं । लालदास,मुकुन्ददास

(गोरंग स्वामी), छत्रभूषण आदि इनके प्रमुख शिष्य थे । बुन्देलखण्ड के प्रसिद्ध राजा छत्रसाल भी इनके शिष्य थे । इनके सम्प्रदाय में बीतकों की भी रचना हुई थी जिनमें तत्कालीन समाज तथा शासन आदि का प्रामाणिक इतिवृत्त मिलता है ।

धरनीश्वरी-सम्प्रदाय के बाबा धरनीदास, शिवनारायणी-सम्प्रदाय के संत शिवनारायण भी प्रसिद्ध सन्त-कवि थे । इनके पश्चात् दरियादासी सम्प्रदाय के सन्त दरिया साहब का समय संवत् १७२७ माना गया है । दरियादास के २० रचना-ग्रंथों में 'शब्द' या 'बीजक' सबसे बड़ा ग्रन्थ है । 'ग्यान सरोदै', 'सहसरानी' आदि अनेक रचनाओं का संग्रह दरिया-सागर में मिलता है, जिसका सम्पादन स्व० डा० धर्मेन्द्र ब्रह्मचारी ने किया था । रामस्नेही-सम्प्रदाय के संतों में संत रैण, हरिरामदास तथा सन्त रामदास प्रसिद्ध सन्त हुए हैं । कबीर-पंथ के प्रचारक बाबा किनाराम माने जाते हैं । संत भीखमराम धरमंत सम्प्रदाय के सन्त थे । रविभाण-सम्प्रदाय में रविराम साहेब तथा भाण साहेब प्रमुख सन्त माने जाते हैं । चरणदासी-सम्प्रदाय के प्रवर्तक सन्त चरणदास का जन्म संवत् १७६० में हुआ था । इनकी रचनाओं की संख्या २१ बतलाई गई है । गरीब-पंथ के प्रवर्तक गरीबदास का जन्म संवत् १७७४ माना जाता है । इनकी रचनाओं का विशाल संग्रह 'ग्रन्थसाहब' नाम से प्रकाशित हुआ है, जिसमें साखियों तथा पदों, कवित्तों आदि के अतिरिक्त ४३ फुटकल ग्रन्थ मिलते हैं । सन्त पानपदास पानप पंथ के प्रवर्तक संत थे । इनका जन्म संवत् १७७९ में हुआ । साईं पन्थ के भीखनदास प्रसिद्ध संत थे । इनके पश्चात् कुछ अन्य संत आते हैं, जिनमें बलरामदास, दीनदरवेश, संत बूलेदास, सतनामी, संत रोहल आदि प्रमुख हैं । राधास्वामी पंथ के प्रवर्तक शिवदयाल अत्यन्त प्रसिद्ध संत थे । संवत् १८१७ में इनका जन्म हुआ था । 'रत्नसागर' में इनकी रचनाएं मिलती हैं । इस प्रकार हम देखते हैं कि सन्त कवियों की अत्यन्त विशाल परम्परा रही है । इन संतों में कुछ प्रमुख संप्रदायों के प्रवर्तक कवियों की रचनाओं को प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध का विषय बनाया गया है। वे प्रमुख कवि हैं — नामदेव, कबीर, रविदास या रैदास, धर्मदेव, हरिदास, नानकदेव, दादूदयाल, सुन्दरदास, यारी साहब, भीखा साहब तथा प्राणनाथ । ये प्रसिद्ध संत ही सम्पूर्ण सन्त-काव्य का प्रतिनिधित्व करते हैं ।

सन्त नामदेव

नामदेव इतने प्रसिद्ध संत हो चुके हैं कि इनका नाम संत-पंचायतन में लिया जाता है । उत्तरी भारत के संतों पर नामदेव का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है । इन्होंने अनेक संतों का पथ-प्रदर्शन किया । कबीर ने अनेक स्थलों पर नामदेव के प्रति असीम श्रद्धा प्रकट की है । नामदेव वारकरी संत थे और वारकरी सम्प्रदाय के सिद्धांतों से बहुत अधिक प्रभावित थे । वारकरी संत निर्गुण, अद्वैत ब्रह्म के प्रति आस्था रखते थे, परन्तु वे लोग ईश्वर की प्रतिमा के समक्ष भजन-कीर्तन भी किया करते थे । इन लोगों ने न अमीर-गरीब, ऊँच-नीच, स्त्री-पुरुष आदि में कोई भेद-भाव नहीं माना है । वारकरी सन्त निरासक्त भाव से पारिवारिक जीवन व्यतीत करते थे तथा धन-वैभव के प्रति उदासीन थे । विट्ठल भगवान ही इनके इष्टदेव हैं । पंढरपुर में भीमा नदी के किनारे विट्ठल भगवान की मूर्ति बनी हुई है । वारकरी सन्तों की अनन्य भक्ति से परवर्ती सन्त अत्यधिक प्रभावित हुए ।

संत नामदेव का नाम महाराष्ट्री भक्तकवियों में बड़े आदर के साथ लिया जाता है । नामदेव के जन्मकाल के सम्बन्ध में विभिन्न मत हैं । कुछ विद्वानों ने उनका जन्म तेरहवीं शताब्दी में माना है और अन्य लोगों ने चौदहवीं शताब्दी में । नामदेव रचित अभंग के अनुसार उनका जन्म शाके ११९२ कार्तिक शुक्लपक्ष रविवार के दिन हुआ था । अधिकतर विद्वानों ने इसी तिथि को माना है । डा० मोहनसिंह ने सन् १३६० तथा डा०भाण्डारकर प्रो० वासुदेव पटवर्धन ने ई०सन् १३०० से १३५० माना है । बाबा मकारामजी के अनुसार नामदेव का जन्मकाल सन् १२७०ई० है और श्री गंगाधर शास्त्री के अनुसार सन् ११५२ ई० । 'हिन्दी साहित्य का इतिहास लिखने वाले भाटीयशास्त्री ने नामदेव का जन्म सन् १२७०ई० में माना है । अन्य सब मत आधारहीन से लगते हैं । अतः डा० रानाडे, श्री पांगारकर, डा० भुजुले, आचार्य क्षितिमोहन शर्मा तथा आचार्य परशुराम चतुर्वेदी आदि विद्वानों ने अपने अध्ययन के आधार पर यही निश्चित किया है कि नामदेव का जन्म सन् १२७०ई० या संवत् १३२७ में ही मानना उचित है ।

नामदेव के जन्मस्थान के सम्बन्ध में भी विभिन्न मत प्रचलित हैं। 'नामदेव की परिचयी' के लेखक अनन्तदास ने पंढरपुर को ही नामदेव का जन्मस्थान माना है। मराठी-लेखक महीपति ने स्पष्टरूप से नाम तो नहीं लिया है, परन्तु पंढरपुर को ही उनका जन्मस्थान माना है। नामदेव ने स्वयं अपने पिता को नरसी बमनी का छिंपी बतलाया है। डा० भण्डारकर का मत है कि यह स्थान कराड के समीप सतारा जिले में स्थित है, जो आजकल नये नरसिंगपुर या कोठे नरसिंहपुर कहा जाता है[1]। डा० भण्डारकर के इस मत का समर्थन अनेक विद्वानों ने किया है, जिनमें श्री माधवराव अप्पाजी, पांडुरंग शर्मा, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, आचार्य विनयमोहन शर्मा, आचार्य परशुराम चतुर्वेदी तथा श्री मेकालिफ प्रमुख हैं। अधिकतर मराठी विद्वान् श्री आजगांवकर, श्री पांगारकर, श्री भावे तथा श्री तुलपुले आदि ने नरसी बमनी गांव को मराठवाडा के परभणी जिला में माना है। श्री रामचन्द्र जनार्दन ने नामदेव का जन्मस्थान पंढरपुर के समीप गोकुलपुर माना है और नार्वा स्वामी ने ग्वालियर में जन्म होना माना है। श्री रामचन्द्र जनार्दन ने नामदेव का जन्मस्थान पंढरपुर के समीप गोकुलपुर माना है और नार्वाणिकरजी ने ग्वालियर में जन्म होना माना है। परन्तु अन्तिम दो मत निराधार हैं। वास्तव में नामदेव का जन्मस्थान महाराष्ट्र के सतारा जिले के अन्तर्गत कराड के समीप नरसी बमनी गांव को ही मानना चाहिए।

नामदेव की माता का नाम गोणाई या गोणाबाई था। नामदेव दामाशेट के पुत्र थे। उनके पिता दर्जी थे। अतः नामदेव छीपी या छिंपी जाति के कहे जाते हैं। इस जाति का व्यवसाय कपड़े सीना और छापना है। कहा जाता है कि नामदेव के पूर्वज भागवतभक्त थे। दामाशेट भी प्रतिवर्ष पंढरपुर की यात्रा करते थे और विट्ठल के परम भक्त थे। अतः वे

---

१ डा० भगीरथ मिश्र तथा डा० राजनारायण मौर्य : 'सन्त नामदेव की हिन्दी पदावली', पृ०३१।

सब पंढरपुर में ही जाकर बस गए थे । नामदेव अधिकतर साधुओं के निकट रहकर अपना समय व्यतीत करते थे । उनका मन पैतृक व्यवसाय में कभी नहीं लगा । ये विट्ठल के सामने कीर्तन करते थे और इन्होंने संत ज्ञानेश्वर के साथ पुण्यस्थलों की यात्रा की थी । कुछ लोग ज्ञानेश्वर को नामदेव का गुरु होना बतलाते हैं,क्योंकि नामदेव ने उनके प्रति असीम श्रद्धा प्रकट की है । परन्तु महाराष्ट्र की प्रचलित परम्पराओं द्वारा इस मत की अधिक पुष्टि होती है कि नामदेव ने विसोबा व खेचर नामक सन्त को अपना गुरु बनाया। सोपानदेव के प्रति इनकी श्रद्धा को देखकर जनाबाई ने इन्हें ही नामदेव का गुरु बतलाया है । वास्तव में विसोबा खेचर ब ही नामदेव के दीक्षागुरु जान पड़ते हैं ।

सन्त नामदेव के अन्तिम काल का विवरण प्राप्त नहीं है । पंजाब में यह मत प्रचलित है कि संवत् १५०७ विक्रमी में माघ की द्वितीया तिथि को नामदेव ने परलोक गमन किया । आचार्य क्षितिमोहन सेन का मत है कि घुमान गांव में ही नामदेव की मृत्यु संवत् १५२१ सन् १४६४ ई० में हुई । परन्तु आचार्य चतुर्वेदी के अनुसार संवत् १५०७ ही अधिक युक्तिसंगत तिथि है और अधिकतर विद्वानों ने इसी को माना है । नामदेव की समाधि पंढरपुर तथा घुमान गांव दोनों स्थानों में है । इसलिए विद्वानों में मतभेद है कि वास्तव में उनकी मृत्यु किस स्थान पर हुई ? डा० भगीरथ मिश्र तथा डा० मौर्य ने इस विषय में लिखा है कि नामदेव क्योंकि अपने जीवन के २० वर्ष घुमान गांव में ही रहे,इसलिए यह मत अधिक युक्तिसंगत लगता है कि उन्होंने घुमान में ही समाधि ली थी । उनके शिष्य ने संभवतः उनकी अस्थी ले जाकर पंढरपुर में विट्ठल के मन्दिर[१] के सामने रखी होगी, इसलिए वहां भी उनकी समाधि बनवाई गई होगी ।

---

१ भगीरथ मिश्र तथा डा० राजनारायण मौर्य : 'नामदेव की हिन्दी पदावली' पृ०३६ ।

मराठी में नामदेव के नाम से लगभग ढाई हजार पद प्राप्त होते हैं, परन्तु डा० तुलपुले के मतानुसार इनमें से केवल छ: - सात सौ अभंग ही मूलत: नामदेव के हैं । नामदेव के हिन्दी पद बहुत कम पाए गए हैं । `आदिग्रन्थ` में इनके ६१ पद संगृहीत हैं । एक मराठी-संग्रह में १०२ पद पाए गए हैं । आचार्य चतुर्वेदी का मत है, कुल मिलाकर इनकी हिन्दी-रचनाओं की संख्या सवा सौ से भी कम है । परन्तु डा०भगीरथ मिश्र तथा डा० मौर्य ने `सन्त नामदेव की हिन्दी पदावली` के विभिन्न हस्त-लिखित प्रतियों के आधार पर उनके २३४ पदों का संग्रह किया है । संत नामदेव की प्रसिद्धि महाराष्ट्र से लेकर पंजाब तक फैल चुकी थी । इनके असंख्य भक्तों पर इनका बहुत अधिक प्रभाव पड़ा । नामदेव का जीवन भक्ति-रस से आप्लावित था ।

कबीरदास

उत्तरभारत की साधना तथा साहित्य के क्षेत्र में हिन्दी के अन्य कवियों की तुलना में कबीर का विशिष्ट योगदान है । कबीर की ही रचनाओं में सर्वप्रथम भक्ति की स्पष्ट रेखा उभर कर आई । समस्त देश में निर्गुण सम्प्रदायों का जो जाल बिछा है, उन सभी के प्रवर्तक कबीर को ही अपना पथ-प्रदर्शक मानते हैं, लेकिन कबीर ने स्वत: अपना कोई सम्प्रदाय नहीं चलाया । आगे चलकर उनके शिष्यों ने उनके नाम से कबीर-पंथ चलाया और इस प्रकार कबीर के मत का व्यापक रूप से प्रचार हुआ । भारतीय चिन्तन-धारा की दो मुख्य धाराएं हैं-- एक तो वैदिक धारा तथा दूसरी वेदविरोधी धारा ।इनमें से दूसरी धारा में आगे चलकर कबीर हुए,जो कि अपने प्रबल व्यक्तित्व के कारण अनेक भक्त-कवियों पर छा गए । यद्यपि कबीर ने ब्राह्मणों के बाह्याडम्बरों का घोर विरोध किया है, जिसमें मूर्ति-पूजा भी सम्मिलित है,तथापि उनके `राम` के प्रति उनकी असीम श्रद्धा, भक्ति के कारण उन्होंने भक्तों में अपना एक निश्चित स्थान बना लिया है । विद्वानों ने कबीर को ही सन्त काव्य का प्रवर्तक होने का श्रेय प्रदान किया है । प्राय: समस्त सन्त कवि कबीर के विचारों

से प्रभावित जान पड़ते हैं । श्री चतुर्वेदी कबीर के विषय में कहते हैं--
'इसीलिए कबीर साहब की उस ऊंचाई से देखने पर, जहां निर्गुण तथा सगुण के प्रश्न आपसे आप हल हो गए और अद्वैत की भावना में भक्ति को भी स्थान मिल जाने से मस्तिष्क पक्ष अथवा हृदय-पक्ष में सामंजस्य आ गया, वहां 'शून्य', 'सहज', 'प्रेम' तथा 'योग' जैसे शताब्दियों से प्रचलित शब्दों का वास्तविक रहस्य भी खुल गया और व्यर्थ के वितंडावाद की प्रवृत्ति बहुत कुछ निर्मूल प्रतीत होने लगी ।'[१] सन्तों ने कबीर की भक्ति की प्रशंसा की है तथा उन्हें अनुकरणीय माना है । कबीर धार्मिक नेता तथा समाज-सुधारक माने जाते हैं । कुछ लोग उनको शुद्ध विचारक या दार्शनिक मानते हैं, वेदान्त का कबीर पर बहुत अधिक प्रभाव पड़ा है । सन्तकवियों में कबीर अपनी बहुमुखी प्रतिभा के कारण सर्वप्रिय हो गए हैं । उनके जीवनकाल में ही उनकी ख्याति दूर-दूर तक फैल गई थी ।

कबीर की जन्मतिथि के सम्बन्ध में दो साक्ष्य मिलते हैं, परन्तु इनके रचनाकारों का नाम अभी तक अज्ञात है । इनमें पहला साक्ष्य इस प्रकार है --

'संवत बारह सौ पांच में, ज्ञानी कियो विचार ।
काशी में परगट भयो, शब्द कहो टकसार ॥'

यह साक्ष्य विद्वानों द्वारा किसी भी प्रकार मान्य नहीं है । दूसरे साक्ष्य को ही विद्वानों ने मान्यता प्रदान की है, कबीर-पंथी भी इसी दिन कबीर जयन्ती मनाते हैं । यह मान्य साक्ष्य इस प्रकार है --

'चौदह सौ पचपन साल गये चन्द्रवार एक ठाट ठये ।
जेठ सुदी बरसायत को पूरनमासी प्रगट भये ॥'

बाबू श्याम सिंह ने इस छन्द का उल्लेख 'कबीर कसौटी' में किया है । इस प्रकार इस साक्ष्य के आधार पर ज्येष्ठ पूर्णिमा के दिन कबीर

----

१ आचार्य परशुराम चतुर्वेदी : 'उत्तरी भारत की संत परम्परा', पृ० १३२ ।

का जन्म होना माना जाता है । कुछ विद्वानों में इस विषय में बड़ा मतभेद है कि कबीर का जन्म सं०१४५५ की ज्येष्ठ पूर्णिमा को हुआ या सं० १४५६ की ज्येष्ठ पूर्णिमा को । डा० श्यामसुन्दरदास ने `गये` शब्द का अर्थ समाप्त होना लेकर यह सिद्ध किया है कि कबीर का जन्म सं०१४५५ में नहीं हुआ,अपितु सम्वत् १४५६ में हुआ,क्योंकि चन्द्रवार या सोमवार का दिन सं० १४५६ की ज्येष्ठ पूर्णिमा को पड़ता है । कुछ विद्वान् यह सिद्ध करते हैं कि सं०१४५५ की ज्येष्ठ पूर्णिमा शुक्रवार को पड़ती है और सं०१४५६ में मंगलवार को । वास्तव में इस `चन्द्रवार` शब्द से विद्वानों को कुछ भ्रम हो गया है, `चन्द्रवार` का अर्थ सोमवार ले लिया गया है, जब कि यह शब्द किसी स्थान का द्योतक प्रतीत होता है । डा० पारसनाथ तिवारी ने सम्मेलन पत्रिका में `कबीर का जन्मस्थान : बंदवार` शीर्षक लेख में यह सिद्ध किया है कि बंदवार वही स्थान है, जहां तालाब के किनारे शिशु कबीर को जुलाहा दम्पति ने प्राप्त किया था । डा० तिवारी को कबीर के जन्मस्थान के रूप में बंदवार का उल्लेख तीन ग्रन्थों में मिला है । आचार्य परशुराम चतुर्वेदी ने कबीर की आयु ८० वर्ष की सिद्ध करने के लिए सं०१४५५ से कुछ पीछे अर्थात् सम्वत् १४२५ में कबीर का जन्म-काल माना है । किन्तु डा० तिवारी के मत में चतुर्वेदी जी का यह तर्क सन्तोषप्रद नहीं ज्ञात होता है । अत: किसी अन्य प्रामाणिक साक्ष्य के अभाव में सम्वत् १४५५ की ज्येष्ठ पूर्णिमा या अमावस्या के दिन ही कबीर की जन्मतिथि माननी चाहिए ।

कबीर के जन्म-स्थान के सम्बन्ध में भी विद्वानों में मतभेद है । अब कबीर के जन्म-स्थान के रूप में छ: स्थानों का नाम आता है--लहरतारा, मगहर,मिथिला,बेलहरा गांव टक्क (दक्षिण-पूर्वी पंजाब) तथा बंदवार ।

काशी के कबीर चौरा से उत्तर-पश्चिम की ओर लगभग दो मील पर लहरतारा स्थित है । सभी कबीरपंथी इस विषय में एकमत हैं कि लहरतारा ही कबीर का जन्मस्थान है । बहुत से अन्य विद्वान् भी इसी स्थान को कबीर का जन्म-स्थान मानते हैं । लहरतारा का उल्लेख सर्वप्रथम लहनासिंह जी ने `कबीर कसौटी` में सम्वत् १९४२ विक्रमी में किया । अत: लिखित साक्ष्यों की

दृष्टि से यह मान्यता बीसवीं शताब्दी के पूर्व की नहीं जान पड़ती ।

श्री गुरु ग्रन्थ साहब की एक पंक्ति 'पहिले दरसन मगहर पाइओ पुनि कासी बसे आई' के आधार पर डा० गोविन्द त्रिगुणायत तथा डा० रामकुमार वर्मा ने मगहर को कबीर का जन्म-स्थान माना है । परन्तु गुरु ग्रन्थ साहब की एक अन्य पंक्ति 'सगल जनम सिवपुरी गंवाइआ, मरती क बार मगहर उठि आइआ' के आधार पर मगहर को सर्वसम्मति से कबीर का मृत्यु-स्थान माना गया है ।

श्री चन्द्रबली पाण्डेय ने बेलहरा गांव को, जो कि आजमगढ़ जिले है, कबीर का जन्मस्थान माना है । उन्होंने 'बेलहर पोखर' को ही लहरतालाब माना है । परन्तु बनारस में स्थित लहरतालाब को आजमगढ़ के बेलहर पोखर से सम्बद्ध करना भ्रमात्मक है ।

डा० सुभद्रा [illegible] झा ने मिथिला के अन्तर्गत कबीर का जन्मस्थान माना है, परन्तु उनका मत भी मान्य नहीं है ।

डा० माताप्रसाद गुप्त ने कबीर की एक साखी में 'कुरहे कंजनी कुच' इन शब्दों के आधार पर कुरह अर्थात् कुलूत को कबीर का जन्मस्थान माना है और 'कुलूत' संज्ञा उन्होंने टक्क प्रदेश को मानी है । उनका कहना है कि कबीर की भाषा में पंजाबी प्रभाव का बाहुल्य यहां प्रमाणित करता है कि उनका जन्म पंजाब में ही कहीं हुआ था, किन्तु 'कुरहे' शब्द का अर्थ ही उन्होंने गलत लगाया है । इसका वास्तविक अर्थ है 'कराहना', न कि कुलूत प्रदेश ।

डा० पारसनाथ तिवारी ने 'सम्मेलन पत्रिका' (५५+१-२) में प्रकाशित एक निबन्ध 'कबीर का जन्मस्थान : बंधवार' द्वारा यह सिद्ध किया है कि कबीर का जन्म-स्थान बंधवार ही है, जो कि लहरतारा से लगभग तीन मील की दूरी पर स्थित है जिसे बांधपुर गांव कहते हैं, यहां कई तालाब भी हैं । बांधपुर और बंधवार वास्तव में अभिन्न हैं । 'निर्भयज्ञान' नामक एक प्राचीन कबीरपंथी ग्रन्थ में कबीर के जन्म-स्थान के रूप में 'बंधवार' का उल्लेख इसप्रकार हुआ है —'जन प्रगटे बंधवारे जाई ।पूरब प्रगट शब्द गुहराई ।।'

`ज्ञानसागर` नामक एक अन्य कबीर-पंथी ग्रन्थ की एक पंक्ति इस प्रकार है--
`आसन करि आयो बंधवारा । बंधनशाह तहां पगु धारा ।।` कबीरपंथियों के
अत्यन्त प्रसिद्ध ग्रन्थ `अनुराग सागर` में भी बंधवार -प्रसंग मिलता है --
`परसोतम ते हम चलि आई । तब बंधवारा प्रगटे च आई ।।` यह तीनों ही
ग्रन्थ अत्यन्त प्राचीन हैं और इनका कबीरपंथी साहित्य में महत्त्वपूर्ण स्थान
है । `कबीर कसौटी` में उद्धृत यह पंक्तियां बहुत प्रचलित हैं --

`चौदह सौ पचपन साल गिरा, बंधवार इक ठाट ठए ।
जेठ सुदी बरसायतनी, पूरनमासी तिथि प्रगट भए ।।`

इसमें आये हुए `बंधवार` शब्द को लेकर विद्वानों में
मतभेद है । वास्तव में यह सोमवार न होकर किसी स्थान का ही बोधक
जान पड़ता है । अत: इस ग्रन्थ में भी बंधवार- प्रसंग मिल जाता है । इन
साक्ष्यों के आधार पर बंधवार को ही कबीर का जन्म-स्थान होने का श्रेय
प्रदान करना चाहिए । ` `ज्ञानसागर`,`निर्भयज्ञान` और `अनुरागसागर`की
एक शाखा तथा कबीर जन्म संबंधी चौपदी मिलकर उक्त जलाशय को `बंधवार`
के समीप बताते हैं और इन ग्रन्थों की प्राचीनता को देखते हुए उनके साक्ष्य को
ठुकरा
दुकड़क देना उचित बात नहीं जान पड़ता विशेषतया `ज्ञानसागर`पर्याप्त
प्राचीन (अनुमानत: सं०१६५० वि० का) जान पड़ता है । दूसरी और लहरतारा
सम्बन्धी उल्लेख सं० १६४२ वि० से पूर्व नहीं प्राप्त होते । अत: मैं बंधवार को
ही कबीर साहब की जन्मभूमि होने का गौरव प्रदान करने के पक्ष में हूं ।`[1]

कबीर के जन्म से सम्बद्ध प्राय: सभी कहानियों में उन्हें
किसी जलाशय के पास फेंक दिए जाने का उल्लेख मिलता है । कबीर अपने
असली माता-पिता द्वारा किसी कारणवश जन्म से ही परित्यक्त कर दिए
गए थे । सरोवर के तट पर जुलाहा दम्पति को वे प्राप्त हुए । उनके माता-
पिता के नाम के सम्बन्ध में बहुत मतभेद है । कुछ लोग उन्हें विधवा ब्राह्मणी
के गर्भ से उत्पन्न मानते हैं तो कुछ अन्य लोग कबीर को मुस्लिम माता से उत्पन्न

---

१ डा० पारसनाथ तिवारी : `कबीर का जन्मस्थान : बंधवार`,`सम्मेलनपत्रिका`
भाग ५४,संख्या १-२,पृ०३० ।

मानते हैं । `गुरुग्रन्थ साहब` में संकलित एक पद में कबीर ने अपने को `बहुड-गोसाईं` का पुत्र माना है । स्वामी अष्टानन्द को कबीर का पिता माना जाता है । परन्तु निश्चित रूप से कुछ कहा नहीं जा सकता है कि ये ही कबीर के पिता थे । अधिकतर लोग नीरू तथा नीमा को ही कबीर के पोषक माता-पिता मानते हैं । ये नीरू और नीमा जुलाहा जाति के ही थे । कबीर ने भी अपने को एकाधिक बार जुलाहा ही कहा है । कई स्थानों में वे अपने को कोरी भी कहते हैं । ऐसा लगता है कि इन्होंने कोरी का जुलाहा में कोई अन्तर नहीं किया है । गुरु अमरदास,अनन्तदास,तुकाराम आदि ने भी कबीर को जुलाहा जाति का बताया है । कबीर को हिन्दू माना जाए या मुसलमान इस विषय में भी बहुत अधिक मतभेद है। कबीर की रचनाओं में आए हुए कुछ शब्दों को लेकर विद्वान यह तर्क करने लगते हैं कि कबीर मुसलमान थे । परन्तु कबीर की रचनाओं में जहां एक ओर मुसलिम संस्कारों का वर्णन मिलता है, वहां दूसरी ओर वे हिन्दू संस्कारों से भी प्रभावित दिखाई देते हैं । आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी क्षितिमोहन सेन के मत का प्रतिपादन करते हुए कहते हैं कि कबीर त्रिपुरा के `जुगी जाति` के समान योगियों के ऐसे वर्ग से सम्बद्ध थे, जिन्होंने थोड़े ही समय पूर्व इस्लाम धर्म ग्रहण किया था,जिनके परिवारों में हिन्दू तथा मुस्लिम दोनों प्रकार के रीति-रस्म मनाए जाते थे । इनका मुख्य व्यवसाय भी सूत कातना तथा वस्त्र बुनना था । द्विवेदी जी से पूर्व डा० पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल भी इसी प्रकार का मत प्रकट कर चुके थे । इन्होंने कबीर को जन्म से मुसलमान माना था । कबीर पर नाथ-सम्प्रदाय का प्रभाव देखकर डा० बड़थ्वाल कहते हैं कि कबीर किसी प्राचीन जुलाहा जातिके थे जो मुसलमान होने के पहले जोगियों का अनुयायी था । आचार्य द्विवेदी का यह मत है कि कबीरदास का कोरी से जुलाहा बनना जुगी लोगों से प्रभावित नहीं था, बल्कि जुगियों का ही इस्लामी रूप था । बहुत से विद्वानों ने कबीर की जाति के सम्बन्ध में उपर्युक्त दोनों विद्वानों के मत की पुष्टि की है । डा० विश्वपति माळविका ने इस विषय में अपना मत प्रकट करते हुए कहा है कि `कोरी` अथवा `कोली` वस्तुत: `कोलिय` के ही विकृत रूप हैं । ये `कोलिय` जाति के लोग मुसलमानों के आक्रमण के पश्चात् मुसलमान बन गए थे । इसीलिए कबीर की वाणियों में हिन्दू,बौद्ध तथा इस्लाम धर्म का प्रभाव

पीस पड़ता है । 'कोलिय' जाति के लोगों का मुख्य उपम खेती करना तथा वस्त्र बुनना था । सभी विद्वानों ने कबीर को व्यनजोवी ही माना है । सूत कातना तथा वस्त्र बुनना ही उनका मुख्य व्यवसाय था । परन्तु उनका मन अपने व्यवसाय में लगता नहीं था, वे तो भगवद् भजन में लीन रहते थे । सत्संगत करते थे और देशभ्रमण करते थे। उन्होंने कई स्थानों की यात्रा की थी । उनके इस उदासीनता को देखकर उनकी माता बहुत चिन्तित रहती थीं। परन्तु कबीर अपने राम में ही लीन रहते थे, क्योंकि वही तो जगत के पालनकर्ता हैं। कबीर को किसी पाठशाला में शिक्षा नहीं मिली थी, उन्होंने तो यहाँ तक कहा है कि कागज, कलम कभी हाथ में लिया ही नहीं। यद्यपि कबीर ने अपने गुरु का नाम कहीं नहीं लिया है, तथापि गुरु के प्रति उन्होंने असीम श्रद्धा प्रकट की है।

कबीर के गुरु के रूप में कई महात्माओं, फकीरों का नाम लिया जाता है। सबसे पहले प्रसिद्ध महात्मा रामानन्द का नाम आता है। रामानन्द के शिष्य होने का उल्लेख कई ग्रन्थों में मिलता है, जैसे- अनन्तदास कृत 'कबीर साहब की परिचयी', नाभादास के भक्तमाल तथा प्रसंग पारिजात। रामानन्द का देहावसान सं०१४६७ विक्रमी माना जाता है, जिस समय कबीर केवल १२ वर्ष के थे । इतनी कम अवस्था में आध्यात्मिक चेतना का सन्निवेश जरा कठिनाई से माना जा सकता है। शेखतकी नामक फकीर को भी कबीर साहब का गुरु माना गया है । इस नाम के दो फकीर मिलते हैं, एक तो कड़ा मानिकपुर वाले शेखतकी तथा दूसरे झूंसी इलाहाबाद वाले । मानिकपुर के शेख तकी की मृत्यु सं०१६०३ में हुई थी, अत: इन्हें कबीर का समकालीन नहीं माना जा सकता । झूंसी वाले शेखतकी का मृत्युकाल सं०१४८६ मानकर इन्हें कबीर का समकालीन तो माना जा सकता है, परन्तु दोनों का गुरु-शिष्य सम्बन्ध सिद्ध नहीं होता । जौनपुरीसीर निवासी किसी पीताम्बर पीर का भी कबीर ने अपने एक पद में प्रशंसा की है। इनके दर्शन को उन्होंने 'हज्ज' यात्रा के समान पवित्र माना है। परन्तु इस पद की प्रामाणिकता भी संदिग्ध है। भक्ति सुन्दर के प्रति भी कबीर ने श्रद्धाभाव व्यक्त किया है। भक्ति सुन्दर

कबीर के समकालीन भी सिद्ध होते हं। अस्पष्ट साक्ष्य के आधार पर मति सुन्दर को कबीर का गुरु नहीं माना जा सकता। इस विषय में आचार्य परशुराम चतुर्वेदी कहते हैं- फिर भी इन्हें इस सम्बन्ध में अपनी ओर से किसी का नाम लेते हुए न पाकर हमें अन्त में कहना पड़ता है कि ये किसी एक व्यक्ति से दीक्षित न होकर संभवत: अनेक भिन्न-भिन्न व्यक्तियो के सत्संग से लाभ उठाये होंगे। इसी कारण इनकी रचनाओं में प्रयुक्त 'गुरु', 'सतगुरु' या 'गुरुदेव' शब्द प्रसंगानुसार भिन्न-भिन्न बहु व्यक्तियों को निर्दिष्ट करने के लिए आये होंगे।[1]

कबीर की मृत्यु-तिथि को लेकर भी विद्वानों में मतभेद है। इस विषय में चार मत प्रचलित हैं-- कुछ लोग संवत् १५७५ को मानते हैं तो अन्य लोग सं० १५०५ को कबीर की मृत्यु-तिथि मानते हैं। कुछ विद्वानों ने सं० १५४९ तथा सं० १५६९ को भी उनकी मृत्यु-तिथि माना है। कबीर-पंथियों ने संवत् १५७५ को ही मान्यता प्रदान की है। संवत् १५०५ को कबीर की निधन-तिथि मान लेने पर कबीर की अवस्था केवल ५६ वर्ष की सिद्ध होती है, जो कि उनके उपलब्ध चित्रों से मेल नहीं खाते। सभी जनश्रुतियों तथा कबीर-पंथी ग्रन्थों में सिकन्दर लोदी तथा वीरसिंह देव बघेल को कबीर का समकालीन बताया गया है। सं० १५०५ में यदि कबीर का निधन हो गया हो तो यह दोनों कबीर के समकालीन नहीं हो सकते। वीरसिंह देव का राज्यकाल संवत् १५७० से संवत् १५९७ विक्रमी तक माना जाता है। ये राजा शालिवाहनदेव के पुत्र थे। संवत् १५५२ वि० में जब सिकन्दर लोदी ने बांधोगढ़ पर आक्रमण किया था तब वीरसिंह ने ही उसका प्रतिरोध किया था। बिजलीखां के साथ भी वीरसिंह देव का संघर्ष हुआ था। बिजलीखां पठान भी वीरसिंह देव का समकालीन था। ऐतिहासिक दृष्टि से इन दोनों की समकालीनता असम्भव नहीं मानी जा सकती। विभिन्न साक्ष्यों के आधार पर यह निष्कर्ष निकलता है कि संवत् १५७५ विक्रमी में वीरसिंह बघेल और बिजलीखां पठान दोनों विद्यमान थे।[2] डा० तिवारी ने इसी सम्बन्ध में विश्वनाथ महापात्र कृत 'बघेल वंशावली' में

---

१ आचार्य परशुराम चतुर्वेदी : 'उत्तरी भारत की संत-परम्परा', पृ०१६०-१६१।

२ डा० पारसनाथ तिवारी : 'कबीर और वीरसिंह देव बघेल', सम्मेलन पत्रिका' भाग ५६, सं०१, पृ०५,६।

उल्लिखित महत्वपूर्ण तथ्य की ओर संकेत किया है । इसमें यह बताया गया है कि वीरसिंह ने उत्तर की ओर प्रयाग के पास अरैल तक अपने राज्य का विस्तार किया था और उसने कबीर को अपना गुरु बनाकर उनसे अमोघ वरदान प्राप्त किया था -- 'गुरु कै कबीर वरदान वर पायो ।'

इस प्रकार हम देखते हैं कि वीरसिंह देव बघेल, बिजली खां, सिकन्दर लोदी कबीर के समय में वर्तमान थे । अत: कबीर-पन्थी साहित्य में मिलने वाली कबीर की निधन सम्बन्धी घटनाएं ऐतिहासिक दृष्टि से सर्वथा अप्रामाणिक नहीं कही जा सकती । इसलिए सम्वत् १५०५ वि० को न मानकर संवत् १५७५ वि० को ही कबीर के निधन-तिथि के रूप में मान्यता प्रदान करना उचित है ।

अधिकतर विद्वानों ने मगहर ख को ही कबीर का मृत्यु-स्थान माना है । कबीर स्वयं ही कहते हैं--'मरतीबार मगहर उठि आइया' अर्थात् सारा जीवन काशी में व्यतीत करके मृत्यु-काल निकट आने पर वे मगहर चले आए थे । अत: वहीं कबीर का देहान्त हुआ था । मगहर में ही कबीर दफ़नाये गए थे, इसलिए वहां आज भी उनकी क़ब्र वर्तमान है, किन्तु कुछ विद्वानों को इस विषय में सन्देह है कि उनकी मृत्यु मगहर में हुई थी ।पुरी (जगन्नाथ) तथा रतनपुर (अवध) में भी कबीर साहब की समाधियां हैं, इसलिए विद्वानों ने यह मत व्यक्त किया है कि कबीर की मृत्यु मगहर में न होकर इन स्थानों में कहीं हुई होगी । आचार्य चन्द्रबली पाण्डेय ने कबीर की मृत्यु संबंधी घटना का विश्लेषण करते हुए यह बताया है कि कबीर की मृत्यु के पश्चात् बिजली खां पठान ने रातों रात उनके शव को ले जाकर अयोध्या के पास रतनपुर में दफ़ना दिया और वीरसिंह को धोखा देने के लिए मगहर में एक नकली क़ब्र बनवा दी । इसीलिए मगहर वाली क़ब्र को खोदने पर उसमें से पुष्प और पत्र के अतिरिक्त कुछ न मिला, किन्तु कबीरपंथियों ने तथा अन्य विद्वानों ने मगहर को ही कबीर का मृत्युस्थान माना है ।

कबीर की रचनाएं हस्तलिखित तथा मुद्रित दोनों रूपों में मिलती हैं । इस समय कबीर - वाणी की कई परम्परायें प्राप्त हैं १० --

(१) पंचवाणी अथवा दादूपन्थी परम्परा -- इसमें पांच सन्तों की वाणियों का संकलन मिलता है। सभा द्वारा प्रकाशित `कबीरग्रन्थावली` इसी परम्परा की एक प्रति पर आधारित है। इसमें ८०० साखियां, ४०० पद तथा कुछ रमैनियां प्राप्त होती हैं।

(२) निरंजनी पन्थ की परम्परा -- निरंजन पन्थ की परम्परा की पोथियों में कबीर के ६५० पद और १४०० साखियां तथा कुछ अतिरिक्त रमैनियां मिलती हैं।

(३) गुरुग्रन्थ साहब की शाखा -- इसमें २२८ पद तथा २४३ साखियां मिलती हैं।

(४) बीजक की परम्परा -- इसको कबीरपन्थी सबसे अधिक प्रामाणिक संस्करण मानते हैं। बीजक में ११५ पद, ८४ रमैनियां तथा लगभग ३५० साखियां और विभिन्न रागों के लगभग २५ अतिरिक्त पद मिलते हैं।

(५) स्फुट पदों की शाखा -- इसमें कबीर के पदों का ही संकलन है। कबीरचौरा काशी तथा बेलवेडियर प्रेस प्रयाग से प्रकाशित शब्दावलियां इसी शाखा का प्रतिनिधित्व करती हैं।

(६) साखी प्रतियों की परम्परा -- इसमें केवल साखियों का ही संकलन मिलता है।

(७) प्राचीन संकलनों की शाखा -- इसमें १५५ पद, १८१ साखियां रज्जबकृत सर्वंगी नामक संकलन में मिलती है तथा जगन्नाथकृत `गुणगंजनामा` में ४०० साखियों का संकलन प्राप्त होता है।

(८) कबीर की वाणियों की मौखिक परम्परा -- कबीर की वाणियों की मौखिक परम्परा भी प्रचलित है।

आचार्य क्षितिमोहन सेन ने `कबीर` (भाग४) में इनका संकलन किया है। इनमें पंचवाणी-प्रतियों को ही अधिक प्राचीन माना जाता है। अतः कबीर वाणी के प्रामाणिक रूप के उद्धार के लिए इसी का आश्रय अधिक लेना चाहिए। केवल एक ही प्रति में मिलने वाली रचनाएं तब तक प्रामाणिक नहीं मानी जा सकतीं, जब तक कि किसी अन्य स्वतन्त्र शाखा द्वारा

उनकी पुष्टि न हो । अत: पंचवाणी कृतियों के ऐसे अंश जो केवल उसी शाखा में मिलते हैं, पूर्ण निश्चयपूर्वक प्रामाणिक नहीं माने जा सकते । इन्हीं सिद्धांतों के आधार पर डा० पारसनाथ तिवारी ने 'कबीर-वाणी' का निर्धारित पाठ प्रस्तुत किया है । अधिकतर विद्वानों ने डा० तिवारी द्वारा सम्पादित 'कबीर-ग्रन्थावली' को अधिक महत्व प्रदान किया है । आचार्य परशुराम चतुर्वेदी ने 'उत्तरी भारत की संत परम्परा' में डा० तिवारी के 'कबीर ग्रन्थावली' का उल्लेख किया है । आचार्य जी कहते हैं -- ' किन्तु उन्होंने बड़े परिश्रम के साथ कई हस्तलिखित प्रतियों को प्रामाणिक मानकर और उनकी छानबीन करके इनके २०० पद, २० रमैनियों, १ चौंतीसा रमैनी, ७०० साखियों को ठीक माना है[१] ।

सन्त रैदास

सन्त रविदास या रैदास अत्यन्त उच्चकोटि के सन्त थे । उनकी ख्याति भारत में दूर-दूर तक फैली हुई थी । अनेक संतों एवं भक्तों ने रैदास के जीवन से प्रेरणा प्राप्त की है । रैदास के पद भक्तिरस से पूर्ण होने के कारण अत्यन्त लोकप्रिय हैं । रैदास के विषय में नाभादास के मत का उल्लेख करते हुए आचार्य चतुर्वेदी लिखते हैं --'भक्तमाल' के रचयिता नाभादास ने संत रविदास के विषय में लिखते हुए कहा है कि उन्होंने सदाचार के जिन नियमों के उपदेश दिये थे, वे वेद-शास्त्रादि के विरुद्ध न थे और उन्हें नीर-क्षीर-विवेक वाले महात्मा भी अपनाते थे । उन्होंने भगवत्कृपा के प्रसाद से अपनी जीवितावस्था में ही परमगति प्राप्त कर ली थी । उनके चरणों की धूलि की वन्दना लोग अपने वर्णाश्रमादि का अभिमान त्याग कर भी किया करते थे । रविदास की विमल वाणी संदेह की गुत्थियों के सुलझाने में परम सहायक है[२] ।'

सन्त रैदास के जीवनकाल के विषय में कोई अन्त:साक्ष्य नहीं मिलता । कुछ बहि:साक्ष्यों के आधार पर उनके जीवनकाल पर प्रकाश

---

१ आचार्य परशुराम चतुर्वेदी : 'उत्तरी भारत की संत परम्परा', पृ०१७८।

२ वही, पृ०२४८ ।

डालने का प्रयास किया गया है । `सन्त रैदास` में डा० योगेन्द्र सिंह ने रैदास की जीवन-वृत्त पर पर्याप्त प्रकाश डाला है । कुछ प्रसिद्ध लोगों का समकालीन सिद्ध करके रैदास के जन्मकाल के सम्बन्ध में विद्वानों ने अपने मत व्यक्त किए हैं । रैदास को कबीर तथा रामानन्द का समकालीन माना जाता है । भक्तमाल, रैदास की परिचयी, कबीर-रैदास-संवाद, रैदास-रामायण आदि सभी ग्रन्थों में इस बात का समर्थन किया गया है कि कबीर तथा रैदास रामानन्द के शिष्य थे । कबीर और रैदास के जन्म-संवतों में इतना अधिक अन्तर भी नहीं है कि उन दोनों का समकालीन होना असम्भव हो । रैदास कबीर के समय में अवश्य ही वर्तमान थे । कबीर से रैदास आयु में छोटे थे और उन्होंने विभिन्न पंक्तियों में कबीर को अत्यन्त सम्मानपूर्वक स्मरण भी किया है । परन्तु रैदास को रामानन्द का शिष्य मान लेना उचित नहीं जान पड़ता, क्योंकि रामानन्द का जन्म संवत् १३५६ माना गया है और रैदास तो बहुत बाद में हुए थे । यदि रामानन्द की आयु १६० वर्ष तक मानी जाए तभी रैदास का उनके समय में होना सिद्ध किया जा सकता है, परन्तु यह असम्भव है । यह सम्भव है कि सन्तों पर रामानन्द के अत्यन्त व्यापक प्रभाव को देखकर उन सभी को रामानन्द का शिष्य मान लिया गया है । गुरु रूप में रैदास ने रामानन्द का कहीं भी उल्लेख नहीं किया है ।

रैदास धन्ना भक्त के समकालीन थे । धन्ना भक्त से रैदास ज्येष्ठ थे और उन्होंने रैदास के प्रति असीम श्रद्धा भी व्यक्त की है ।

सन्त रैदास मीराबाई के गुरु बताये जाते हैं, अतः वे मीरा के समकालीन सिद्ध होते हैं । आयु में रैदास मीराबाई से बहुत बड़े थे। मीराबाई ने अपने अनेक पदों में अत्यन्त सम्मानपूर्वक गुरुभाव से रैदास जी को स्मरण किया है । उन्होंने स्वयं रैदास को अपना गुरु माना है । मीरा ने उन्हीं से दीक्षा ली थी । अतः रैदास मीरा से ५०-६० वर्ष ज्येष्ठ होकर भी उनके मीरा के समकालीन थे तथा उनके गुरु थे । मीरा का जीवनकाल सम्वत् १५६० से १६०३ तक माना जाता है । [१] इस दशा में रैदास का जन्म-वर्ष लगभग सम्वत् १५०० माना जा सकता है । अधिकतर विद्वानों ने इस मत

---

१ / डा० योगेन्द्र सिंह : `सन्तरैदास`, पृ०१२ ।

का समर्थन किया है । अत: संवत् १५०० का माघी पूर्णिमा, रविवार के दिन सन्त रविदास की जन्म तिथि मान लेना चाहिए । किन्तु सम्भावना भी व्यक्त की जाती है कि मीरा द्वारा उल्लिखित रैदास काशी वाले रैदास नहीं बल्कि राजस्थान के बिश्नोई सम्प्रदाय वाले रैदास इन्दरपाल थे, किन्तु अभी इस सम्भावना के आधार पर अधिक शोधकार्य नहीं हुआ है ।

रैदास के जन्मस्थान के विषय में भी लोगों में पर्याप्त मतभेद है । कुछ विद्वानों ने उन्हें पश्चिमी प्रदेश का माना है तो कुछ अन्य लोगों ने पूर्वी प्रदेश का माना है । रविदास महासभा के अनुयायी यह मानते हैं कि रैदास पश्चिमी उत्तरप्रदेश के निवासी थे । कुछ लोगों का यह मत है कि रैदास के अनुयायियों की संख्या गुजरात तथा राजस्थान में बहुत अधिक है, अत: उनका जन्मस्थान वहीं कहीं होना चाहिए । राजस्थान के चित्तौड़ नामक स्थान में श्री कुम्भश्याम जी का मन्दिर तथा रैदास जी की छतरी बनी हुई है, अत: लोगों का ऐसा विश्वास है कि वहीं उनका स्वर्गवास हुआ होगा । राजस्थान में माण्डोगढ़ को भी रैदास का जन्मस्थान बतलाया जाता है । क्योंकि वहीं पर रविदास का कुण्ड और रविदास की कुटी पाई जाती है । परन्तु इन सब मान्यताओं के आधार पर रैदास का जन्मस्थान निश्चित नहीं किया जा सकता । कुण्ड और छतरी तो उनके भक्तों द्वारा उनकी स्मृति के रूप में महावत बनवायी जा सकती है । ऊपर जो संभावना बिश्नोई सम्प्रदाय के रैदास इन्दरपाल के सम्बन्ध में व्यक्त की गई है, कदाचित् वही चित्तौड़ की छतरी आदि का समाधान कर सके, किन्तु अभी तो दोनों रैदासों को अभिन्न मानने की परम्परा चल रही है । रैदास ने अनेक स्थलों की यात्रा की थी, इसीलिए उन स्थानों में उनके बहुत अनेक अनुयायी बन गए थे । रैदास ने स्वयं ही अपने को बनारस का ही बताया है । '[4]मेरी जाति कुटबांढला ढोर ढोवंता नितहिं बनारसी आसपासा' के द्वारा अन्त:साक्ष्य प्रमाण मिल ही जाता है, अत: बनारस में ही रैदास का जन्म हुआ था । 'काशी माहात्म्य' तथा 'भविष्यपुराण' में उल्लिखित घटनाओं के द्वारा

भी, जिसमें रैदास के साथ कबीर तथा शंकराचार्य का शास्त्रार्थ वर्णित है, इस मत की पुष्टि होती है कि रैदास का जन्म बनारस में ही हुआ था। बनारस में दो स्थल ऐसे हैं, जहां पर रैदास का जन्म होना बताया जाता है। पहला काशी का गोपाल-जी मन्दिर तथा दूसरा बनारस के पास ही मडुवाडीह ग्राम (ग्राम मण्डूर)। मडुवाडीह के पक्ष में ही अधिक सबल प्रमाण मिलते हैं। अतः बनारस के पास मडुवाडीह नामक ग्राम को ही रैदास का जन्मस्थान होने का गौरव प्राप्त है।

`भविष्यपुराण` में रैदास को एक मानदास का पुत्र बताया गया है। लेकिन गुजराती साहित्य में `माणदास` को रैदास का गुरु माना गया है। रैदास-पुराण में उनकी माता का नाम लखवती कहा है। रैदास रामायण में रैदास के पिता का नाम राहू तथा माता का नाम कर्मा बताया गया है। परन्तु इन्हें प्रामाणिक नहीं माना जा सकता। रैदासी महासभा के लोग रैदास के पिता का नाम रग्घू बताते हैं। यही नाम ठीक भी है। डा० योगेन्द्र सिंह ने रविदास रामायण के `राहू` को इसी रग्घू का परिवर्तित रूप माना है। रविदास महासभा के लोगों ने रैदास की माता का नाम `घुरबनिया` बताया है, कुछ लोग इन्हें `करमा` का पुत्र भी मानते हैं। अधिकतर लोग रग्घू और घुरबनिया को ही रैदास के पिता तथा माता मानते हैं। रैदास ने स्वयं ही बतलाया है कि उनका जन्म चर्मकार परिवार में हुआ था। अतः वे जाति के चमार थे। विद्वानों ने भी रैदास को चमार मानकर, चमारों की एक उपजाति `चमकटिया` में उत्पन्न हुआ बताया है। यह उपजाति आज भी उत्तरप्रदेश में पाई जाती है। ये लोग ढोरों का व्यवसाय करते थे, अर्थात् ढोरों या मृत पशुओं को ढो-ढोकर ले जाया करते थे। रैदास भी चर्मकारी का व्यवसाय किया करते थे। परन्तु उनकी रुचि इसमें नहीं थी। वे अपना अधिक समय साधु-सेवा में व्यतीत करते थे। और अधिकतर ईश्वर-भजन में लीन रहते थे। रैदास सात्विक जीवन बिताते थे। उन्होंने अनेक तीर्थों का दर्शन किया तथा अन्य अनेक स्थानों में गए। उनकी ख्याति दूर-दूर तक फैल गई थी। उनके अपने भक्तों से बहुत

अधिक सम्मान प्राप्त हुआ । सन्त रैदास को विशेष शिक्षा नहीं प्राप्त हुई थी । अन्य सन्तों के समान ही उन्होंने भी सत्संग, पर्यटन, वातावरण तथा अन्त:ज्ञान से ही सब कुछ सीखा था । उन्होंने स्वयं भी अपने मन को केवल हरि की पाठशाला में पढ़ने का संकेत दिया है[1]। स्वामी रामानन्द को रैदास का दीक्षा-गुरु माना गया है, परन्तु इस विषय में कोई सबल प्रमाण नहीं मिलता । उन्होंने कहीं भी अपने गुरु के नाम का उल्लेख नहीं किया है ।

रविदासी सम्प्रदाय के लोगों ने तथा रैदास के भक्तों ने चैत वदी चतुर्दशी को रैदास की निर्वाण-तिथि के रूप में मान्यता प्रदान किया है । विद्वानों ने रैदास का मृत्यु-वर्ष सम्वत् १५९७ माना है । `भगवान रैदास की सत्यकथा` में इसी वर्ष को मान्यता प्रदान किया गया है । `मीरा-स्मृति-ग्रन्थ` में सम्वत् १५७६ को रैदास के मृत्यु-वर्ष के रूप में स्वीकार किया गया है । रैदास जी की मृत्यु किस स्थल पर हुई, इस विषय में भी लोगों में मतभेद है । चित्तौड़ के रविदासी भक्त यह विश्वास करते हैं कि चित्तौड़ ही रविदास का निर्वाण-स्थल है, क्योंकि यहीं कुम्भश्याम के मन्दिर के समीप रविदास जी की छतरी बनी हुई है तथा यहीं उनके चरण-चिह्न भी बने हुए हैं । `रैदास-रामायण` में लिखा हुआ है कि तपस्या करते हुए रैदास गंगातट पर ही जीवन-मुक्त हुए । सभी रैदासी-भक्त रैदास का `सदेह गुप्त` होना मानते हैं । रैदास जी का अचानक ही कहीं स्वर्गवास हो गया होगा, इसीलिए किसी को भी यह ज्ञात नहीं है कि उनका निर्वाण-स्थल कौन-सा है ?

रैदास जी के पद अनेक संग्रहों में पाए जाते हैं । उनकी कुछ रचनाएं राजस्थान की ओर अभी तक हस्तलिखित रूप में पड़ी हुई हैं । `रैदास जी की बानी` नाम से प्रयाग के बेलवेडियर प्रेस ने एक रचना-संग्रह प्रकाशित किया है । `गुरु ग्रन्थ साहब` में भी रैदास के पद प्राप्त होते हैं । इन पदों को प्राचीनता के कारण प्रामाणिक माना जाता है । `रैदास जी की बानी` में ८६ पद तथा ६ साखियां संगृहीत हैं । `ग्रन्थ साहब` में उनके ४० पद प्राप्त होते हैं ।

---

१ डा० योगेन्द्र सिंह : `सन्त रैदास`, पृ०२५ ।

नागरी प्रचारिणी सभा, काशी द्वारा संगृहीत गुटकों में सन्त रविदास के भी अनेक पद सुरक्षित हैं। दादूपंथी ग्रन्थ `सर्वांगी` तथा `पंचवानी` में भी रविदास की बानियां संकलित हैं। कल्याण के `संत-अंक` में रैदास जी की आठ-दस रचनाएं मिलती हैं। वियोगीहरि की `संत-वाणी` तथा रामचरण कुरील की `भगवान-रविदास की सत्यकथा` में भी उनकी रचनाएं संगृहीत हैं[1]। संत रविदास की विभिन्न रचनाओं, ग्रन्थों एवं प्रतिलिपियों के आधार पर स्वामी रामानन्द शास्त्री तथा श्री वीरेन्द्र पाण्डेय ने `संत रविदास और उनका काव्य` नामक पुस्तक में रविदास की बानियों का संकलन किया है। श्री संगमलाल पाण्डेय ने `संतरैदास` में रैदास का प्रामाणिक साहित्य दिया है। इस संग्रह में श्री पाण्डेय ने प्रकाशित सामग्री तथा नागरी प्रचारिणी सभा में सुरक्षित रैदास-बानी की हस्तलिखित प्रतियों का उपयोग किया है। डा० योगेन्द्र सिंह ने भी `संत रैदास` में इसी प्रकार का एक संकलन किया है।

जांभो जी

जांभो जी अपने समय के पहुंचे हुए साधक माने जाते थे, इसीलिए कभी-कभी इन्हें `मुनीन्द्र जंभ ऋषि` कहा जाता था। राजस्थान के लोगों पर इनका अत्यन्त व्यापक प्रभाव पड़ा था। राजस्थान के बाहर भी इनके असंख्य अनुयायी बने, जिनसे इन्हें अत्यधिक सम्मान प्राप्त हुआ। जांभो जी के भक्त इन्हें विष्णु भगवान का ही रूप मानते थे। इन्होंने जीवन में पवित्रता, कर्मठता, सादगी, ईमानदारी तथा सच्चाई को बहुत आवश्यक स्थान प्रदान किया था। इनका जीवन जातपांत की भावनाओं तथा आडम्बरों से सर्वथा मुक्त था। डा० हीरालाल माहेश्वरी के शब्दों में--`तत्कालीन मरुप्रदेश में इन्होंने सांस्कृतिक, वैचारिक, सामाजिक और धार्मिक दृष्टि से क्रान्ति की थी। वस्तुत: मनुष्य ही इनका लक्ष्य था। इनको लेकर लिखी गई अनेक: रचनाएं उनके महामहिम व्यक्तित्व का किंचित् परिचय देती हैं। इनकी वाणी का प्रभाव लोक और स्थायी सिद्ध हुआ है[2]। जांभो जी बिश्नोई सम्प्रदाय के प्रवर्तक माने जाते हैं। इस सम्प्रदाय के

---

1 स्वामी रामानन्द शास्त्री, श्री वीरेन्द्र पाण्डेय : `संत रविदास और उनका काव्य` पृ० ८९,९० ।

2 डा० हीरालाल माहेश्वरी : `जांभो जी, विष्णोई सम्प्रदाय और साहित्य` पृ०२५३।(पहला भाग)।

उपास्य देव विष्णु हैं,इसलिए यह विष्णोई सम्प्रदाय कहलाता है ।विष्णोई सम्प्रदाय एक धार्मिक सम्प्रदाय है,अत: इसमें सिद्धान्त, साधना और व्यवहार-तीनों पक्षों का होना अनिवार्य है । निराकार विष्णु ही इस सम्प्रदाय के उपास्य देव हैं । यह विष्णु चतुर्भुजविष्णु का नहीं, अपितु निर्गुण ब्रह्म का पर्याय है । यह लोग विष्णु के अवतारों को तो मानते हैं, परन्तु मूर्ति-पूजा में विश्वास नहीं रखते । वैदिक परम्परानुसार प्रात:काल घी से हवन करना इनका नित्य कर्म है । डा० माहेश्वरी के शब्दों में--' इस प्रकार, सम्प्रदाय में सगुण, निर्गुण मान्यता और वैदिक कर्मकाण्ड-यज्ञ, तीनों समाहित हैं और समन्वित रूप में प्रकट हुए हैं । इसमें वैदिक, औपनिषदिक पौराणिक विचारधाराओं और साधना-पद्धतियों का सम्यक् समन्वय है । जाम्भो जी सारग्राही भी थे । केसोजी ने कहा है कि ३६३ मार्गों का मन्थन करके जाम्भो जी ने यह उत्तम पंथ चलाया था ।'[1]

जाम्भो जी का जन्म सम्वत् १५०८ के भादों बदी अष्टमी, सोमवार को कृतिका नक्षत्र में हुआ । राजस्थान के पीपासर गांव को जांभो जी का जन्मस्थान होने का गौरव प्राप्त है, यह गांव जोधपुर राज्य के नागौर नामक परगने में स्थित है । इनके पिता का नाम लोहट जी तथा माता का नाम हांसा देवी था । लोहटजी का परिवार अत्यन्त सम्पन्न एवं सुप्रतिष्ठित था । वे लोग परमार या पंवार राजपूत जाति के थे । हांसा देवी(अपरनाम-केसर) तथा लोहट जी के जांभो जी एकमात्र पुत्र थे,अत: वे समस्त परिवार के लोगों को अत्यन्त प्रिय थे । वील्होजी द्वारा रचित एक कवित्त के अनुसार जांभो जी ने ७ वर्ष बाललीला में व्यतीत किए, २७ वर्ष तक पशु चराए तथा ५१ वर्ष तक सबद-कथन किया ।[2] ऐसा विश्वास किया जाता है कि वे बाल्यावस्था से ही अलौकिक-शक्ति सम्पन्न थे,अत: इनका आचरण साधारण बालकों से सर्वथा भिन्न था, वे अल्प-भाषी थे । इनका व्यवसाय पशुपालन था,क्योंकि कई स्थानों में इस बात का उल्लेख हुआ है कि जांभो जी पशु चराते थे । इनके पढ़ने-लिखने के विषय में कुछ पता नहीं चलता, यद्यपि वे परम ज्ञानी एवं योगी पुरुष थे । इनके गुरु के सम्बन्ध में भी कुछ पता नहीं चलता । 'सबदवाणी' में एक स्थल पर 'गोरख गरु अपारा' (६३:१६)

---

१ डा० हीरालाल माहेश्वरी : 'जाम्भोजी,विष्णोई सम्प्रदाय और साहित्य',पृ० ४२६(पहला भाग)

२ वही, पृ०२२५।

कहकर जांभो जी ने गोरखनाथ के प्रति सम्मान प्रकट किया है, परन्तु इससे यह स्पष्ट नहीं होता कि उन्होंने गोरखनाथ को गुरु भी माना है । कुछ विद्वानों ने गोरखनाथ को ही इनका गुरु बताया है,परन्तु गोरखनाथ तो जांभोजी से बहुत पहले हुए थे, अत: यह मत ठीक नहीं है । डा० माहेश्वरी के अनुसार गोरखनाथ सम्भवत: इनके मनसा गुरु रहे हों । इस विषय में आचार्य परशुराम चतुर्वेदी अपना मत व्यक्त करते हुए कहते हैं कि राजस्थान में कोई बाला गोरखनाथ हुए थे । स्वामी ब्रह्मानन्द ने जंभ-देव चरित्र में यह लिखा है कि जांभो जी बाला गोरखयतीन्द्र से मिले थे । परन्तु अभी तक इनके जीवनकाल के विषय में कुछ पता नहीं चला है । जांभो जी आजन्म ब्रह्मचारी रहे थे । सम्वत् १५४२ में इन्होंने पीपासर के पास सम्भराथल नामक धोरे (ऊंचे टीले) पर बिश्नोई सम्प्रदाय का प्रवर्तन किया । इन्होंने अनेक स्थानों में भ्रमण किया था, राजस्थान इनका विशेष कार्यक्षेत्र रहा था । सम्वत् १५६३ के मार्गशीर्ष बदी ६ को जांभोजी का बैकुण्ठवास हुआ था । इनके मृत्यु-स्थान के रूप में दो स्थानों का उल्लेख मिलता है। कुछ लोगों ने सम्भराथल को माना है और कुछ ने लालासर को । झूरी कवियों और वील्होजी आदि की रचनाओं में सम्भराथल को ही जांभो जी का मृत्यु-स्थान माना गया है,परन्तु सम्प्रदाय में लालासर को मान्यता प्रदान किया गया है ।डा० माहेश्वरी के मतानुसार सम्भराथल पर ही जांभो जी ने देह त्यागी थी ।

जांभो जी की वाणी `सबदवाणी` नाम से प्रसिद्ध है । इसमें इनके ज्ञानोपदेश हैं । अभी तक इनके १२३ सबद और कुछ मन्त्र प्राप्त हुए हैं । इनकी रचनाओं का एक संग्रह जंभगीता के नाम से प्रकाशित हुआ है, इस संग्रह में जांभो जी की फुटकर रचनाएं एकत्रित की गई हैं । डा० हीरालाल माहेश्वरी ने `जाम्भो जी विष्णोई सम्प्रदाय और साहित्य` के पहले भाग में सबदवाणी का पाठ-सम्पादन किया है । उन्होंने कई प्रतियों की परीक्षा करने के उपरान्त यह सम्पादन किया है ।

सन्त हरिदास

श्री हरिदास जी उच्चकोटि के साधक एवं भक्त के रूप में प्रसिद्ध थे । राजस्थान में उनके असंख्य अनुयायी बन गए थे । आज भी अत्यन्त श्रद्धा के साथ हरिदास जी का स्मरण किया जाता है । उनके आश्चर्यपूर्ण चमत्कारों को देखकर सभी लोग उन्हें सिद्धपुरुष कहते थे । स्वामी हरिदास ने निरंजनी सम्प्रदाय का प्रवर्तन किया था । हरिदास जी निरंजनरूप राम का ही चिन्तन करते थे । उनके अन्य अनुयायी भी राम और हरि के साथ 'निरंजन' शब्द को जोड़कर नाम स्मरण तथा चिन्तन किया करते थे । निरंजन राम ही उनके उपास्य थे, इसीलिए यह लोग निरंजनी कहलाते थे और इनका सम्प्रदाय निरंजनी सम्प्रदाय कहलाया । हरिदास जी ने अपनी साधना में योग और निर्गुण भक्ति का आधार ग्रहण किया था । वे नाथ-पंथ से भी प्रभावित थे । आचार्य परशुराम चतुर्वेदी ने इस सम्प्रदाय की विशेषताओं का उल्लेख करते हुए लिखा है-- निरंजनी साम्प्रदायिक संगठन को महत्व नहीं देते । ये लोग सगुणोपासना अथवा मूर्ति-पूजा को विरोध की भावना के साथ नहीं देखते । निरंजनियों के यहां वर्णाश्रम व्यवस्था के प्रति भी तिरस्कार का भाव नहीं दिखायी देता । यह सम्प्रदाय सामंजस्य की भावना के साथ चलता है, दलबन्दी की भावना को यहां कोई स्थान प्राप्त नहीं है । यहां पर अविरोध की मात्रा अधिक है । निरंजनी सम्प्रदाय में सन्त हरिदास को सर्वश्रेष्ठ स्थान प्राप्त है ।

हरिदास जी के जन्म-काल को लेकर विद्वानों में मतभेद है । हरिदास जी के जीवन-चरित लिखने वाले कुछ लोगों ने यह लिखा है कि उनका जन्म संवत् १५७५ में हुआ । मंगराज - प्रभाकर के लेखक, परचई-लेखक पूर्णदास जी, रामचन्द्र गुजराती के शिष्य आत्माराम जी दाधीच तथा जानकीदास जी ने यह माना है कि उनका जन्म सं० १५७५ में हुआ । कई प्राचीन पत्रों में भी यही संवत् माना गया है । इस मत के विरुद्ध एक दूसरा मत यह है कि सम्वत् १५१२ में हरिदास का जन्म हुआ था । जोधपुर हिस्ट्री, प्राचीन पत्र-साक्षियाँ तथा श्री चन्द्रधर गुलेरी आदि के अनुसार सम्वत् १५१२ ही हरिदास का जन्म-काल सिद्ध होता है ।

श्री रघुनाथ जी ने भी सम्वत् १५१२ को ही उनके जन्म-काल के रूप में स्वीकार किया है । इन सब मतों का अध्ययन करने के पश्चात् श्री मंगलदास स्वामी इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि हरिदास जी का जन्म सम्वत् १५१२ में ही हुआ था । हरिदास जी के जन्मस्थान के विषय में कोई मतभेद नहीं है । हरिदास जी का जन्म राजस्थान के `कापड़ोद` ग्राम में हुआ था । यह ग्राम नागौर जिले में डीडवाणा परगने के पश्चिमोत्तर में है । वर्तमान `कोलिया` के उत्तर-पूर्व दो कोस की दूरी पर आज भी यह कापड़ोद ग्राम स्थित है । हरिदास जी के माता-पिता का नाम विदित नहीं है । ये सांखला राजपूत जाति के थे । प्राचीन समय में क्षत्रिय भूमि- अधिकार या लूट-डकैती से आजीविका चलाया करते थे । हरिदास जी का पूर्वनाम हरिसिंह जी था । गृहस्थी चलाने के लिए हरिसिंह भी जंगल में लोगों को लूटा करते थे । एक बार किसी महात्मा को उन्होंने लूटने के विचार से रोक लिया । उन्हीं महात्मा के सदुपदेश के कारण वे अपने कुकर्मों को त्याग कर आध्यात्मिक चिन्तन की ओर प्रवृत्त हो गए । `तीखी डूंगरी ` नामक पहाड़ी की एक गुफा में रहकर उन्होंने कठोर साधना करके आत्मज्ञान प्राप्त किया और उच्चकोटि के महात्मा कहलाए । लोगों के मार्ग-प्रदर्शन के लिए उन्होंने अनेक स्थानों की यात्रा की । कबीर तथा गोरखनाथ के प्रति हरिदास जी ने असीम श्रद्धा प्रकट की । हरिदास ने अपनी वाणी में गोरखनाथ को अपना गुरु बताया है तथा अपने को उनका बालक माना है । कुछ विद्वानों ने यह माना है कि हरिदास जी ने गोरखनाथ जी से दीक्षा लिया था । कुछ लोग प्रयागदास जी को उनके दीक्षा-गुरु मानते हैं । इस विषय में अपना मत प्रकट करते हुए मंगलदास स्वामी लिखते हैं --`सारांश-- हरिदास जी महाराज ने न तो प्रयागदास जी डाकूजी महाराज के शिष्य थे न ही कृपादासजी के शिष्य प्रयागदास जी से दीक्षा ली । वे आरम्भ से ही गोरखनाथ जी से या उनकी परम्परा के किन्हीं सिद्ध नाथ-महात्मा से दीक्षित हुए- यही संगत है ।`[१]

---

१ मंगलदास स्वामी : `श्री महाराज हरिदास जी की वाणी`,पृ०४७(भूमिका)

प्राय: सभी यह मानते हैं कि फाल्गुन मास की शुक्लपक्ष की षष्ठी के दिन हरिदास जी की मृत्यु हुई । परन्तु मृत्यु-संवत् के विषय में पर्याप्त मतभेद है । हरिदास जी के जीवन-चरित लिखने वाले कुछ लोगों ने,संप्रदाय प्रभाकरकार रामचनलजी मेहता,पूर्णदास,आत्मारामजी दाधीच तथा जानकीदास जी आदि ने सम्वत् १६६५ को ही हरिदास जी के मृत्यु-संवत् के रूप में स्वीकार किया है । 'दधिस्तानुलघुवाणि' के लेखक ने सं०१७०२ को निधन-संवत् के रूप में स्वीकार किया है । जोधपुर से प्रकाशित वाणीमें सं० १७०० निधन-काल माना गया है । पुरोहित हरिनारायण जी ने 'सुन्दर-ग्रन्थावली' की भूमिका में सम्वत् १६७० को उनका अवसान-काल माना है । हरिरामदास जी ने सं० १६०० में हरिदास जी की मृत्यु का उल्लेख किया है । श्री मंगलदास स्वामी ने भी यही लिखा है कि सं० १६०० में हरिदास जी की मृत्यु डीडवाणे में हुई थी । वहीं हरिदास जी की समाधि बनी हुई है । किन्तु उनकी यह मान्यता रघुनाथदास की 'परचई' के साक्ष्य पर आधारित है,जिसमें कहा गया है--

संवत सोलहसे व्ह.सई का । रितु बसंत आनंदमई का ॥

डा० पारसनाथ तिवारी का विचार है कि 'संवत सोलह से व्ह सई का' वस्तुत: सं० १७०० का बोधक है न कि १६०० का, उदाहरणतया रामस्नेही संत हरिरामदास जी ने अपने दीक्षाकाल सं० १८०० को[1] का उल्लेख इस प्रकार किया है--
'हरिया संवत अठारह सौ बरस सई को जान'। सं० १७०० को उनकी निधन-तिथि मान लेने पर उनकी जन्मतिथि को भी कुछ बाद में मानना पड़ेगा ।

हरिदास जी के उपदेशों का कुछ अंश उनकी रचनाओं में प्राप्त होता है । इनकी 'वाणी' के नाम से रचनाएं प्रकाशित हुई हैं । इनमें हरिदास जी के ४७ 'लघु-ग्रन्थ' भी संगृहीत हैं । इन ग्रन्थों में से दो गद्य में और शेष पद्य में हैं । इसमें बहुत से पद रागों के अनुसार दिए गए हैं । इनके कवित्त, कुण्डलियां और चान्द्रायण जैसे छन्दों के अनन्तर साखियों को भी स्थान

---

१ डा० पारसनाथ तिवारी : 'सम्मेलन पत्रिका',भाग ५१,संख्या ३-४ ।

मिला है, सकलितं साखियां भी कुछ कम नहीं हैं[1]। श्री महाराज हरिदास जी की वाणी में श्री मंगलदास स्वामी अत्यन्त परिश्रमपूर्वक हरिदास जी की बानियों का सम्पादन किया है।

गुरु नानकदेव

गुरु नानक ने एक सुसंगठित तथा सुव्यवस्थित सम्प्रदाय का प्रवर्तन किया था, जिसे नानक-पंथ सिक्ख सम्प्रदाय कहते हैं। सिक्ख गुरुओं ने जनसाधारण के लिए एक ऐसे शुद्ध व्यावहारिक धर्म को प्रस्तुत किया, जिसका पालन समाज में रहकर ही किया जा सकता है। समाज में रहकर लोगों को उपदेश दिया गया, इस प्रकार इन गुरुओं के द्वारा अपने व्यक्तिगत आदर्श जीवन को जनता के समक्ष प्रस्तुत किया गया। इन गुरुओं का पवित्र जीवन सभी के लिए अनुकरणीय है। उन लोगों ने यह उपदेश दिया कि कर्तव्य-पालन करते हुए शुद्ध चरित्र का निर्माण करना चाहिए। गुरु नानक वर्ण-व्यवस्था को दूर करके लोगों का समुचित विकास करना चाहते थे। इस धर्म की विशेषताओं का वर्णन करते हुए आचार्य चतुर्वेदी लिखते हैं --` इस धर्म के अनुसार आदर्श व्यक्ति वही हो सकता है, जिसमें ब्राह्मणों की आध्यात्मिकता, क्षत्रियों की आत्मरक्षा-भावना, वैश्यों की व्यवहारकुशलता तथा शूद्रों की लोक-सेवा एक साथ वर्तमान है[2]।` जिस व्यक्ति में ऐसे गुण हों वह आत्मचिन्तन से लेकर सांसारिक उलझनों तक में अविचलित और सभी द्वन्द्वों से मुक्त होकर रहता है। आदर्श तथा व्यवहार दोनों के मध्य सामंजस्य रखना चाहिए। इसीलिए सभी गुरुओं ने अपने सिद्धान्तों को व्यवहार में परिणत करके दिखला दिया है। गुरु नानक ने नाम-स्मरण की महत्ता का उल्लेख किया है, सिक्खों में प्रार्थना का बहुत अधिक महत्व है। सिक्खों ने गुरु नानक को देवत्व की भावना से युक्त करके `निरंकारी` या निराकार बना दिया है। इसी से अनुमान लगाया जा सकता है कि अलौकिक-शक्ति-सम्पन्न

---

१ आचार्य परशुराम चतुर्वेदी : `उत्तरी भारत की संत परम्परा`, पृ०३४५।

२ वही, पृ० ४०१।

नानक देव को अपने अनुयायियों से कितनी अधिक श्रद्धा प्राप्त हुई होगी ।

सिक्खों के धार्मिक साहित्य-संग्रहों में बताया गया है कि विक्रमी सम्वत् १५२६ के वैशाख मास शुक्ल पक्ष की तृतीया को नानकदेव का जन्म हुआ था । लाहौर नगर के दक्षिण-पश्चिम में लगभग तीस मील की दूरी पर स्थित राय भोई के तलवंडी ग्राम को गुरु नानक का जन्मस्थान होने का सौभाग्य प्राप्त है । नानकदेव की माता का नाम तृप्ता तथा पिता का नाम कालूचन्द था । कालूचंद जी गांव के पटवारी थे, ये लोग कृषि करते थे । तलवंडी जिसे आजकल लोग `नानकाना` भी कहते हैं, एक योग्य शासक के आधीन था, इसलिए वहां के लोग सुख शान्ति का जीवन व्यतीत करते थे । इस स्वच्छ, शान्त वातावरण का प्रभाव गुरु नानक पर भी पड़ा, वे बचपन से ही शान्त स्वभाव के थे । अपनी विलक्षण बुद्धि के कारण ये सबको आश्चर्य में डाल देते थे । इन्हें पंजाबी, संस्कृत, हिन्दी तथा फ़ारसी की शिक्षा दी गई । इनको एकांतवास प्रिय था, इसलिए ये पास के जंगल में जाकर घण्टों कुछ विचार किया करते थे । इनको कई महात्माओं का सत्संग प्राप्त हुआ, जिससे प्रेरणा ग्रहण करके ये आध्यात्मिक चिन्तन की ओर प्रवृत्त हुए । नानकदेव का मन गाय-भैंस चराने तथा खेती के काम में नहीं लगता था । माता-पिता के असन्तुष्ट रहने के कारण इन्होंने मोदीखाने में नौकरी कर ली, लेकिन वहां भी इनका मन न लगा । इससे विरक्त होकर ये भ्रमण के लिए चल पड़े । अनेक स्थानों पर उन्होंने उपदेश भी दिया, इस प्रकार सर्वत्र उनके सिद्धान्तों का प्रचार हुआ । लोग इनसे बहुत अधिक प्रभावित भी हुए । गुरु नानक देव के किसी मानव-गुरु के विषय में किसी को कुछ ज्ञात नहीं है । ऐसा कहा जाता है कि स्वयं ईश्वर ही उनके गुरु थे । नानकदेव ने गुरु को अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान प्रदान किया है । उनके अनुसार गुरु के बिना परमेश्वर तक पहुंचना असम्भव है । उन्होंने ईश्वर को `सत-गुरु` कहा है ।

अपने अन्तिम समय में गुरु नानकदेव ने लहिना को गुरु अंगद के नाम से अपने आसन पर बिठला दिया । एक वृक्ष के नीचे बैठकर भजन गाते हुए आत्मचिन्तन में लीन हो गए और वहीं उन्होंने अपने पार्थिव शरीर को

त्याग किया । संवत् १५९५ के आश्विन शुक्ल १० को (या सन् १५३८ ई०) करतार पुर के निवास-स्थान पर गुरु नानकदेव की मृत्यु हुई था ।

गुरु नानकदेव के पदों को `आदिग्रंथ` में संगृहीत किया गया है । `जपुजी` उनकी अत्यन्त लोकप्रिय रचना है । इसमें ३८ छन्द हैं, आदि और अन्त में एक श्लोक है ।`आसा दी वार` दूसरी प्रसिद्ध रचना है । इसमें २४ `पाउड़ियां` हैं । `रहिरास` तथा `सोहिला` नामक संग्रहों में भी उनकी रचनाएं संगृहीत हैं । इनके अतिरिक्त फुटकर पदों के रूप में कुछ रचनाएं `गुरुग्रन्थ साहब` में भिन्न-भिन्न रागों में महला १ के अन्तर्गत संगृहीत हैं । इन रचनाओं में अनेक महत्वपूर्ण विषयों का प्रतिपादन किया गया है,जिनमें ब्रह्म,माया, नाम, गुरु,आत्मज्ञान,भक्ति,नश्वरता आदि प्रमुख हैं । डा० जयराम मिश्र ने गुरु नानकदेव की रचनाओं का टीका सहित सम्पादन `नानक वाणी` में किया है ।

दादूदयाल

सन्तकवियों में दादूदयाल को अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है । दादू-पंथ के अन्य कवियों ने उनकी शैली का अनुकरण करने का प्रयत्न किया है, परन्तु उन लोगों को पूर्ण सफलता प्राप्त नहीं हुई ।दादूदयाल अलौकिक क्षमतासम्पन्न महात्मा थे । उनके भक्तों ने दादू-वाणी से प्रेरणा एवं स्फूर्ति प्राप्त की है । दादू जी ने अपने उपदेशों के द्वारा असंख्य जनों का मार्ग-प्रदर्शन किया है । उनके वाक्यों एवं सिद्धान्तों को लेकर उनके शिष्यों ने दादूपंथ नामक एक नवीन पंथ चलाया । दादू-पंथ के अनुयायी अनेक लोग हैं, वे सर्व-साधारण की तरह जीविका चलाने के लिए विभिन्न कार्य किया करते हैं । दादू-पंथी अपनी आडम्बरहीन जीवनपद्धति के लिए प्रसिद्ध हैं । दादूदयाल द्वारा प्रति-स्थापित एक मंगलमय,उच्च आदर्श जीवनपद्धति को अपनाकर व ये दादू-पंथी शांति-पूर्ण जीवन व्यतीत करने में सफल हुए । इस पंथ में सत्य,अहिंसा और प्रेमभाव को महत्व प्रदान किया गया है । यह पंथ एक ऐसे आध्यात्मिक जीवन का आदर्श प्रस्तुत करता है, जो कि व्यावहारिक रूप धारण कर सकता है । आचार्य चतुर्वेदी

यह लिखते हैं --' दादू मत का मूल स्रोत एक महान साधक की स्वानुभूति एवं जीवन-साधना में निहित है । इसकी बातें केवल सुने सुनाए सिद्धान्तों की अपेक्षा नहीं करतीं और न किसी अन्य से भी अपने अंधानुकरण की कोई आशा रखती है ।'[1] दादूदयाल ने अपने जीवनकाल में ही ब्रह्म-सम्प्रदाय के लिए कार्य आरम्भ किया था । अपने अनुयायियों के साथ वे ब्रह्म के विषय में चिन्तन किया करते थे । उनका यही ब्रह्म-सम्प्रदाय आगे चलकर यह दादू-पंथ के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

सन्त दादूदयाल का जन्म फाल्गुन सुदी ८, बृहस्पतिवार, संवत् १६०१, सन् १५४४ई० में हुआ था । ये अकबर और महाराणा प्रताप के समसामयिक माने जाते हैं । दादू-पंथी यह मानते हैं कि गुजरात प्रदेश के अहमदाबाद नगर में दादूदयाल का जन्म हुआ था । परन्तु इस नगर में दादू जी की जन्मभूमि होने का कोई चिह्न नहीं मिलता, वहां के निवासी भी इस विषय में कुछ नहीं जानते हैं । अत: उचित प्रमाण के अभाव में अहमदाबाद को उनका जन्मस्थान नहीं माना जा सकता । पंडित सुधाकर द्विवेदी का यह मत है कि जौनपुर में दादू जी का जन्म हुआ था । परन्तु यह मत भी ठीक नहीं है । आचार्य चतुर्वेदी इस विषय में कहते हैं-- उपरोक्त दोनों ही मत ठीक नहीं हैं, अत: इस सम्बन्ध में अन्तिम निर्णय दिया जाना सम्भव नहीं है । दादूदयाल के माता-पिता का क्या नाम था, इस विषय में भी मतभेद दिखाई देता है । दादू-पंथी ऐसा विश्वास करते हैं कि दादू जी बालक रूप में साबरमती नदी में बहते हुए पाए गए थे । किसी ब्राह्मण ने इन्हें पाला था । कुछ लोग यह मानते हैं कि इस ब्राह्मण का नाम लोदीराम था और दादू उनके औरस पुत्र थे । इनकी माता का नाम बसीबाई था । ऐसे भी लोग हैं, जो इन्हें हिन्दू नहीं मानते । इन लोगों का ऐसा मत है कि दादू मुसलमानी धुनिया जाति के थे, इनका नाम दाऊद था और इनके पिता का नाम लुकमान था । दादूदयाल के शिष्य रज्जब जी ने भी इन्हें धुनिया जाति का ही माना है । द्विवेदी जी ने इन्हें

---

१ परशुराम चतुर्वेदी : 'दादूदयाल ग्रन्थावली', पृ०६३(भूमिका) ।

मोची बताया है । आचार्य चतुर्वेदी इस विषय में अपना मत प्रकट करते हुए कहते हैं कि दादू धुनिया जाति के ही थे । उनकी स्त्री का नाम हव्वा था तथा पुत्रों का नाम गरीबदास और मिस्कीनदास,पुत्रियों का नाम अव्वा और सव्वा था । इन नामों से भी यही पता चलता है कि दादूदयाल मुसलमान थे । `दबिस्ताने-मजाहिब` नामक फारसी ग्रन्थ में इन्हें `नदफ` या रुई धुन का काम करने वाली जाति का बताया गया है । दादूदयाल के एक पद से भी यह ज्ञात होता है कि ये `पिंजारा` जाति के थे जो कि `धुनिया` शब्द का पर्याय हो सकता है । आमेर में रहते हुए इन्होंने धुनकारी का काम किया भी था । स्वामी दयानन्द ने इन्हें `तेली` माना था । डा० आर०के० के अनुसार `पिंजारा` शब्द वस्तुत: `पीनारा` का `पीणारा` का पर्याय है,जिसका प्रयोग राजपुताने में `तेल पेलने पेरने वालों` के लिए होता है, दादू को `तेलीपीनारा` भी कहते हैं ।[1] आचार्य चतुर्वेदी के अनुसार यथेष्ठ प्रमाणों के अभाव के कारण यह मत मान्य नहीं है । दादू सम्भवत: धुनिया जाति के ही थे । वे अत्यन्त नम्र एवं क्षमाशील स्वभाव के थे । उनका हृदय बहुत कोमल था । उनका व्यक्तित्व अत्यन्त आकर्षक था । इन गुणों के कारण सभी लोग इनसे प्रभावित हो जाते थे और इनका सत्संग प्राप्त कर लोग इन्हें अपना गुरु मान लेते थे । दादूदयाल के अनेक शिष्य बन गए थे, इनमें से ५२ तो अत्यधिक प्रसिद्धि प्राप्त शिष्य थे । दादूदयाल ने अनेक स्थानों की यात्रा की थी ।

इनके गुरु के सम्बन्ध में भी लोगों में मतभेद है । ऐसा विश्वास किया जाता है कि स्वयं हरि ने वृद्ध साधु के रूपमें आकर दादूदयाल को दर्शन दिए थे और उनके मुख में वृद्ध ने पान डाल दिया था, इन्हीं को दादू-पंथी वृद्धानन्द या बुड्ढन कहते थे । इस प्रकार स्वयं `हरिरंजन राम` ने दादूदयाल को उपदेश दिया था । डा० विल्सन ने बुड्ढन को शरीरधारी साधु माना है और उनका मत है कि ये सन्त कबीर की शिष्य-परम्परा में थे । डा० आर कहते हैं अकबर के समय में शेख बुड्ढन वर्तमान थे जो कि सूफियों की क़ादिरी शाखा के अनुयायी थे । यही सम्भवत: दादू के गुरु थे । परन्तु आचार्य

---

1 परशुराम चतुर्वेदी : `दादूदयाल ग्रन्थावली`,पृ०३(भूमिका)

कहते हैं कि यथेष्ठ प्रमाण के अभाव में यह नहीं स्वीकार किया जा सकता कि बुड्ढन ही दादू के दीक्षा-गुरु थे । इस विषय में स्वयं दादू किसी के नाम का उल्लेख न करते हुए कहते हैं --'अंधकारमय प्रदेश में मेरे गुरु ने मेरे सिर पर हाथ रखा, मुझे उनका प्रसाद मिल गया तथा मुझे उस काम काज की दीक्षा भी प्राप्त हो गई ।'[1] ५८ वर्ष और ढाई महीने की अवस्था में जेठ बदी ८ संवत् १६६० में सांभर के निकट नराणे नामक स्थान की एक गुफा में रहते हुए दादूदयाल की मृत्यु हुई थी । उस गुफा में आज भी उनके बाल,तुंबा,चोला और खड़ाऊं सुरक्षित हैं, लोग उनके दर्शन करते हैं ।

दादूदयाल की रचनाओं की संख्या लगभग २० सहस्र मानी जाती है,परन्तु इन सब का प्रामाणिक संग्रह अभी तक प्रस्तुत नहीं किया जा सकता है । दादू जी के शिष्य संतदास तथा जगन्नाथदास ने 'हरडेवाणी' नाम से दादूदयाल की रचनाओं का एक संग्रह प्रस्तुत किया था, परन्तु इन दोनों ने कोई वर्गीकरण नहीं किया था । एक अन्य शिष्य रज्जब जी ने 'अंगबधू' नाम से एक संग्रह प्रस्तुत किया, जिसमें उन्होंने दादूदयाल की रचनाओं को ३७भिन्न-भिन्न अंगों या प्रकरणों में विभक्त किया था । उसके पश्चात् पंडित सुधाकर द्विवेदी ने एक संग्रह नागरी प्रचारिणी सभा की ओर से प्रकाशित कराया,जिसमें २६२३ साखियां और ४४५ पद संगृहीत हैं । जयपुर से डा० राय बलदेव सिंह ने भी एक संग्रह प्रकाशित किया । पंडित चन्द्रिका प्रसाद त्रिपाठी तथा स्वामी मंगलदास ने भी प्रामाणिक संग्रह प्रस्तुत किया था । बेलवेडियर प्रेस,प्रयाग से भी दादूजी की रचनाओं का संग्रह प्रकाशित हो चुका है । इन सब के पश्चात् काशी नागरी प्रचारिणी सभा से आचार्य परशुराम चतुर्वेदी ने एक नया संस्करण प्रकाशित कराया है । चतुर्वेदी जी की 'दादूदयाल ग्रन्थावली' को अधिक प्रामाणिक माना गया है । अत: प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध में इसी का आधार लिया गया है ।

---

१ परशुराम चतुर्वेदी : 'उत्तरी भारत की संत-परम्परा',पृ०४६२ ।

सुन्दरदास

सन्त सुन्दरदास दादूदयाल के अत्यन्त प्रिय एवं योग्य शिष्य थे । दादू-पंथ के अनुयायियों में सुन्दरदास ने अपना सर्वोच्च स्थान बना लिया है । अपने जीवनकाल में ही ये बहुत प्रसिद्ध हो चुके थे । ऐसा विश्वास किया जाता है कि दादूदयाल ने इनके माता-पिता को आशीर्वाद दिया था, उसके पश्चात् उनका जन्म हुआ था । इनका सुन्दरदास नाम भी दादू जी ने ही रखा था । सन्त सुन्दरदास का जन्म चैत सुदी ६,संवत् १६५३ में हुआ था । जयपुर राज्य की प्राचीन राजधानी चौसा नगर को सुन्दरदास का जन्मस्थान होने का गौरव प्राप्त है । उनका जन्मस्थान आज भी खण्डहर के रूप में वर्तमान है । उनके पिता का नाम परमानन्द,उपनाम चोखा था १० और माता का नाम सती था । यह लोग बूसर गोत के खण्डेलवाल वैश्य थे । जब सुन्दरदास सात वर्ष के थे, तब उनके माता-पिता ने उन्हें दादूदयाल के चरणों में डाल दिया था और उनसे दीक्षा का प्रसाद मांगा था । इसी अवस्था से ये दादू जी के शिष्य बन गए थे । गुरु ने उनके सिर पर हाथ रखकर उनके सौन्दर्य की प्रशंसा की थी और कहा था कि यह बालक होनहार है । बचपन बाल्यावस्था से ही ये अत्यन्त प्रतिभासम्पन्न थे । इनकी प्रखर बुद्धि तथा विलक्षण प्रतिभा को विकसित करने के लिए इन्हें ११ वर्ष की अवस्था में ही काशी भेजा गया । इन्होंने साहित्य तथा दर्शन का विशेष अध्ययन किया, सं० १६८२ तक ये अनेक शास्त्रों में पारंगत हो चुके थे । इन्होंने छः वर्षों तक फतहपुर की किसी गुफा में रहकर योगाभ्यास भी किया था । संयमपूर्ण जीवन बिताते हुए इन्होंने अपने गुरु की वाणियों का गंभीर अध्ययन किया था । गुरु दादूदयाल के प्रति सुन्दरदास ने असीम श्रद्धा प्रदर्शित की है । ये गुरु के परम प्रिय भक्त थे और उनकी वाणी को इन्होंने कण्ठस्थ कर लिया था । इनको देशाटन बहुत प्रिय था, इसलिए इन्होंने राजस्थान, उत्तरप्रदेश, पंजाब, दिल्ली,बिहार, बंगाल, उड़ीसा,द्वारका, बदरिकाश्रम, गुजरात मध्यप्रदेश, मालवा आदि सभी स्थानों की यात्रा की थी । सत्संग द्वारा नवीन अनुभव प्राप्त किए थे । सुन्दरदास के अनेक शिष्य हुए जिन्होंने इनके प्रति

अत्यन्त श्रद्धाभाव व्यक्त किया है । परमज्ञानी होने के फलस्वरूप सुन्दरदास अपनी उच्चकोटि की रचनाओं के द्वारा अत्यन्त प्रसिद्ध हो चुके हैं ।

अपने अन्तिम समय में सुन्दरदास सांगानेर में थे । यहीं स्थान पर मिती कार्तिक,सुदी ८ ,सम्वत् १७४६ में इनका स्वर्गवास हो गया ।

`सुन्दर ग्रन्थावली` के अन्तर्गत सुन्दरदास की सभी रचनाओं का सम्पादन स्व० पुरोहित हरिनारायण शर्मा ने प्रामाणिक a ढंग से किया है । उन्होंने ४२ ग्रन्थों की रचना की थी । रचनाएं सं० १६६५ से १७४२ तक a के मध्य हुई थीं । इनकी रचनाओं में `ज्ञानसमुद्र` तथा `सवैया` जिसे सुन्दरविलास भी कहते हैं बहुत प्रसिद्ध हो गए हैं । `सुन्दरविलास` या `सवैया` इनकी अत्यन्त लोकप्रिय रचना है । इसमें कुल ५६३ छन्द हैं । इसकी भाषा ललित तथा रोचक है । आचार्य चतुर्वेदी सुन्दरदास जी के कथ्य काव्य-कौशल की प्रशंसा करते हुए कहते हैं -- `सुन्दरदास की रचनाओं से स्पष्ट है कि काव्य-कौशल के प्रदर्शन में वे किसी कवि से कम नहीं और संत-कवियों में ये निस्संदेह सर्वश्रेष्ठ हैं[१] ।`

यारी साहब

यारी साहब प्रसिद्ध बावरी-पंथी सन्त हैं । बावरी पंथ को सुव्यवस्थित रूप देने में इनका भी बहुत अधिक योगदान है । इस पंथ में बहुत से उच्चकोटि के सन्त हुए हैं,जिनमें यारी साहब भी अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं । इस पंथ का आरम्भ उत्तरप्रदेश के गाजीपुर जिले से हुआ था । परन्तु इस पंथ के आदि प्रवर्तकों ने इसके समुचित विकास की ओर ध्यान नहीं दिया । इस पंथ में बावरी साहिबा के नाम से एक महिला अपना प्रबल व्यक्तित्व लेकर आयीं । ये उच्चकोटि की सन्त थीं, सत्य की खोज करने के लिए इन्होंने सब कुछ त्याग दिया था । इन्हीं के नाम से पंथ का नाम बावरी-पंथ रखा गया,परन्तु इस पंथ में यारी साहब अधिक प्रसिद्ध हुए,क्योंकि इन्होंने ही इस पंथ को सुसंगठित रूप देकर इसे विकास के पथ की ओर अग्रसरित किया । इनके पश्चात् बुला साहब

---

१ आचार्य परशुराम चतुर्वेदी : `उत्तरी भारत की संत-परम्परा`,पृ०५११।

और गुलाल साहब ने इस पंथ का प्रचार किया । इस पंथ के महात्माओं ने अपने मत के प्रचार का प्रयत्न नहीं किया और न इन लोगों ने अपने पंथ को संगठित करने का प्रयास किया । इनका ध्यान अपने व्यक्तिगत जीवन को आदर्श रूप प्रदान करने की ओर था । महात्माओं के शिष्यों या अनुयायियों ने अपने गुरु के उपदेशों से पूर्ण रचनाओं को सुरक्षित रखने का प्रयास भी नहीं किया । इसीलिए इस पंथ के मूलभूत मत तथा स्वरूप का परिचय नहीं मिल पाता है । सम्प्रदाय का कोई धार्मिक ग्रन्थ भी उपलब्ध नहीं होता ।

यारी साहब के जीवन-काल के विषय में अभी तक कुछ ज्ञात नहीं है । `रत्नावली` के सम्पादक ने सम्वत् १७२५ और १७८० के ब मध्य यारी साहब का जीवन काल माना है । आचार्य चतुर्वेदी यह अनुमान करते हैं कि व उक्त काल के पूर्वार्द्ध में ही इनका देहान्त हो गया होगा । यारी साहब सम्भवत: सन्त मलूकदास(मृ०सं० १७३६) तथा संत प्राणनाथ (मृ०सं० १७५१) के समकालीन थे[१] । इस प्रकार अनुमान के आधार पर इनका जीवनकाल बताया जाता है । यारी साहब का मूल नाम यार मुहम्मद था । ऐसा विश्वास किया जाता है कि ये शाही घराने के थे । ऐश्वर्यपूर्ण जीवन से ऊब कर वे विरक्त भाव से सब सुख त्यागकर सत्यान्वेषी हो गए । ऐसी मन:स्थिति में इनकी भेंट बीरु साहब से हुई । इनसे प्रभावित होकर यारी साहब ने इनसे दीक्षा ली और इस प्रकार बीरु साहब को अपना गुरु बना लिया । यारी साहब के शिष्यों ने दिल्ली की ओर इनके मत का प्रचार किया । गाजीपुर में इनके पंथ की एक शाखा बूला साहब द्वारा प्रतिष्ठित की गई थी जो अब तक चली आ रही है । बेलवेडियर प्रेस,प्रयाग ने `रत्नावली` नाम से यारी साहब की रचनाओं का एक संग्रह प्रकाशित किया है । कुछ अन्य संग्रहों में भी इनकी रचनाएं भी संगृहीत हैं । भुड़कुड़ा (गाजीपुर) से प्रकाशित `महात्माओं की बाणी` में यारी के चौदह पद, छोरमैनियां तथा एक लम्बी रमैनी फारसी अक्षरों के आधार पर `ककहरा` की भांति मिलती है ।

---

१ आचार्य परशुराम चतुर्वेदी : `उत्तरी भारत की संत-परम्परा`,पृ०५४३ ।

आचार्य चतुर्वेदी कहते हैं कि यारी साहब की रचनाओं से यह ज्ञात होता है कि वे एक मस्तमौला फकीर थे और उच्चकोटि के साधक भी थे । उनके शिष्य बुल्ला साहब ने अपने गुरु यारी साहब के प्रति असीम श्रद्धा प्रकट किया है ।

भीखा साहब

भीखा साहब भी एक प्रसिद्ध बावरी-पंथी सन्त थे । इनका पूर्व नाम भीखानन्द चौबे थ था । खानपुर बोहना गांव में इनका जन्म हुआ था, यह गांव आजमगढ़ जिले के परगना मुहम्मदाबाद में वर्तमान जहानागंज के निकट स्थित है । ये बाल्यावस्था से ही साधुओं सन्त का सत्संग करते थे, साधु महात्मा इन्हें बहुत प्रिय थे । ये विवाह से बचने के लिए देश-भ्रमण करने लगे थे । घर-गृहस्थी में इनका मन नहीं लगता था । शान्ति की खोज में ये जब इधर-उधर भटक रहे थे तब किसी मन्दिर में गुलाल साहब द्वारा रचा गया एक ध्रुपद सुनकर ये बहुत प्रभावित हुए । भुरकुड़ा में गुलाल साहब के दर्शन से इन्हें आध्यात्मिक तुष्टि हुई और इनका शिष्यत्व स्वीकार कर लिया । गुलाल साहब को ये अत्यन्त श्रद्धा की दृष्टि से देखते थे । अपने गुरु की मृत्यु के उपरान्त ये उनके उत्तराधिकारी बने और गद्दी पर आसीन हुए । भीखा साहब बहुत तेजस्वी महात्मा थे । गोविन्द साहब तथा चतुर्भुज साहब इनके प्रधान शिष्य थे । सम्वत् १८४८ में भीखा साहब ने अपना शरीर त्याग किया था ।

रामकुंडलिया, रामसहस्रनाम, रामशबद, रामराग, रामकवित्त तथा भगत बच्छावली आदि भीखा साहब की रचनाएं हैं । `भीखा-साहब की बानी` नाम से इनकी रचनाओं का संग्रह बेलवेडियर प्रेस,प्रयाग से प्रकाशित हुआ है । `रामशबद` इनका सबसे बड़ा ग्रन्थ है,किन्तु इसमें कुछ अन्य संतों की रचनाएं भी संगृहीत हैं । आचार्य चतुर्वेदी के अनुसार भीखा साहब की पंक्तियों में आत्म-निवेदन की मात्रा अधिक है । इनकी रचनाओं का नैपुण्य लोगों को आकर्षित कर लेता है ।`रामजहाज` नामक संकलन ग्रन्थ में भी भीखा साहब की अनेक रचनाएं मिलती हैं ।

सन्त प्राणनाथ

सन्त प्राणनाथ प्रणामी,धामी या प्राणनाथी सम्प्रदाय के प्रमुख प्रवर्तक माने जाते हैं । प्राणनाथ जी के गुरु श्री देवचन्द्र जी इस सम्प्रदाय के मूल प्रवर्तक थे । प्रणामी सम्प्रदाय का प्रमुख केन्द्र `धामी मन्दिर` है, जो पन्ना नगर में स्थित है । इस स्थान पर कार्तिक शुक्ल १५ को एक मेला लगता है, जिसमें प्रणामी सम्प्रदाय के अनुयायी भारी संख्या में एकत्र होते हैं । सूरत,मध्यप्रदेश के सागर तथा दमोह, काठियावाड़ के जामनगर, नौतनपुरी आदि में इस सम्प्रदाय का विशेष प्रचार है, नेपाल,असम, उड़ीसा, उत्तरप्रदेश, गुजरात,बम्बई,सिंध आदि में भी प्रणामी सम्प्रदाय के अनुयायी पाए जाते हैं । इस सम्प्रदाय में मूर्ति-पूजा को कोई महत्व नहीं दिया गया है । यह लोग तुलसी की माला धारण करके तिलक लगाते हैं, कुंकुम भी लगाते हैं और धर्मग्रन्थ `कुलजम स्वरूप ` की पूजा करते हैं, श्रीकृष्ण के बालरूप का ध्यानकरते हैं । प्रणामी सम्प्रदाय में आत्म-ज्ञान तथा योग-क्रिया को महत्व प्रदान किया गया है, यह लोग नैतिक आचरण तथा चरित्र-शुद्धि की ओर अधिक ध्यान देते हैं, मांस,मदिरा का सेवन नहीं करते हैं,प्रणामी सम्प्रदाय के अनुयायी जाति-व्यवस्था को स्वीकार ह नहीं करते हैं ।

प्रणामी सम्प्रदाय के प्रमुख प्रवर्तक सन्त प्राणनाथ जी का जन्म वि०सं० १६७५ आश्विन कृष्ण चतुर्दशी रविवार के दिन प्रथम प्रहर के शुभ मुहूर्त में हुआ था और उनका देहावसान सम्वत् १७५१(१६९४ई०) में श्रावण कृष्ण चौथ शुक्रवार के दिन ७५ वर्ष की आयु में हुआ । उनका जन्मस्थान काठियावाड़ प्रदेश का जामनगर नामक स्थान है । पन्ना नामक स्थान में प्राणनाथ जी की मृत्यु हुई ।

प्राणनाथ जी के पिता का नाम केशव ठाकुर था, यह लोग लोहाणा जाति के क्षत्रिय थे । उनकी माता धनबाई थीं, धनबाई के माता पिता सिन्ध प्रदेश के थे । माता-पिता दोनों ही शिक्षित तथा उच्चकुल के थे । प्राणनाथ जी का नाम पहले मिहिरराज या मेहराज ठाकुर था । बाद में इसी सम्प्रदाय से प्रभावित होने के कारण ये इन्द्रावती,महामति कहलाए,फिर

प्रकरणवश
प्राणनाथ नाम से प्रसिद्ध हुए । प्राणनाथ जी के पिता जामनगर राज्य के प्रधानमंत्री थे । वि०सं० १६८७ में बारह वर्ष की अवस्था में मेहराज ठाकुर ने श्री निजानन्द सम्प्रदाय के प्रवर्तक श्री देवचन्द्र जी से दीक्षा ली । ये अपने गुरु के प्रिय शिष्य थे,अत: इनके गुरु ने धर्म प्रचार का कार्यभार इन्हीं को सौंप दिया । गुरु की आज्ञा से मेहराज सं० १७०३ में पांच वर्षों के लिए अरब देश गए, वहां की भाषा धर्म तथा रीति-रिवाज का परिचय प्राप्त किया । वहां से लौटकर ये ३५ वर्ष की आयु में धरोल राजा के प्रधान मंत्री बने । गुरु की आज्ञा से दो वर्ष के पश्चात् इन्होंने मन्त्री पद से मुक्ति ले ली । देवचन्द्र जी के परलोक गमन के पश्चात् इन्होंने जामनगर का प्रधानमंत्री पद स्वीकार कर लिया । इस प्रकार राज्य संचालन तथा धर्मप्रचार कार्य दोनों साथ-साथ करते रहे । मेहराज ने अपने सद्गुरु के ज्ञान प्रचार को अपना लक्ष्य बनाया । सूरत में श्री देवचन्द्र जी की गद्दी पर मेहराज ठाकुर को बिठाकर इन्हें `प्राणनाथ` कहा गया । यहीं प्राणनाथ ने जाति -पांति , स्त्री-पुरुष, राजा-रंक का भेद-भाव मिटाकर विश्व में एक धर्म स्थापना का संकल्प किया[1] ।

ऐसा विश्वास किया जाता है कि समय-समय पर प्राणनाथ जी के मुख से जो वाणी निकलती थी, उसे उनके शिष्यों ने लिख लिया था । प्राणनाथ जी के परलोकगमन के पश्चात् सं०१७५१ में पन्ना में इनके शिष्य केशवदास ने इन अन्वित वाणियों का संकलन करके उन्हें वर्तमान क्रम प्रदान कर दिया[2] । सन्त प्राणनाथ द्वारा विरचित ग्रन्थों की संख्या १४ बतलायी जाती है । इन सभी का एक विशाल संग्रह `कुलजम स्वरूप` भी कहते हैं । प्रणामी सम्प्रदाय में यह `आराध्य-ग्रन्थ` माना गया है । प्रत्येक प्रणामी मन्दिर में इस ग्रन्थ की हस्तलिखित प्रति पायी जाती है, `प्रणामी पाठशाला` में इस ग्रन्थ का अध्ययन-व अध्यापन होता है । इसमें संगृहीत सभी ग्रन्थों की भाषा एक समान नहीं है, प्रत्युत उनमें से कुछ

---

१ प्राणनाथ : `श्री कुलजमस्वरूप`,परिचय,पृ० ४,५ ।

२ आचार्य परशुराम चतुर्वेदी : `उत्तरी भारत की संत-परम्परा`,पृ०१ ५१८ ।

हिन्दी, कुछ गुजराती, कुछ सिन्धी तथा अन्य में मिश्रित भाषा भी देख पड़ती है।[१] 'कुलजमस्वरूप' में आए हुए ग्रन्थों के नाम इस प्रकार हैं -- रास, गुजराती प्रकाश, षटऋतु, कलस गुजराती, प्रकाश हिन्दी, कलस हिन्दी, सनंध, कीर्तन, खुलासा, खिलवत, परिक्रमा, सागर, श्रृंगार, सिन्धी, मारफत सागर, छोटा कयामत, बड़ा कयामत।

-0-

---

१ आचार्य परशुराम चतुर्वेदी : 'उत्तरी भारत की संत परम्परा', पृ०५६७।

अध्याय --४

-0-

सन्तकाव्य में प्रयुक्त उपमानों का वर्गीकरण

वर्गीकरण की आवश्यकता

अप्रस्तुतों की योजना के अध्ययन के लिए उपमानों का वर्गीकरण अत्यावश्यक है । सैद्धान्तिक और व्यावहारिक दोनों ही वर्गीकरण के महत्वपूर्ण पक्ष हैं, यद्यपि सैद्धान्तिक पक्ष ही अपेक्षाकृत अधिक सबल माना जाता है । काव्य की कलात्मक परिणति तथा उसका अन्तरंग विवेचन अप्रस्तुतों के वर्गीकरण के द्वारा ही सम्भव है । बाह्य रूप में यह वर्गीकरण बहुत अधिक महत्वपूर्ण नहीं प्रतीत होता है, परन्तु विश्लेषणात्मक तथा विवेकात्मक दृष्टि से देखने पर यह ज्ञात हो जाता है कि यह कितना अधिक महत्वपूर्ण है ।

वस्तुपक्ष और कलापक्ष के आधार पर काव्य का अध्ययन किया जाता है। अप्रस्तुत काव्य में रूपसाम्य का निर्माण करते हैं, इसलिए अप्रस्तुतों के द्वारा कवि अपने काव्य के वस्तुपक्ष को अभिव्यक्ति प्रदान करता है। काव्य में इस रूपसाम्य के लिए भी अप्रस्तुतों के वर्गीकरण की आवश्यकता पड़ती है । कवि रूप,गुण,क्रिया,भाव आदि के साम्यों के आधार पर अप्रस्तुतों का प्रयोग करता है । साम्यों का वस्तुपरक यह आधार अपने आन्तरिक रूपमें विश्लेषित और वर्गीकृत है । अप्रस्तुतों का वर्गीकरण यदि किया गया हो तो

---

१ विद्याधर : 'जायसी साहित्य में अप्रस्तुत-योजना',पृ०१२३ ।

एक ही अप्रस्तुत का प्रयोग अनेक स्थलों पर न करके पुनरावृत्ति से बचा जा सकता है । वर्गीकरण के अभाव में ऐसा भी हो सकता है कि किसी अप्रस्तुत का प्रयोग एक भी स्थल पर न किया गया हो । इसप्रकार रसाभास की स्थिति उत्पन्न हो सकती है, जो कि काव्य के आन्तरिक विवेचन में बाधक है । अतः अप्रस्तुतों का वर्गीकरण अत्यन्त आवश्यक है, इसके अभाव में काव्य का विवेचन भली भांति नहीं हो सकता है ।

वर्गीकरण की जटिलता और इसके कारण

अप्रस्तुतों का वर्गीकरण करते समय कुछ जटिलताएं उपस्थित होती हैं,जो इसप्रकार हैं-- (१) अप्रस्तुतों के वर्गीकरण के आधारभूत कहां से लिए जाएं । (२) वर्गीकरण की कोई वैज्ञानिक पद्धति हो सकती है या नहीं ? यदि हो सकती है तो किस सीमा तक ? (३) सन्त साहित्य में अप्रस्तुतों की योजना का स्वरूप क्या है ? (४) वर्गीकरण का प्रयोजन क्या हो सकता है ?(५) कौन अप्रस्तुत किस वर्ग में रखा जाए ?

डा० विद्याधर का विचार है कि 'अप्रस्तुतों के आधारभूत के साथ वैज्ञानिक वर्गीकरण का प्रश्न उठता है । अगर सम्पूर्ण प्राकृतिक और काल्पनिक जगत पर विचार किया जाए तो कोई भी ऐसा तत्व नहीं है,जो कल्पना समन्वित न हो । अप्रस्तुतों का वर्गीकरण साहित्य का विषय है । इस प्रकार अप्रस्तुतों के वर्गीकरण में जिस आधार या पद्धति को ग्रहण किया गया है, वह मौलिक और वैज्ञानिक है । अप्रस्तुतों की योजना का स्वरूप समग्रतः लोक और शास्त्र से रहा है । लोक और शास्त्र का सम्बन्ध प्राकृतिक जगत से है ।'[1] अतः प्राकृतिक जगत से गृहीत उपमानों को उन्होंने तीन कोटियों में वर्गीकृत किया है-- (१) परम्परा प्रचलित रूढ़िबद्ध उपमान, (२) लोकगृहीत उपमान, (३)मौलिक उपमान । परम्परा प्रचलित रूढ़िबद्ध उपमानों की तीन कोटियां हैं --(१)नखशिख वर्णन के उपमान, (२) मानवीय भावनाओं के वर्णन में प्रयुक्त उपमान,(३)अन्य

१'जायसी साहित्य में अप्रस्तुत योजना',पृ०

वस्तुओं एवं कार्यों के उपमान । मतशिख वर्णन में कवि ने (१) रूढ़िगत उपमान, (२) लोक परम्परा और लोकोक्ति के उपमान तथा (३) नवीन मौलिक उपमानों का प्रयोग किया है । अन्य विषय के वर्णन से सम्बन्धित उपमानों के अन्तर्गत भाववर्णन के उपमान एवं वस्तुवर्णन तथा कार्यों के उपमान आते हैं ।

वर्गीकरण का मुख्य प्रयोजन विषय का स्पष्टतर अभिव्यक्ति के लिए है,जो नितान्त मौलिक और वैज्ञानिक है । कवि अप्रस्तुतों के प्रयोग में कभी-कभी एक उपमान की जगह ऐसे उपमानों का प्रयोग करता है,जो युग्मक होते हैं । वर्गीकरण में इन उपमानों को अलग वर्ग में रखा गया है । संत-काव्य के अप्रस्तुतों का अध्ययन करने के लिए उपर्युक्त वर्गीकरण में यत्किंचित् परिवर्तन करना पड़ेगा । आगे इस समस्या पर विचार किया गया है ।

वर्गीकरण के सम्भावित आधार और उनका महत्व

अप्रस्तुतों का वर्गीकरण दो प्रकार से किया जा सकता है-- प्रस्तुतों को आधार बनाकर या अप्रस्तुतों के आधार पर । यदि प्रस्तुतों को आधार न मानकर वर्गीकरण करते हैं तो यह देखना आवश्यक है कि एक ही वस्तु के लिए कितने उपमानों का प्रयोग किया गया है । परन्तु अप्रस्तुतों के वर्गीकरण के लिए यह आधार न तो वैज्ञानिक है और न उचित,क्योंकि अध्ययन तो अप्रस्तुतों का हो रहा है,प्रस्तुतों का नहीं । अतः अप्रस्तुतों को आधार बनाकर वर्गीकरण करना अधिक युक्तिसंगत है ।

अप्रस्तुतों के सम्बन्ध में संस्कृत साहित्य में कुछ कार्य ऐसे हैं जिनको विद्वानों ने मान्यता प्रदान की है । इनमें पहला उल्लेखनीय कार्य कालिदास की उपमाओं पर श्री के० वेंकप्पन पिल्लई का है । `सिमिलीज आफ कालिदास` शीर्षक उनकी यह कृति सन् १९५५ई० में प्रकाशित हुई । इस पुस्तक में लेखक ने कालिदास की उपमाओं का वर्गीकरण किया है । किन्तु उसमें यद्यपि अप्रस्तुतों की लम्बी सूची द्वारा वर्गीकरण की एक दिशा का निर्देश किया गया है,परन्तु एक मूल्यात्मक स्वरूप का अभाव है ।

संस्कृत साहित्य में दो और कार्य इस विषय पर हुए हैं--

जे०गौंड का `रिमार्क्स ऑन सिमिलीज़ इन संस्कृत लिटरेचर` और डा० एम०डी० पराडकर का `सिमिलीज़ इन मनुस्मृति` । यद्यपि ये दोनों बहुत प्रसिद्ध एवं उच्च-कोटि की कृतियां हैं, परन्तु इनमें भी वर्गीकरण का अभाव है । `काव्य में अप्रस्तुत योजना` नामक पुस्तक में श्री रामदहिन मिश्र ने अप्रस्तुत योजना पर तो विचार किया है, परन्तु अप्रस्तुतों के वर्गीकरण के लिए किसी मौलिक आधार की ओर उन्होंने संकेत नहीं किया है । वर्गीकरण की वैज्ञानिक पद्धति के अभाव को देखते हुए `जायसी साहित्य में अप्रस्तुत योजना` नामक शोध-प्रबन्ध के प्रस्तुतकर्ता ने एक स्वतन्त्र एवं मौलिक पद्धति को अपनाकर अप्रस्तुतों का वर्गीकरण किया है । यह वर्गीकरण वैज्ञानिक और सैद्धान्तिक है । इसमें अप्रस्तुतों के आधार पर ही वर्गीकरण किया गया है । इसमें अप्रस्तुतयोजना के व्यावहारिक पक्ष पर भी विचार किया गया है । वर्गीकरण की वैज्ञानिक पद्धति अप्रस्तुत योजना के दोनों पक्षों --अनुभूति पक्ष तथा अभिव्यक्ति पक्ष को महत्व प्रदान करती है । इस वर्गीकरण के द्वारा यह ज्ञात हो जाता है कि अप्रस्तुत कुछ कितने स्थलों में किन-किन रूपों में किन-किन प्रस्तुतों के लिए प्रयुक्त हुआ है । अप्रस्तुतों का स्वतन्त्र स्थिति का महत्व क्या है, इसका भी निर्देश इस वर्गीकरण द्वारा होता है । अप्रस्तुतों के वर्गीकरण के फलस्वरूप अप्रस्तुतयोजना की विश्लेषणात्मक और विवेचनात्मक प्रक्रिया में एक निश्चित क्रम बन गया है । अतः यत्किंचित् संशोधनों के साथ यह ग्राह्य है ।

वर्गीकरण के आधार

अप्रस्तुतों के वर्गीकरण के चार आधार हैं --

(१) प्रकृति वर्ग -- इस वर्ग को नौ कोटियों में विभक्त किया गया है--१-आकाश, २- अग्नि, ३- ज्ञान, ४- जन्तु, ५- जल, ६- पहाड़, ७- वनस्पति, ८- वायु एवं ९- समय ।

(२) मानव वर्ग -- इसको बारह कोटियों में विभक्त किया गया है --(१- मानव अंग, २- आवश्यक उपकरण, ३- कलायें, ४- घटनाएं, ५- पर्वोत्सव, ६- मनोविनोद सम्बन्धी उपकरण, ७- लोक-विश्वास और मान्यताएं, ८- साहित्यिक सामग्री, ९- विविध

उपमान, १०- व्यक्ति-विशेष, ११- अमूर्त उपमान, १२-संख्यापरक उपमान ।

(३) पशु-पक्षी एवं जीव वर्ग -- इस वर्ग को तीन कोटियों में रखा गया है--(१) पशु वर्ग, २- पक्षी वर्ग, ३- जीवजन्तु कीट पतंग वर्ग ।

(४) काल्पनिक वर्ग --इस वर्ग की कोटि निर्धारित नहीं की गई है ।

उक्त कोटियों को कुछ उपकोटियों में भी विभक्त किया गया है । यहां अप्रस्तुतों के कुछ उदाहरण दिए जा रहे हैं । ये अप्रस्तुत प्रतिनिधि सन्तकवियों की रचनाओं से चुने गए हैं, जिनका परिचय पिछले अध्याय में दिया गया है । निम्नलिखित तालिका में अप्रस्तुतों के स्थलनिर्देश के साथ उन प्रस्तुतों का निर्देश भी कर दिया गया है, जिनके लिए वे अप्रस्तुत प्रयुक्त हुए हैं, यद्यपि उद्धृत पंक्तियों में उनका उल्लेख नहीं है । कुछ अप्रचलित शब्दों के अर्थ भी कोष्ठक में दे दिए गए हैं ।

<u>अप्रस्तुतों का विवरण:</u>

(१) भानु : कहै कबीर मनि भया प्रकासा उदै भानु जब चीन्हां ।
: कबीर, पद ५२.६ प्रस्तुत ज्ञान

(२) आकासै : आकासै फल फलिया : कबीर, पद ११२.६ ब्रह्मरन्ध्र

(३) चंदा : चौदह चंदा मांहि : कबीर, साखी १-३, विचारं

(४) बादरी : जनम बाई बादरी : कबीर, साखी २-५३, माया

(५) दामिनि : दामिनि उलटि आप में पैठी : हरिदास, पद राग मलार १३०.१.४ ज्ञान ज्योति ।

(६) मरीचि : देखि मरीचि भयो मन भूलन : सुन्दरदास, ११.१३.२ इन्द्रिय के सुख

(७) गैंनझिलंमी मेहुं : आकाश में स्थित सुख : गैंन झिलंमी मेहुं : धर्म, पद २३.११, माया ।

(८) स्वांती जल : जब चातृक स्वांती जल पावै : यारी साहब, भजन शब्द १६.६ ब्रह्म

(९) मन्दिर -- मन्दिर मांहि रोगिया बैठे : कबीर, पद १२२.४ नौ द्वार या शरीर

(१०) तारे -- ज्यों तारे परभाति : कबीर, साखी १६.२१ मानुष की जाति

(११) कमल -- कमल जल जैसे [illegible] : रैदास, पद १७.२, जीवात्मा

(१२) अगनि की झाला -- और अगनि की झाला : दादू, पद ८.७.२, सांसारिक विषय वासना ।

(१३) अंगारे -- चकवा बैसि अंगारे निगले : कबीर, पद ११४.८, त्रिताप

(१४) धुर का धक्कहरू -- नानक कनु धुर का धक्कहरू : नानक, वार माझ व की सलोक ३.५, कनु ।

(१५) हीरा -- हीरा सा 'जनम' गमाया रे : हरिदास, पद राग गौड़ी १६.१६ जनम ।

(१६) लोहा -- तुमचे पारसु हमचे लोहा संग कंचनु मैला : नामदेव, पद राग धनासी, १६२.५, भक्त ।

(१७) कंचन -- जैसें बहुकंचन के भूषन एकहिं गालितवाविंगे : कबीर, पद ५७.५ परमात्मा ।

(१८) कोयला -- कोयला होइ न ऊजरा, सौ मन साबुन लाइ : कबीर साखी २२.३, मूरख ।

(१९) सुहागा -- जैसे सोनैं मिला सुहागा : कबीर, पद १८.६, जीव

(२०) नग -- नग निरमोलिक करि बहना : हरिदास, पद राग गौड़ी २.१.२, मनुष्य शरीर ।

(२१) पारस -- लोहको ज्यों पारस, पषानहुं पलटेत : सुन्दरदास, १.१४.१, सद्‌गुरु

(२२) माणकु -- कहु माणकु जीउ निरमोलु है : नानक, सबद सिरी रागु २२.११ , जीउ(जीवन)

(२३) तांबो -- पारस मानो तांबो छुए : रैदास, पद ३८.१३, जीव

(२४) मोती -- प्रभु जी तुम मोती हम धागा : रैदास, पद ४०.८ प्रभु

(२५) मुक्ताहल -- मुक्ताहल मन मोल : दादू, साखी ४.४५, मन

(२६) रतन -- राख्यो रतन का पारखौरे : दादू, पद ११.१५.२, जनम

(२७) हंस: हंस: -- [illegible] [illegible] करत हरिनाई : मीरा, मिश्रित शब्द २४.७ [illegible] ।

(२८) दीप -- दीप कि सुरति अकास बसत जस : यारीसाहब, भक्त शब्द १०.२ भक्त ।

(२९) बरतो -- बरतो कलबल सोला : कबीर, पद ११२.७, काया (केगुण)

(३०) मोमि -- ब्रह्म मोमि तामांहि : दादू, साखी ४.१२५, ब्रह्म

(३१) धुरि -- बहुतु पिआसाप लागै धुरि : नानक,सबद रागु आसा १३.१, पाप ।

(३२) सघनबन -- कामिनी को तन मानो, कहिये सघन बन : सुन्दरदास, ६.१.१, कामिनी को तन ।

(३३) गोकुल -- गोपी ग्वाल घेरि गोकुल में : हरिदास, पद, राग बसंत १४०.१.२, शरीर

(३४) गांउं -- संतो ई मुरदन के गांउं : कबीर,पद १०५.१, संसार

(३५) द्वारिका -- मन मथुरा दिल द्वारिका : कबीर,साखी २६.११, दिल

(३६) पथर -- पाप पथर तरणु न जाई : नानक,सबद, राग मारू, २.८, पाप ।

(३७) जल -- जल उपजी जल ही सौंमिला रटत पियास पियास :कबीर पद १५.२ परमात्मा

(३८) त्रिबेणी -- त्रिबेणी तटि संजिम सपरा : दादू,पद १.६९.नाड़ियां

(३९) गंग जमन -- गंग जमन बीच हीरा बरसै: हरिदास,पद,राग नट १२५.२.२, मन- प्राण ।

(४०) सरवरु -- एको सरवरु कमल अनूप : नानक,सबद,रागु आसा १२.१ सत्संग ।

(४१) महोदधि -- कनक कलस जैसे लहरि महोदधि : रैदास, पद २७.ब्रह्म

(४२) तरंग -- हरि सरवर जन तरंग कहावै : नामदेव, पद राग टोडी ७.२ , जन ।

(४३) फेन बुदबुद -- फेन बुदबुद जल लहरि तरंग बहु : मोता, कवित्त १२.५, जीव

(४४) लहरि --ग्यांन लहरि जहां थै उठै : दादू, साखी ४.२८, ग्यांन

(७६) कांवच फळो -- रैदास तु कांवच फळो : रैदास, पद ११३.१,रैदास

(७७) कांटा -- काळा कांटा लागिहै : हरिदास,पद राग गौड़ो ५.५.१,काळ

(७८) पांकळ :गुलाब: -- पांकळ भंवर मन भंवर : कबीर,साखी ३२.१०,भंवर(शरीर)

(७९) कमोदिनी -- कमोदिनी जलहरि बसै : कबीर, साखी २.२६,शिष्य या जीवात्मा ।

(८०) केतकी -- कबीर भया है केतकी : कबीर, साखी ४.८, कबीर

(८१) करसंण :कृषि: -- करसंण कियौ त नेहो लेतो : जम्भ,पद २८.१७, नेहो

(८२) बाड़ि -- अनुभव बाड़ि उदित उजियारा : मीरा,भेद बानी शब्द ७.८, अनुभव

(८३) किआरी -- नाम खेत जन प्रीति किआरी : मीरा, भेद बानी शब्द ७.२, जनप्रीति ।

(८४) नीपजि :उपज: -- ब्रह्म साधि ब्रूं नीपजि बाई : हरिदास,पद राग मलार १२८.२.२, ब्रह्म साधि ।

(८५) तुस -- तुस मर छूटे रे : दादू,पद १.४६.६,अर्थहीन

(८६) कादर का खेत -- ज्यों कादर का खेत : कबीर, साखी २४.१५ मुर्दे मर

(८७) तुरसी का बिरवा-- बारि पासि जन तुरसी का बिरवा : कबीर,पद १३१.११ पंचतत्व या पुरुषार्थ ।

(८८) पखुरि -- जल की मछली जैसे पड़ै पखुरि : नामदेव,पद ७६.२ परमात्मा ।

(८९) पवन -- चोरह मेके पवन झकोरै : कबीर,पद ११२.६, सांस

(९०) आंधी -- संतो आई आई ग्यांन की आंधी रे : कबीर,पद ५२.१ ग्यांन ।

(९१) पवन -- पवन पुलंग पेहिवी : कबीर ,साखी ४.२,संत

(९२) पवंणा झोले -- पवन का झोंका: -- पवंणा झोले डीरवारिपैंडा : जम्भ पद २३.११,काळ ।

(९३) वासुर — गयो वासुर 'रैंणि' आई : हरिदास,पद,राग सोरठो ६०.३.२, जोबन ।

(९४) पहर — पहर 'प्यार से' सहज बोतो : हरिदास,पद,राग सोरठी ६०.३.१, अवस्था (बाल्या आदि) ।

(९५) निशि — ज्यों रविके प्रगटे निशि जात सु : सुन्दरदास,१. १.२, अज्ञान ।

(९६) तिमर — मरंम तिमर भाजे नहीं : दादू, साखी ८.५६, मरंम

(९७) तीनिउं सांझा — बहुरिं हुवे तीनिउं सांझ : कबीर,पद १२०.३, तीन गुण

(९८) रैंनि दिवस — रैंनि दिवस की गमि नहीं : कबीर, साखी १९ ४ अज्ञान ज्ञान ।

(९९) चौथ — चौथ 'पका' साईं मिले : कबीर,साखी १५.३८,जोबन

(१००)बसंत — फुड फुफुठे रुत बसंत : कबीर,पद १४१.३,यौवन

(१०१)तन — तन की संथा : बम्म, पद २७.६२, संथा

(१०२)मन — मेरे मन की मुंदरा :बम्म,पद २७.६२, मुंदरा

(१०३) स्वाचा — सुमिरन स्वाचा भरि भरि पीऊं : नामदेव, पद ३७.४ सुमिरन

(१०४) कुटी — मरघट कुटी छांडिबे ज्यूं सुखिया ऐकारे : नामदेव पद ७१.६ चित ।

(१०५) जिभ्या — जिभ्या छेद लौ नहीं जाके दिखाई : कबीर,पद ३४.१२ साधु ।

(१०६) मस्तकि — मस्तकि मेरे पाव धरि : दादू,साखी ४.२५२,अहंकार

(१०७) घटा — उलटा पवन घटा धरि : कबीर, पद १४२.८,उलटा पवन (प्राणायाम) ।

(१०८) मन — मन रव पूरे साध के : दादू साखी ४.३१६, साध

(१०९) नैंनन्नि -- ज्यौं नैंनन्नि मैं पूतरी : कबीर,साखी ७.२,घट

(११०) पूतरी -- ज्यौं नैंनन्नि मैं पूतरी : कबीर,साखी ७.२ साहिब

(१११) आतम -- आतम बैसे बाड -- दादू,साखी ४.२५३,साधक

(११२) त्रिविध आयध :शस्त्र: -- त्रिविध आयध संगि घट्या : हरिदास, पद राग गौड़ो २.४.३ तामों गुण ।

(११३) अड़ग -- माया अड़क दुधारा : हरिदास,राग गौड़ो,२३.१.२ माया ।

(११४)धनुष -- ध्यांन धनुष जोग करम : कबीर,पद १२१.४,ध्यांन

(११५) बांन -- ग्यांन बांन सांधा : कबीर, पद १२१.४, ध्यांन

(११६) तरगस -- तन तरगस सुरतिकमांन : कबीर,पद ४.४, तन

(११७) बधि -- एकनि के बचन तो, बधि मानो बरषत : सुन्दरदास, १४.५.३ बचन ।

(११८) कंबल -- ज्ञानकी कंबल अंग, काहूसौं न कोइ मंग : सुन्दरदास, २१.७.१,ज्ञान ।

(११९) अंकुश -- सदा एक हाथ में, अंकुश गुरु ज्ञान है : सुन्दरदास, ०२१.१२.६,गुरु ज्ञान ।

(१२०)सर -- मनन भया सर बेधिया : दादू,पद ८.६.८ उपदेश

(१२१)मठाका -- मरम मठाका दूरि करि : कबीर, साखी १४.७,मरम

(१२२)सेल -- सुमिरन सेलसंबाहि : कबीर, साखी १४.७,सुमिरन

(१२३)बना -- मन बना : कबीर,साखी २६.७, मन

(१२४) सुधार -- धीर गंभीर सबद शिर सुधार : कबीर,पद ४.५,गंभीर (-- गांभीर्य) ।

(१२५) पनच:प्रत्यंचा: -- ताकी अनुहीं पनच नहीं रे : कबीर,पद १२४.५,सगुणसाधना

(१२६) घर -- अपनां घर देख पराव : कबीर, साखी ५.१,सांसारिक - आसक्तियां ।

(१२७) घर मंदर -- घरमंदर खुसी नामकी : नानक,सबद सिरीरागु ७,१६, खुशी का , नाम को ।

(१२८) बजर कपाट -- गुरमिति खोले बजरकपाट : नानक, सबद रागु गउड़ी ६.६

(१२९) कोठी -- बंधी कोठी तेरा नाम नाही : नानक, सबद रागु आसा १९.२ हृदय ।

(१३०) भवन:घर: -- यह तन भवन सरूप :मीरा,कुंडलिया ९,१ ,तन

(१३१) झांती:झरोखा:-- दादू झांती पाये पसुपिरी : दादू, साखी ९.१२,देह

(१३२) थंभ दोइ -- देखहु एक थंभ दोइ लागे : हरिदास,पद राग कल्याणी १७९.१.३, दो पैर ।

(१३३) दस दरबार -- दस दरबार वसीतर हावा : हरिदास, पद राग कल्याणी १७९.१.४ नव इन्द्रिय द्वार तथा ब्रह्मरंध्र ।

(१३४) कोटु -- काइआ कोटु रचाइआ: नानक, वार रागु सूही महला ५.१, काया ।

(१३५) टाटी -- भ्रम की टाटी सबै उड़ानी : कबीर, पद ५२.२, भ्रम

(१३६) थूंनि -- दुचिते की दोइ थूंनि गिरांनी : कबीर,पद ५२.३,दुचिते (दुविधा) ।

(१३७) बलेंडा -- मोह बलेंडा टूटा : कबीर, पद ५२.३,मोह

(१३८) छांनि -- तिसनां छांनि परी घर ऊपरि : कबीर, पद ५२.४, तिसनां ।

(१३९) ओबरी:कोठरी:-- कागद केरी ओबरी : कबीर,साखी २६.२,कागद(-पुस्तक)

(१४०) कपाट -- मसि के किए कपाट : कबीर,साखी, २६.२, मसि ।

(१४१) दुवारा -- भगति दुवारा सांकरा: कबीर,साखी २६.१,भक्ति

(१४२) संकल -- : अन्य पद ६७.२,मरम ।

(१४३) हीर -- हीर रूप हरि नांउं है : कबीर,साखी २७.१,हरि नांउं

(१४४) अंमृतुमोखु -- अंमृतु मोखु नामु हरि: नानक,वार रागु बिहागड़ा पउड़ी १.३, नामु ।

(१४५) प्रसाद -- दया प्रसाद : दादू,साखी ४.२४५.६,दया ।

(१४६) अन्न -- भिच्छा अनुभव अन्न हे : मीरा, साखी १४.१, अनुभव ।

(१४७) गुड़ -- रंक राम गुड़ लाड रे बोलं : नामदेव, पद राग टोडो ३७.४, राम ।

(१४८) हीरां -- सुमिरनहीरांपोवे : हरिदास,पद राग बिलावल १०६.१.१ सुमनज्ञानमाधार तत्व ।

(१४९) पिरका -- पिरका साटे प्याला पिया : रैदास, पद ७६.२, प्रेम

(१५०) हवन -- वनस्पती में हवन प्रमान : सुन्दरदास, २६.१२.३आसन ।

(१५१) सकर खंडु -- सकर खंडु माइआ तनि मीठी : नानक,सबद रागु गउड़ी १६.५,माइआ(= माया) ।

(१५२) मिठाई -- कहे कबीर वैसे रंक मिठाई :कबीर,पद २२.६,हरि का नाम ।

(१५३) मधारसु -- भुआ मधारसु भारी : कबीर,पद ५६.५,भक्तिरस ।

(१५४) मीठी खांड -- जैसी मीठी खांड : कबीर,साखी ३१.७, माया ।

(१५५) सुध -- सबद सुध : दादू, साखी १.२६, सबद ।

(१५६) सुधा -- सुधा रांमरस : दादू,साखी १.२६, रांमरस ।

(१५७) तेल -- जब लगि तेल दिवा में बाती : रैदास,पद ८१.६, बोध ।

(२३८) डंडी (तराजू की डंडी) -- जिह्वा डंडी : नानक, सबद रागु मारू ११.७ जिह्वा ।

(२३९) छाबा (पलड़ा) -- दुइ घट छाबा : नानक, सबद रागु मारू ११.७, घट (हृदय) ।

(२४०) कुलफ (ताला) -- कुफरंम कुलफ बणाईं : जम्भ, पद ६७.१ कुफरंम ।

(२४१) कुंजी -- कुंजी कुलफु प्रांन करि राखे : कबीर, पद ८०.प्रांन ।

(२४२) मुद्रा -- ममता मेटि बांधि करि मुद्रा : कबीर, पद १४२.धांध।

(२४३) बासन -- बासन सील सिद्ध कीजै : कबीर, पद १४२.५, सील ।

(२४४) झोरी -- छिमा करि झोरी : कबीर, पद १४२.७, छिमा (क्षमा)

(२४५) खपर -- सत करि खपर : कबीर, पद १४२.७ सत (सत्याचरण)

(२४६) बिभूति -- ग्यांन बिभूति चढ़ाई : कबीर, पद १४२.७ ग्यांन ।

(२४७) मृगछाला -- मृगछाला त्रिकुटी मर्ह : मीरां, साखी १२.२ त्रिकुटी ।

(२४८) माठी -- मगन अनुभव माठी पुरई : कबीर, पद ५१.५, पीवसनुमन।

(२४९) डंडाला -- हुकमु कीचै डंडाला : नानक, सबद राग गउड़ी १५. हुकमु।

(२५०) तुंबा (तूंबा) -- तुंबा तन मन सब है : मीरां, साखी ७, तन मन ।

(२५१) डोरी -- लागी डोरी प्रेम की : मीरां, साखी ८, प्रेम ।

(२५२) कंवल (कंवली) -- माया भाउ मरंम को कंवल : जम्भ, पद ६७.२० मरंम ।

(२५३) सींगी -- सींगी सास उसासुं : जम्भ, पद ५०. सांस उसासुं ।

(२५४) कंघी (कांघी) -- कंघी चिंत करई : नानक, सबद रागु मारू २.८ चिंत ।

(२५५) दीपक -- दीपक दीया तेल भरि : कबीर, साखी १.१५ शरीर ।

(३१८) बाजीगर की पुतली -- बाजीगर की पुतली ज्यों प्रकट मोहा : कबीर
साखी १२.१०८, माया ।

(३१९) खेलि(तमाशा) -- तिल तिल खेलि करहि जिउ भावै : रैदास,पद
३५.११ साधना का आनन्द ।

(३२०) चौपड़ि -- चित्त चौपड़ि खेलत घरि चौथे : हरिदास,पद
राग आसावरी ४६.४.१ चित्त ।

(३२१) पासा -- चेति ढारि पासा : कबीर, पद ६०.८ कर्म ।

(३२२) डाव(दांव) -- अब को डाव परणताठि दुरया : हरिदास,पद
राग आसावरी ४६.३.१ दुख सुख ।

(३२३) घरि चौथे(कोठा) -- खेलत घरि चौथे : हरिदास,पद राग आसावरी,
४६.४.१ खेलत ।

(३२४) जुवा के खेल -- जुवा कैसो खेल है : सुन्दरदास,२.१३.८ जीवन ।

(३२५) पेखनां(दृश्य वाग्विलास)-- नटवर पेखि पेखनां पेखै: कबीर,पद १२२.१०,जीव ।

(३२६) तिकठिया(खेल) -- यहि तन खेल तिकठिया : मीरा,मिश्रित १५.४तन
(त्रिगुणात्मक) ।

(३२७) दुकठिया -- काम क्रोध दुनो जने दुकठिया : मीरा,मिश्रित १५.५
काम क्रोध ।

(३२८) गोटा(गेंद,गोला) -- दुख सुख गोटा उछले : हरिदास,पद राग रामगिरि
३३.३.१ दुख सुख ।

(३२९) सावज(शिकार) -- जो सावज जिन मारैंगा : कबीर,पद १२४.४ मन ।

३३०) अहेरा -- मंड अहेरा खेले : कबीर,प द १३८.६ साधना ।

(३३१) छुपिना --अवि धनि जोबन खेला छुपिनैं : कबीर ,पद ६७.३ जोबन।

(३३२) जुआ -- पंचौं संगी जुर्वे : दादू,साखी १०.५७ पंच इन्द्रिय

(३३३) डाकनी -- दादू माया डाकनी: दादू,साखी १२.२४ ,माया।

(३८०) पिता -- पारब्रह्म पिता मामां छाडळडे : नामदेव पद राम रामगिरी ९०.८ पारब्रह्म ।

(३८१) ससुर -- ससुर की पियारी : कबीर , पद १३५.३ ईश्वर, संशय ।

(३८२) जेठ -- जेठ के तरसि डरउं रे : कबीर, पद १३५.२ अवरावस्था, ज्ञान ।

(३८३) देवर -- देवर के बिरहि मरउं रे : कबीर पद १३५.४ योवन का काम ।

(३८४) नाह (पति) -- तब हौं नाह पियारी : कबीर पद १३५.६ राम या परमेश्वर ।

(३८५) पांचउ हरिके -- पांचउ हरि के पटकि कै : कबीर , साखी ५.१ पंच मनोविकार ।

(३८६) कुटंब -- काछ कुटंब के तांई : दादू , पद १.४०.५ काछ ।

(३८७) नटाक --नटाक कला बाजि काछिक : दादू , पद ६.१६.१ मानव ।

(३८८) परदेसी -- परदेसी पंथि चले अकेला : दादू, पद ८.१६.१ जीवात्मा ।

(३८९) पाहुणें -- रामदेव मोरे पाहुणें आए : कबीर, पद ५.४ रामदेव ।

(३९०) सतिगुरु -- हूं सतिगुरु कहूं मीठु चेला : कबीर, पद ६.५ हूं (परमात्मा) ।

(३९१) चेला -- काया कनकंड पैठा चेला : दादू पद ६.१८.४ पंचों ।

(३९२) जोगी आतम जोगी धीरज कथा , दादू, पद ६.१८.२ आतम ।

(३९३) राजिंदर -- राजनै राजिंदर कुरवै : धन्ना, पद ४६.१ धर्म कुरवै (कुती होना) ।

(३९४) पावक(कुल) -- पानी आगिनि पवन के पावक: मीरां, मेरबानो, शब्द ५.८ पानी, आगिन पवन ।

(३९५) राजा -- छजु पापुक कुल राजा मकता : नानक, वार रामुबाबा सलोकु २१.१ महला० छजु (कोम)।

(४१३) मुनी (मुनि) -- मुनी एक मुनि गहि बैठा : हरिदास,पद राग कल्याणी : १७६.४.२ आत्मा ।

(४१४) हाकिम -- उठि गया हाकिम लुटि गया डेरा : कबीर,पद ६५.८ प्राण ।

(४१५) बैद -- दोस बैद कूं जाइ -- दादू साखी १.१४२ गुरु

(४१६) रोगी -- दादू रोगी बापरा - दादू साखी १.१४२ शिष्य ।

(४१७) गारड़ी -- दादू मिल्या गुर गारड़ी: दादू साखी १.८गुरु ।

(४१८) फकीर -- दादू मन फकीर माहै हुआ : दादू साखी १.६६ मन ।

(४१९) आशिक -- आशिक माशूक ह्वै गया : दादू, साखी३.१३७ जीवात्मा ।

(४२०) पारधी -- छूटे बहुत पारधी मार्यो: कबीर,पद १२२.६ काल

(४२१) अहेड़ी -- काल अहेड़ी बधिक ह्वै लागे : दादू , पद ८.१०.४ काल ।

(४२२) कलमाठी -- कलमाठी चाखै मन के बादि : कबीर,पद १४१.१आत्मा

(४२३) नट -- नाचु रे मन मेरो नट होय : कबीर , पद १४.१मन ।

(४२४) सौदागर -- सद्गुरु साह संत सौदागर : कबीर,पद ४.१ संत ।

(४२५) कसौटीहार -- हरि कनक कसौटी हार : रैदास,पद ७२.३ हरि

(४२६) जौहरी -- हरि हीरा जन जौहरी : कबीर,साखी १८.१मन ।

(४२७) मरजीवा (गोताखोर) -- है मिलै मरजीवा : मीरा, गुरु और नाम महिमा शब्द ३.५ साधक ।

(४२८) भेवट -- दादू भेवट गुरु मिल्या: दादू, साखी १.२७ गुरु

(४२९) महावत बहुत महावत पचि गए : दादू,साखी १०.२साधक ।

(५६१) मौचाई -- नादबिंद बहुले मांचाई : माधा मिश्रित १६.११ नादबिंद ।

(५६२) जीवी -- जीवी बाहर हरम महल में : कबीर,पद ८६.६ जीवात्मा ।

(५६३) बिरहिनि -- मैं बिरहिनि ठाढ़ी मग जोऊं : कबीर,पद १५.३ जीवात्मा ।

(५६४) पणिहारि -- मांपीवे पणिहारि : हरिदास,पद राग सोरठी ६०.२.१ अस्थिरबुधि ।

(५६५) मालिण -- मतिवाली मालिण बांधी बुरि : हरिदास ,पद राग बसंत,१२६.१.१ मन ।

(५६६) हलिहारी -- बेगि मिलोव ठाढ़ी हलिहारी : कबीर,पद १२०.४ इडापिंगुला सुषम्न ।

(५६७) ठगाठी -- कुमति ठगाठी कांमना : हरिदास,पद रागबिलावल ११२.३.२ कुमति ।

(५६८) कुमणी(कामिनी) -- कुबुधि कुमणी: नानक,सिरी राग की वार सलोक ६.१ कुबुधि ।

(५६९) कसाइणि -- कुसबा कसाइणि : नानक,सिरी राग की वार सलोक ६.१,कुसबद(निर्दयता) ।

(५७०) चंडालि -- क्रोधि चंडालि : नानक , सिरी राग की वार सलोक ६.१ क्रोधि(क्रोध) ।

(५७१) सुंदरि -- सुंदरि सब सिणगार करि : दादू,साखी ८.२६ संत बुद्धि । साधक की शुद्ध बुद्धि ।

(५७२) मोष -- तुम्हें अम्हं या मोष: दादू, साखी ८.१० गोव्यंद ।

(५७३) पूजा -- तुम्हें अम्हं की पूजा : दादू,साखी ८.६,तुम्हें(गोव्यंद)

(५७४)तप -- तुम्हें अम्हं या तप : दादू, साखी ८.६ गोव्यंद

(६११) डाकनि -- डाकनि एक सकल जग खायो : कबीर, पद २.५ माया

(६१२) सैतान -- मच्छ सैतान को अपने कैद कर : सुन्दरदास २.२.१
मच्छ(- मन) ।

(६१३) बासिन -- समंद फिरो यो बासिन मेलै : जम्भ, पद २७.३३
मेल (- रस्सी) ।

-0-

अध्याय -- ५

-0-

सन्तकाव्य में प्रयुक्त उपमानों का भाषापरक अध्ययन

साहित्यकार समाज में ही रहता है और वहीं से वह विविध अनुभवों को प्राप्त कर उन्हें अपनी रचनाओं के द्वारा अभिव्यक्ति प्रदान करता है । अपनी रचनाओं को जनसामान्य तक पहुंचाने के लिए साहित्यस्रष्टा लोकसामान्य की भाषा का आश्रय ग्रहण करता है, ऐसी भाषा में शब्दों को लोक से ही लिया जाता है, अत: हम देखते हैं कि भाषा और लोक का अत्यन्त घनिष्ठ सम्बन्ध है । व्याकरणिक नियमों से प्राय: मुक्त स्वच्छन्द लोकभाषा को बहता नीर के समान बताया जाता है । यही भाषा साहित्य-भाषा का रूप ग्रहण करती है । भाषा का स्वाभाविक प्रयोग लोक में ही मिलता है, अत: कवि या लेखक लोक में रहते हुए भी भाषा का ज्ञान प्राप्त करते हैं । सन्त कवियों की भाषा को देखकर यह ज्ञात होता है कि वे कवि भी लोकभाषा के ही कवि थे । इन कवियों ने लोक में प्रचलित सरल शब्दों को अपनाकर अपनी भाषा को सरल ,सरस एवं प्रभावपूर्ण बना दिया है । यही कारण सन्तों की भाषा अत्यन्त लोकप्रिय बन गई है । जनसाधारण तक अपने विचारों को पहुंचाने के लिए ही इन सन्तों ने कृत्रिमता से रहित स्वाभाविक एवं सुबोध भाषा का आश्रय लिया है । कुछ लोगों का यह भी मत है कि अशिक्षित होने के कारण ही सन्तों की भाषा सरल है और इसमें साहित्यिकता का अभाव है । आचार्य शुक्ल ने सन्तों की भाषा को सधुक्कड़ी भाषा का नाम दिया है,क्योंकि उनकी भाषा में अनेक भाषाओं के शब्द आते हैं । सन्त क्योंकि भ्रमणशील थे, इसलिए उनकी भाषा पर विभिन्न प्रदेशों की

भाषाओं का प्रभाव पड़ना अत्यन्त स्वाभाविक ही है । जिस भाषा के जो-जो शब्द उपयुक्त जान पड़े उन शब्दों को उन्होंने अपनी रचनाओं में स्थान दे दिया । ऐसी भाषा यद्यपि शुद्ध परिनिष्ठित भाषा नहीं कहला सकती तथापि सन्तों की इस सरल भाषा में ऐसी अद्भुत शक्ति है कि कवि के भाव अत्यन्त सुचारुरूप से अभिव्यक्त हो जाते हैं । इसीलिए तो हजारीप्रसाद द्विवेदी जी कहते हैं --' भाषा इनके सामने लाचार-सी नजर आती है । उसमें इतना दम सामर्थ्य नहीं है कि वह इन अक्खड़ साधुओं की कोई बात मानने से इन्कार कर दे । अत: उन्होंने जैसा कहलाना चाहा, वैसा ही इनकी भाषा ने पूरी शक्ति के साथ कह दिया है ।' इसप्रकार हम देखते हैं कि सन्तकवियों ने ऐसी विशिष्ट भाषा का प्रयोग किया है,जो अन्य कवियों से सर्वथा भिन्न है ।

काव्य में भाषा के महत्व का प्रतिपादन करते हुए श्री रामदहिन मिश्र कहते हैं --' काव्य में भाव ही सब कुछ नहीं, भाषा भी बहुत कुछ है । भाव के साथ भाषा भी कुछ कहती-सी जान पड़ती है । जहां भाव की व्यंजना है वहां भाषा का सौन्दर्य भी चाहिए ।'[1] सशक्त भाषा कवि के भावों को और अधिक ऊपर उठाकर उसमें तीव्रता ला देती है । सुन्दर सफल काव्य -भाषा में कुछ गुणों का होना आवश्यक है । कृत्रिम एवं क्लिष्ट भाषा अप्रचलित तथा कठिन शब्दों को अपना कर अपनी सरलता एवं सरसता को खो देती है । ऐसी भाषा लोकप्रिय नहीं बन सकती है । सन्तों की भाषा ऐसी कृत्रिम एवं क्लिष्ट नहीं है, इसीलिए वह सरसता के कारण जनप्रिय बन गई है ।

भाषा में चित्रात्मकता का होना भी आवश्यक है ।चित्रमय भाषा के द्वारा कवि अपने भावों को सजन रूप में प्रकाशित कर सकता है । भाषा के इस गुण के माध्यम से कुशल कवि अमूर्त को भी मूर्त रूप प्रदान कर ब देता है । सन्त-कवियों ने जीवन के विविध अनुभवों पर आधारित अनेक सजीव तथा भावपूर्ण चित्रों के

---

१ पं० रामदहिन मिश्र :'काव्य में अप्रस्तुतयोजना',पृ० ४२ ।

द्वारा भाषा को चित्रमय बना दिया है । डा० महेन्द्र कबीर के विषय में कहते हैं --`चित्रात्मकता की दृष्टि से कबीर सफल कवि हैं । स्थूल और सूक्ष्म दोनों प्रकार के चित्र उनके काव्य में विद्यमान हैं । उनके चित्र सजीव,तीव्र संवेदनशील तथा मार्मिक हैं । समसामयिक युग-जीवन भी इन चित्रों में प्रतिबिम्बित हुआ है । कवि इन चित्रों के माध्यम से अभीप्सित भावों को पाठकों तक प्रेषणीय बनाने में समर्थ हुआ है ।`[1]

कवि संगीतात्मकता के द्वारा भी अपनी काव्य भाषा को मधुर एवं आकर्षक बनाता है । श्री रामदहिन मिश्र भाषा के संगीत धर्म के विषय में अपना विचार प्रकट करते हुए कहते हैं --`शब्दालंकार के साधन हैं छंद और अनुप्रास । इन दोनों से ही संगीत-सृष्टि होती है । जो भाव साधारण भाषा द्वारा प्रस्फुटित नहीं होता, वह ध्वनि-माधुर्य से फूटा पड़ता है, उसकी सुकुमारता और मनोहारिता स्वर-लहरियों में तैरती-फिरती दृष्टिगोचर होती है ।`[2] सन्त-कवियों की भाषा में संगीतात्मकता का अभाव नहीं है । इन कवियों के छंद पद अत्यन्त लोकप्रिय हैं । गुरु नानकदेव की भाषा के विषय में डा० जयराम मिश्र अपने विचार प्रकट करते हैं --` गुरु नानक की भाषा में संगीत के माधुर्य का अद्भुत प्रवाह है । वे स्वयं संगीत के पूर्ण ज्ञाता थे । इसी से उनकी कुछ `बाणियों` में अद्वितीय नाद-सौन्दर्य के कारण उसमें अनुप्रास का प्रयोग सहजभाव से स्वत: प्राप्य हो जाता है ।`[3] यही बात अन्य सन्तकवियों के सम्बन्ध में भी कही जा सकती है ।

सफल काव्य-रचना के लिए भाषा में स्वाभाविकता का गुण होना चाहिए । सन्तकवियों की भाषा अपने इसी गुण के कारण अत्यन्त लोकप्रिय बन गई है । अत्यन्त गूढ़ रहस्यात्मक अनुभवों को भी सन्तों ने अपनी इसी स्वाभाविक सरल भाषा में व्यक्त किया है ।

---

१ डा० महेन्द्र :`कबीर की भाषा`,पृ० २५३ ।

२ श्री रामदहिन मिश्र : `काव्य में अप्रस्तुतयोजना`,पृ० ४६।

३ डा० जयराम मिश्र : `नानक वाणी`,पृ०४१(भूमिका)

कवि ऐसे शब्दों का प्रयोग करते हैं, जिनका अर्थ लाक्षणिक और व्यंजक होता है, इस प्रकार काव्यभाषा में लाक्षणिकता एवं व्यंजकता का गुण आ जाता है । इन गुणों से युक्त भाषा अधिक आकर्षक रूप ग्रहण करती है । सन्त-काव्य में भी ऐसे शब्दों का प्रयोग किया गया है, जिनका एक अर्थ अभिधेयपरक है तथा दूसरा लाक्षणिक एवं व्यंग्यपरक । इन सन्तकवियों ने लक्षणा पर आधारित मुहावरों का भी अत्यन्त सुन्दर ढंग से प्रयोग किया है ।

भाषा भावानुकूल होनी चाहिए । ऐसी भाषा ही कवि के विचारों को उचितरूप में व्यक्त कर सकती है । उपयुक्त शब्दों का प्रयोग, सुबोध शैली, सरल छन्द-योजना भाषा को अधिक आकर्षक रूप प्रदान करते हैं । इन सभी बातों को अपना कर सन्तों ने अपनी काव्यभाषा को आकर्षक रूप प्रदान किया है ।

श्री रामदहिन मिश्र काव्योपयुक्त भाषा के विषय में कहते हैं--
`काव्य में सरस, कोमल, मधुर और मंजुल शब्द हों जो साथ ही सुबोध, सार्थक, स्वाभाविक और उपयुक्त हों । वाक्य सुगठित, सुसम्बद्ध, भावव्यंजक, सरल और स्पष्ट हों । शैली सुचारु, प्रभावोत्पादक और सामंजस्यपूर्ण हो । सम्मिलित रूप में भाषा चित्ताकर्षक हो, हृदयद्रावक हो, भावप्रकाशक हो, विचारबोधक हो, धारावाहिक हो, रागात्मक हो, लोच-लचकवाली हो और ऐसी हो कि संवेदन के स्वरूप को मूर्त तथा ग्राह्य रूप में उपस्थित कर सके तथा भावप्रवणता से रागात्मक वृत्तियों को उच्छ्वसित कर सके । सबसे बड़ी बात यह है कि कवि के उच्छ्वसित भावों को भली भाँति प्रकट करने में वह समर्थ हो । ऐसी ही भाषा काव्योपयुक्त होती है ।`[1]

अप्रस्तुतविधान में भाषा का महत्त्व

कवि अपने वर्ण्य या प्रस्तुत के उत्कर्ष के लिए उसी के समान गुण धर्मवाले अप्रस्तुत को लाकर काव्य में स्थान देता है । इन अप्रस्तुतों की योजना के द्वारा काव्य की सौन्दर्य-वृद्धि होती है । कवि अपने अप्रस्तुतों को कभी तो स्थूल जगत् से ले लेता है और कभी अपने काल्पनिक जगत से । अप्रस्तुतों के चयन में कवि पूर्णरूप से स्वतन्त्र है । इन अप्रस्तुतों या उपमानों का प्रयोग कवि भाषा के माध्यम से करता है।

---

१ श्री रामदहिन मिश्र : `काव्य में अप्रस्तुतयोजना`, पृ०२५ ।

भाषा के द्वारा ही भावाभिव्यक्ति सम्भव है ।' कवि अनुभूति एवं कल्पना के सहारे अपनी सशक्त लाक्षणिक एवं व्यंजक भाषा में अलंकारों के माध्यम से काव्य में उपमानों की नियोजना करता है । उपमानों के प्रयोग में कवि प्रतीकों, मुहावरों लोकोक्तियों, सूक्तियों एवं शब्दशक्तियों को भी लाता है । ये सभी उपमान भाषा के प्रमुख उपकरण हैं । अत: अप्रस्तुतविधान में भाषा का महत्वपूर्ण स्थान होता है । बिना भाषा के साहित्य की रचना की ही नहीं जा सकती ।'

श्री रामदहिन मिश्र के अनुसार 'अप्रस्तुत योजना का मूल मंत्र है भाषा ।' क्योंकि भाषा के माध्यम से ही हम अपने मन के भावों को प्रकाशित कर सकते हैं । यद्यपि चित्र, संगीत, नृत्य एवं शिल्प आदि कलाओं के द्वारा भी विभिन्न भावों को व्यक्त किया जाता है, परन्तु भाषा की समकक्षता कोई नहीं कर सकता है, भाषा ही हमारे विचारों या अनुभूतियों के रूप में हमारे भावों को दूसरों तक पहुंचा देती है ।

<u>कवि व्यक्तित्व और उसकी भाषा का सम्बन्ध</u>

कवि के व्यक्तित्व का एवं उसकी भाषा का अत्यन्त घनिष्ठ सम्बन्ध है । कवि भी अन्य मानवों के समान ही एक सामाजिक प्राणी है । अत: उसके सामाजिक परिवेश का प्रभाव उसके जीवन के प्रत्येक क्षेत्र पर निश्चितरूप से पड़ता है । समाज में रहकर ही वह विभिन्न भाषाओं को सीखता है और उन भाषाओं को माध्यम बनाकर अपने विचारों को अभिव्यक्त करता है । कवि की भाषा उसके परिवेश से बहुत अधिक प्रभावित होती है । उसको एक विशेष रूप प्रदान करने का श्रेय उसी परिवेश को प्राप्त है । एक ही युग में जन्म लेने वाले कवियों की भाषा का रूप भिन्न-भिन्न होता है । किसी कवि के निजी गुण, परिवार, विभिन्न परिस्थितियों— ऐतिहासिक, राजनैतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक आदि का सम्बन्ध उसके परिवेश से अवश्य होता है । इसी सम्बन्ध के अनुरूप भाषा को एक विशिष्ट रूप प्राप्त होता है । श्रेष्ठ कवि अपने युग की भाषा को उत्कृष्ट

---

१ विद्याधर : 'जायसी साहित्य में अप्रस्तुतयोजना', पृ०१६६ ।

एवं परिष्कृत रूप प्रदान करने में सहायक होता है ।

अन्य अनेक कवियों के समान सन्तकवियों ने बड़े-बड़े शब्दों से भरपूर परिनिष्ठित भाषा को व नहीं अपनाया । सन्त तो जनसाधारण के कवि थे, अतः उन्होंने सीधी सादी बोलचाल की भाषा को अपनाकर उसी के माध्यम से अपने विचारों को सर्वसाधारण तक पहुंचा दिया है । समाज के उच्च वर्ग के अत्याचारों से पीड़ित, व्यर्थ के कर्मकाण्डों में फंसी जनता के अभिशप्त जीवन को सुधारने का संकल्प लेकर ये सन्तकवि अत्यन्त प्रबल क्रान्तिकारी व्यक्तित्व से महामण्डित होकर समाज के सामने उपस्थित हुए । उनके इस व्यक्तित्व का प्रभाव उनकी भाषा एवं रचनाओं पर पड़ना स्वाभाविक था । ब्राह्मण धर्म के घोर विरोधी इन सन्तों ने ब्राह्मणों की भाषा के प्रति विरोध प्रकट करके सर्वसाधारण की बोलचाल की भाषा को मान्यता प्रदान की । सन्त कवियों की इन्हीं प्रवृत्तियों को देखते हुए कुछ असन्तुष्ट आलोचकों ने काव्यशास्त्र के सिद्धान्तों के आधार पर मूल्यांकन करके सन्तकवियों की कटु आलोचना की है । लेकिन कतिपय विद्वानों की यह मान्यता है कि सन्तों की रचनाओं को सिद्धान्त विशेष के अनुसार परखना उनके प्रति अन्याय करना है । काव्य-रचना करना तो उनका ध्येय नहीं था, वे तो अपने क्रान्तिकारी विचारों तथा सदुपदेशों को जनता तक पहुंचाना चाहते थे । इसके लिए इन लोगों ने काव्य को माध्यम बनाया । आडम्बरहीन, सरल, स्वाभाविक शैली में सन्तों ने अपनी वाणियों को जन-जन तक पहुंचाने का प्रयास किया । काव्यशास्त्र के नियमों की ओर देखने का अवसर उनके पास नहीं था । अपरिष्कृत जनपदीय शब्दावली के द्वारा इन कवियों ने पाठकों पर अद्भुत प्रभाव डाला है । कहीं भी भाषा निष्प्राण नहीं लगती, उनकी भाषा में एक प्रवाह, स्वाभाविकता है । प्रभावशाली व्यक्तित्व के अनुरूप ही उनकी भाषा सशक्त एवं प्रभावोत्पादक है । व्यंग्यपूर्ण स्थलों पर तो उनकी भाषा को देखकर लोग आश्चर्य में पड़ जाते हैं कि अशिक्षित कहे जाने वाले सन्तों का भाषा पर इतना सुन्दर अधिकार कैसे हुआ । ऐसे स्थलों पर शब्दों की मार अत्यन्त गहरी है । एक-एक शब्द अपने अन्दर अपार शक्ति छिपाए हुए है । ठेठ ग्रामीण शब्दों के माध्यम से भी किसी के हृदय तक पहुंचने की अद्भुत क्षमता इनमें विद्यमान है । पद, साखी तथा रमैनी जैसे साधारण

शब्दों के माध्यम से गूढ़ से गूढ़ रहस्यों को व्यक्त कर देना भी इन सन्तकवियों की विशेषता है । भ्रमणशील होने के कारण इनकी भाषा पर अनेक बोलियों का प्रभाव पड़ना स्वाभाविक ही था । खड़ीबोली, ब्रजभाषा, अवधी, भोजपुरी, राजस्थानी पंजाबी आदि अनेक भाषाओं के शब्दों का प्रयोग सन्तकवियों ने अपनी-अपनी काव्य-भाषाओं में किया है ।

कवि व्यक्तित्व की संवेदनीयता

कवि के व्यक्तित्व का प्रभाव उसकी रचनाओं पर पड़ता है । संवेदनशील कवियों की रचनाएं पाठकों के हृदय को शीघ्र ही प्रभावित कर लेती हैं । कवि की रचनाओं को देखकर ही यह ज्ञात हो जाता है कि उसकी संवेदनशक्ति कितनी सूक्ष्म एवं भावगर्भित है । भाषा द्वारा अनुशासित होकर यह संवेदनशक्ति काव्य-रचना करती है । कवि व्यक्तित्व की संवेदना का सम्बन्ध विचारों और भावों से होता है । कवि के संवेदना के विषय में डा० रामस्वरूप चतुर्वेदी कहते हैं--

'काव्य भाषा एक निश्चित सीमा तक कवि के व्यक्तित्व के अनुकूल रूपाकार ग्रहण करती है, पर अपनी आधारभूत सामाजिक भाषा से वह पृथक नहीं हो सकती, जो कि रचनाकार की संवेदना का माध्यम और स्रोत है । इसीलिए भाषा के अर्थ-बोध के साथ-साथ साहित्य में संवेदनात्मक गहराई बढ़ती जाती है । ... भाषा का आन्तरिक संघटन संवेदना के स्वरूप को निर्धारित करता है ।'[1]

सन्तकवि भी संवेदनशील कवि थे । इन लोगों ने वास्तविक जीवन के जो सुन्दर, सजीव चित्र खींचे हैं, उनसे इन कवियों की संवेदनशीलता का परिचय मिल जाता है ।

अप्रस्तुतों की शब्दगत योजना

शब्दों को भाषा में एक विशेष स्थान प्राप्त है । शब्दों पर ही तो काव्य-भाषा का रूप निर्भर करता है । भावों के अनुरूप शब्दों के चयन से भाषा प्रभावपूर्ण बनती है और उसका रूप निखरता है । इसलिए कुशल कवि बड़ी ही सतर्कतापूर्वक शब्दों का प्रयोग करता है । अर्थ के बड़े-बड़े समासयुक्त शब्दों

---

१ डा० रामस्वरूप चतुर्वेदी : 'भाषा और संवेदना', पृ०६८-६६ ।

को छोड़ देने से भाषा की स्वाभाविकता नष्ट हो जाती है और कवि कम-से-कम शब्दों के द्वारा अधिक-से-अधिक भावों को व्यक्त कर देता है। अप्रस्तुतयोजना के अन्तर्गत कवि लाक्षणिक एवं व्यंजक शब्दों का चयन करके उन्हें अपने भावाभिव्यक्ति का माध्यम बनाता है। इससे उसके वर्णन में मार्मिकता, सजीवता तथा चित्रात्मकता आती है। इन गुणों से युक्त काव्य की सरसता के कारण सहज ही लोग आकर्षित हो जाते हैं। अर्थ में संगति लाने के लिए भी उचित शब्द-चयन आवश्यक है। काव्य-रचना में प्रवृत्त होने पर कवि अपने शब्द-भण्डार से चुन-चुनकर उन्हीं शब्दों को ले आता है जिनमें उसके भावों को उसी रूप में प्रकट करने की पूर्ण क्षमता विद्यमान हो। इसी प्रकार के शब्द जो अत्यन्त सतर्कतापूर्वक चुने जाते हैं, कवि के अभीष्ट अर्थ की व्यंजना में सहायक होते हैं। अप्रस्तुतयोजना में शब्दों और भावों के सामंजस्य के द्वारा व्यंजकता आती है।

सन्तकवियों की अप्रस्तुतयोजना और उनका शब्द-प्रयोग

सन्तकवियों ने अपने काव्य में तत्सम, तद्भव, देशज, विदेशी शब्दों जिनमें अरबी, फारसी, तुर्की आदि भाषाओं के शब्द आते हैं, का प्रयोग किया है। इनमें से तद्भव तथा ठेठ ग्रामीण शब्दों का प्रयोग अधिक किया गया है, क्योंकि सन्तकवियों को परिनिष्ठित साहित्यिक भाषा की अपेक्षा सरल, स्वाभाविक लोकभाषा ही अधिक प्रिय लगती थी, वे तो जनसाधारण के कवि थे। कम-से-कम शब्दों को चुन-चुनकर उन्होंने अपनी भाषा में स्थान दिया है, इसीलिए छोटे-छोटे छन्दों में सन्तों ने अधिक-से-अधिक भाव भर दिया है। ऐसे सफल शब्दों का प्रयोग किया गया है कि कहीं भी वे अपने भाव-प्रकाशन में असफल नहीं हो पाए हैं। तत्सम तथा विदेशी शब्दों को उन्होंने सुविधानुसार इतने सुन्दर रूप में ढाल लिया है कि ऐसे शब्दों का यह नवीन रूप देखने योग्य है। अधिकतर संज्ञा शब्दों का आधार ग्रहण करके अप्रस्तुतयोजना की जाती है, सर्वनाम, विशेषण, क्रिया आदि की केवल सहायता ली जाती है।

संज्ञा — सन्तकवियोंने संज्ञा के सभी स्वरान्त रूपों का प्रयोग किया है, उदाहरणार्थ-

अकारान्त — गगन, मधुप, कमल, रथ, पंक आदि।

आकारान्त— गंगा, कन्या, गगरा, मृगछाला, प्रजा।

इकारान्त — अग्नि, जलनिधि, मरीचि, केहरि, मैमनि।

ईकारान्त -- धरती, सारथी, ठेलनो, भ्रिंगी, सींगी ।

उकारान्त -- भानु, कद्दू, टेसु, भेदु, परमलु, मलागलु ।

ऊकारान्त -- आंसू, पसू, कोल्हू, तराजू, बटाऊ, दारू ।

एकारान्त -- तारे, लखाने, काटे, कांड्ये, बसोठे ।

ऐकारान्त -- अंगारै, बटेरै, आकासै, पिंजरै ।

औकारान्त -- बांधिनौ, बसेरौ, कांधौ, बेलौं, कुछावौ, संदेसौ ।

परसर्ग -- सन्तकवियों द्वारा प्रयुक्त परसर्ग निम्न हैं :--

कर्ता कारक की विभक्ति 'ने' का सर्वथा अभाव है ।

कर्म -- कउ, कै, को, कौं, कौ, कूं आदि ।

'लोह को ज्यों पारस पखानहुं पलट लेत ।' सुन्दरदास १ अंग पद१४-१

'बाजीगर कौं बोल्यें मांहो' । -- दादू पद १.४०.४ ।

करण -- से, सैं, सगां, सनि, सूं, सेती, सौं, सो आदि

'कछ उपजी कछ ही सौं मेरा रटत पियास पियास ।'कबीरपद १५.२

सम्प्रदान -- कउ, कौं, को

'ज्यों कामी को कामिनि प्यारी ज्यों प्यासे को नीर रे ।'

--कबीर पद १३.६ ।

अपादान -- से सें सूं से सेती सौं सूं

'आतम हीरा सुरति सौं मनसा मोती पोव' । --दादू साखी ४.२०३

सम्बन्ध -- क का की के कै को कौं कौ कर केरा केर केरी केरै कैरे दादो

काइया मधहु मंदरु घरु हरि का । --नानक, राग मलार,सबद ५.४५।

'कुवां केरा पोखर, पाव न लागे बार ।'--कबीर साखी १५.४०.२ ।

अधिकरण -- मैं,में, पर , पै, परि, माहिं, माहिं, माहैं, मांहीं,महिं,मइं,मझियां,

मधे,मांझ, मझारी,मझार,मध्य मझारं, मोक, मंझि,मंझा ।

'कैसे जल में सुलझावै । माथि गोपाल परिब फिरि आई' --नामदेव पद ८५.१।

तत्सम शब्द

सन्त कवियों ने पाण्डित्य-प्रदर्शन के लिए तत्सम शब्दों का प्रयोग नहीं किया है। बल्कि अपने विचारों को जनसामान्य तक पहुंचाने के लिए उन्होंने ऐसे लोकप्रचलित सरल तत्सम शब्दों को अपनाया है, जिससे भाषा की स्वाभाविकता कहीं भी नष्ट नहीं हो पायी है। उपमान रूप में जो तत्सम शब्द प्रयुक्त हुए हैं, उनमें से कुछ शब्द इस प्रकार हैं --

भानु, कमल, कंचन, जल, महोदधि, पंक, मलय, अंकुश, अन्न, घृत, पात्र, दीपक, मंदिर, प्रतिमा, बालक, नट, रथ, सारथी, तप, साधना, निद्रा, मृग, मल्लिका, मधुकर, अमृत, कल्पद्रुम, चिंतामणि आदि।

कहीं- कहीं पर इन कवियों ने तत्सम शब्दों के किंचित् विकृत रूप का भी प्रयोग किया है, जैसे --

रत्न -- रतन, कमल -- कंवल, आत्म -- आतम, ध्वनि -- धुनि, तृष्णा -- तिसा, मुनि -- मुनी, लक्ष्मी -- लछिमी, ग्राम -- ग्यांम, आदि। भाषानुकूल ही शब्दों को गढ़ने से भाषा के प्रवाह में बाधा नहीं पहुंची है। संस्कृत के कठिन शब्दों को न अपनाने के कारण संतों की भाषा में कृत्रिमता नहीं आ पाई है।

तद्भव शब्द

सन्तकवियों ने तद्भव शब्दों का प्रयोग अधिक करके अपनी भाषा को सरल एवं सरस बना दिया है। हिन्दी क्षेत्र में प्रचलित शब्दों के अतिरिक्त इन लोगों ने अन्य क्षेत्रों के शब्दों को भी अपनाया है, जिनमें राजस्थानी तथा पंजाबी भाषा के शब्दों की संख्या अधिक है। उपमानों के सन्दर्भ में प्रयुक्त तद्भव शब्दों में से कुछ इस प्रकार हैं --

चंदा, दामिनि, बदली, धूरि, चांदी, बसुधा, चांद, घर, तेल, नदी, कुमारी, सिंगार, तिलक, कंगन, सेंदुर, आरती, नदिया, मेला, मणि, कान्ह, गोपी, सूवा, सिंह, हरिनी, पंछि, दादुर, मधुमाखी आदि।

इन तत्सम तथा तद्भव शब्दों के मिश्रित रूप का भी प्रयोग किन्हीं स्थलों पर हुआ है । इन युग्मक शब्दों में कहीं तो दोनों शब्द तत्सम हैं, कहीं एक तत्सम तथा दूसरा शब्द तद्भव है, कहीं दोनों ही तद्भव हैं । कतिपय उदाहरण इस प्रकार हैं -- अष्ट मंगल, अमर फल, कल्पद्रुम छाया, कंचन मेर, दुख दरिया, मरण नदी, अमृत जल, राही लछमिनि, अमृत मोचन, तिलदुआइ, बनि कंवडि, धीवराकुला, सारापन, पुहुप बास, पदुमनाल ।

शब्दों के परिवर्तित रूप -- स्वरागम, व्यंजन विपर्यय, घोषीकरण, अघोषीकरण अल्पप्राणीकरण, महाप्राणीकरण, मूर्धन्यीकरण, प्रक्षेप आदि के कारण शब्दों में परिवर्तन हुए हैं --

स्वरागम -- पिआरी, परबत, सुमिना, साहेब, निरंजिनि, करम । इन शब्दों में क्रमशः इ, अ, इ, उ, ए, इ, अ आदि स्वरों का आगम हुआ है ।

व्यंजन विपर्यय -- बाण बान, विष बिख, केवटविकट, षोडश सोरह । इनमें ण न, ष ख, व ब, क व, ड र हुआ है ।

घोषीकरण -- कंकण--कंगन, पातुक--पातिग । यहां पर अघोष व्यंजन क सघोष व्यंजन ग में बदल गया है ।

अघोषीकरण -- बांधव --बंधिप । घोष व्यंजन व अघोष व्यंजन प में परिवर्तित हुआ है ।

महाप्राणीकरण -- पलंग-- पलंघ, गृह-- घर, बेड़ा-- भेरा । इन शब्दों में अल्पप्राण व्यंजन ग महाप्राण व्यंजन घ में तथा अल्पप्राण व्यंजन ब महाप्राण व्यंजन भ में परिवर्तित हुआ है ।

अल्पप्राणीकरण -- सुख-- सुक -- जख, धोखा--धोका । महाप्राण ख का अल्पप्राण क में परिवर्तन ।

मूर्धन्यीकरण -- दांत-डाब । 'द' दन्त्य ध्वनि मूर्धन्य ध्वनि 'ड' में बदल गई है ।

प्रक्षेप के कारण -- पुष्प-पुहुप । संस्कृत की ऊष्म ध्वनि 'ह' रूप में परिवर्तित हुई है ।

देशज शब्द-- संदिग्ध या अज्ञात व्युत्पत्ति वाले शब्द देशज शब्दों में आते हैं। जनसाधारण की बोलचाल की भाषा में इन शब्दों का प्रयोग होता है। सन्तकवियों ने भी ऐसे अनेक शब्दों का प्रयोग अपनी भाषा में किया है,जो देशज शब्द कहे जा सकते हैं, जैसे-- औघड़, कुल्हाड़ा, पेड़, खिड़का, रोटी, बोक, डोरी, चिउंटी आदि।

विदेशी शब्द -- सन्तों की भाषा में विदेशी शब्द भी बहुत पाए जाते हैं। इनमें अरबी, फारसी तथा तुर्की भाषा के शब्द अधिक हैं।

फारसी -- तरकस, चाबुक, कागद, परदा, सौदागर, दरिया, पियाला, खुलासा, बखारा, मुहर, दिल, दरबार, दरवाजा, खुदाई आदि।

अरबी -- कतेब, अदब, करम, काजी, कुरान, गरीब, जवाब, मसकरा, मसकीन, मसीति, महल, मुसलमान, मुल्ला, अल रजाब, रहीम आदि।

तुर्की -- कंगाल, तुरकिनी, बाबा, चाकू आदि।

समास -- सन्तकवियों ने सामासिक शब्दों का प्रयोग भी किया है।परन्तु ऐसे सामासिक शब्द बहुत अधिक नहीं मिलते हैं,क्योंकि इन कवियों की भाषा अत्यन्त सरल जनभाषा है। सामासिक शब्दों में से कुछ इस प्रकार हैं --

द्वन्द्व समास -- राधी-रुकमिनी, गंग-जमन, पुहुप-बास, ताता-मम, गुरु-गोविन्द।

कर्मधारय -- चरन-कंवल, दुख-दरिया, भव-सागर, ज्ञान-खड्ग, विरह-भुवंगम, मन मिरिग, सरीर-सरोवर आदि।

तत्पुरुष -- साधु-संगति, मानुस-जनम, कुल-सिंधु, विष-बेलड़ी, विष-फल, बंदी-छोड़, ब्रह्म-विचार आदि।

द्विगु समास -- षट-आश्रम, षट-दरसन आदि।

बहुव्रीहि -- सारंग-पानि, चतुभुंज, पारस-मनी आदि।

विकृत शब्द -- अन्य कवियों की भांति सन्तकवियों ने भी कहीं-कहीं विकृत शब्दों का प्रयोग किया है । अपनी सुविधानुसार इन कवियों ने शब्दों के मूलरूप को तोड़-मरोड़ कर नए रूप में गढ़ दिया है । कहीं-कहीं तुक मिलाने के लिए भी ऐसा किया गया है । सन्तों द्वारा प्रयुक्त कुछ विकृत शब्द निम्नलिखित हैं --

यशोदा-जसबै, दुर्योधन-दरजोधन, हिरण्यकश्यप- हिरनाकस,

डोमिनी- डुमणी, लक्ष्मी-लाइमिई, वृथा-बिरथि, उमक डेरं आदि।

सर्वनाम -- संज्ञा के स्थान पर सर्वनाम का प्रयोग किया जाता है । इसलिए सर्वनाम उपमेय या प्रस्तुत होते हैं । प्रस्तुत एवं अप्रस्तुत में सम्बन्ध स्थापित करने के लिए भी कुछ सर्वनामों का प्रयोग किया जाता है । सन्तकवियों द्वारा प्रयुक्त सर्वनाम इस प्रकार हैं --

पुरुषवाचक -- मैं, मुझ , हौं, हउं, हंम, तूं, तुझ, तुम, तैं, थारी, वह, वो, तिन, उस आदि ।

निश्चयवाचक --यह, ए, वह, उस , सो , तिन इन आदि ।

संबंधवाचक -- जो, जिस, जे, जा स ।

प्रश्नवाचक -- कौन,क्यन, को, क्या ।

अनिश्चयवाचक -- कहु,काहु,कोई ।

निजवाचक -- आप,आपन,रउरा ।

आदरवाचक -- आप ।

विशेषण -- विशेषण संज्ञा या सर्वनाम की विशेषता बताता है्तः यह संज्ञा या सर्वनाम के साथ ही आता है । कभी-कभी यह विशेषण अकेले ही आता है, इसे हम संज्ञा कहते हैं, संज्ञा के समान इसमें विकार भी होतेहैं । `हिन्दी व्याकरण` में श्री कामताप्रसाद गुरु ने विशेषण के सम्बन्ध में अपने विचारों को इस प्रकार व्यक्त किया है -- `विशेषण संज्ञा की व्याप्ति मर्यादित करता है-- इस उक्ति का अर्थ यह है कि विशेषण रहित संज्ञा से जितनी वस्तुओं का बोध होता है, उनकी संख्या विशेषण के योग से कम हो जाती है । ` इसके पश्चात् वे कहते हैं कि जो विशेषण व्यक्तिवाचक संज्ञा के साथ आता है, वह केवल उसका अर्थ स्पष्ट करता है, उस संज्ञा कीव्यक्ति व्याप्ति मर्यादित नहीं करता । वह विशेषण समाना-धिकरण होता है,जो जातिवाचक संज्ञा के साथ आकर उसका साधारण धर्म सूचि

करता है, जो शब्द किसी शब्द का अर्थ स्पष्ट करने के लिए आते हैं, वे समाना-धिकरण कहलाते हैं। संज्ञा के साथ तथा क्रिया के साथ विशेषण का प्रयोग होता है। संज्ञा के साथ प्रयुक्त विशेषण को विशेष्य-विशेषण तथा क्रिया के साथ प्रयुक्त विशेषण को विधेय-विशेषण कहते हैं। विशेष्य के पूर्व विशेष्य-विशेषण आता है और क्रिया के पूर्व विधेय-विशेषण आता है। श्री कामताप्रसाद जी आगे कहते हैं -- `विधेय-विशेषण समानाधिकरण होता है,जैसे-- `यह ब्राह्मण चपल है`। इस वाक्य में `यह` शब्द के कारण `ब्राह्मण` संज्ञा की व्यापकता घटती है,परन्तु `चपल` शब्द उस व्यापकता को और कम नहीं करता। उससे ब्राह्मण ब्राह्मण के विषय में केवल एक बात--चपलता-- जानी जाती है।`[1]

सन्त कवियों ने अप्रस्तुतयोजना के सन्दर्भ में जिन विशेषणों का प्रयोग किया है, उनमें से कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं --

गुणवाचक विशेषण

अगह अगम -- अगह अगम जैसे लहरि महोदधि : रैदास पद १७.२

सघन वन -- कामिनी को तन मानो, कहियै सघन वन : सुन्दरदास ६ अं१.१

दुवारा सांकरा -- मुक्ति दुवारा सांकरा : कबीरसाखी २६.१

रता पैनणु (लाल पोशाक) -- रता पैनणु मनु रता : नानक सबद सिरी रागु ७.६

तारे परभाति (प्रभातकालीन तारे) -- ज्यौं तारे परभाति : कबीर साखी

अंधी कोठी -- अंधी कोठी तेरा नामु नाही : नानक सबद,रागु आसा १६.२।

हरिनी दूबरी -- कबीर हरिनी दूबरी, इस हरियारे ताल : कबीर साखी १६.३।

अनुपम बास -- पांचऊ भंवर मन भंवर, बरन अनुपम बास : कबीर साखी ३२.१०

---

1 कामताप्रसाद गुरु : `हिन्दी व्याकरण`, पृ०९९-१०१।

सुद सरूप चंद चित चकोर -- भीखा साहब, बसंत शब्द १.८

निरमल मोर बहोमिस झूठा-- हरिदास पद, राग मलार १३०.६

गुणवाचक विशेषण के छ: भेद हैं-- कालसूचक,वर्णसूचक, गुण सूचक, दशा सूचक, आकार सूचक तथा स्थानसूचक । उपरोक्त उदाहरणों में ये सभी भेद आ गए हैं । सन्तकवियों ने गुणवाचक विशेषणों का प्रयोग बहुत अधिक नहीं किया है । कहीं-कहीं संज्ञा शब्दों के बाद भी विशेषणों का प्रयोग किया है ।

संख्यावाचक विशेषण -- संख्यावाचक विशेषण के दो भेद होते हैं--निश्चित और अनिश्चित संख्यावाचक विशेषण ।

निश्चित संख्यावाचक विशेषण के कुछ उदाहरण इसप्रकार हैं--

चौदह चंदा मांहि -- कबीर साखी १-३

देखहु एक अंग दोउ भाके-- हरिदास,पद , राग धनाश्री १७६.१.३

दादू पंच अनूपम पवि करि -- दादू, साखी ८.२६

सात सुत मिलि बनिजकी -- कबीर, पद १२४.५

अनिश्चित संख्यावाचक विशेषण के कुछ उदाहरण --

जैसे बहु कंचन के भूखन एकहिं धाति समावहिंगे -- कबीर,पद ५७.५

बहुतु विवाणप छाने धूरि -- नानक, सबद रागु आसा १३.१

तरवर एक अनंत डार साखा पुहुप पत्र रस भरिया -- कबीर,पद ११२.३

हरि नांव लख भुवन उजवारा -- नामदेव, पद , राग टोडी १.३

परिमाणवाचक विशेषण -- परिमाणवाचक विशेषणों का प्रयोग भी सन्त कवियों ने इनभावों की अभिव्यक्ति के लिए किया है । उदाहरणार्थ --

सब देवल में रमै हो पियारा -- हरिदास पद ,आसावरी ४८.१.२

राम मढे में तनक लहुरिया -- कबीर,पद ११.२

किंचित लाभ मूल दियो खोई -- कबीर,रमैनी १७.२

तां पशु केतिक बार -- कबीर,साखी १५.३६.२

तब भंवरहिं लागी अधिक भूख -- कबीर, पद ७५.७

इस प्रकार हम देखते हैं कि सन्तकवियों ने विशेषणों का प्रयोग कहीं तो संज्ञा शब्दों के बाद किया है और कहीं पहले । विशेषणों के प्रयोग से कहीं भी भाषा की सहजता या स्वाभाविकता को क्षति नहीं पहुंची है । ये प्रयोग अप्रस्तुतयोजना के अन्तर्गत उपमानों के अभिव्यक्ति में सहायक सिद्ध हुए हैं ।

क्रिया ::

सन्तकवियों ने क्रियाओं के दोनों रूपों -- सकर्मक और अकर्मक का प्रयोग किया है । उनकी भाषा में क्रियाएं सहायक रूप में आयी हैं । अप्रस्तुतयोजना के सन्दर्भ में जिन क्रियाओं का प्रयोग हुआ है, वे इस प्रकार हैं -- भीना, पैठी, देखा, हार्यो, बहत, लागा, डावै, निपजे, झुलन्ति, देवा, बेहियो, फेंका, [illegible] संचारि, रचाइया, जागे, कम्पै, डारि, पठावि, बनाई, पुरई, हुरावं, पिठाया, बट्या, चोलिका, चढ़ें, कुरवै, हुआ, रंगा, प्रकासै, लगाई, बिडारयो, झूले, पावहि, सके, भांगड, बिछुरे, चांपिये, चारौंमी आदि ।

क्रिया की वाक्य-रचना में मुख्य क्रिया के अतिरिक्त सहायक क्रिया और कृदन्त भी सहायक होते हैं । सन्तों ने भी इन क्रियाओं से सहायता ली है, कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं --

सहायक क्रिया(वाक्यत) है, (जाय) है, (जिनका) थीं, (बांधन जाय) था, होवे, हुये, होवना, होहि आदि ।

सरलता ला दिया है, भाषा सर्वत्र प्रवाहपूर्ण है ।

सन्तकवियों ने जिस सरल सहज जनभाषा को अपनाकर काव्य-रचना की है, उसमें उन लोगों के भावों तथा विचारों को अभिव्यक्त करने की क्षमता विद्यमान है । सन्तकाव्य की भाषा का अध्ययन करते समय संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण, क्रिया आदि के विवेचन द्वारा यह ज्ञात होता है कि सन्तकवियों की भाषा में खड़ीबोली, ब्रजभाषा, अवधी, भोजपुरी राजस्थानी तथा पंजाबी भाषाओं के शब्द आए हैं और इन सभी भाषाओं से सन्तों की भाषा प्रभावित है । किसी एक बोली या भाषा को सन्तकवियों के क काव्य की भाषा मानना न्यायसंगत नहीं है । कोई भी कवि अपने क्षेत्रविशेष की भाषा से अवश्य प्रभावित होता है, अत: सन्तकवि भी अपनी क्षेत्रीय भाषा से अवश्य प्रभावित हैं ।

नामदेव जी महाराष्ट्र प्रान्त के थे । उनके हिन्दी पदों की भाषा ब्रजभाषा ही है, क इसके अतिरिक्त उनकी भाषा पर मराठी, पंजाबी, राजस्थानी तथा रेख्ता का प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है । सन्त कबीर की भाषा खड़ीबोली और ब्रजभाषा से ही प्रमुख रूप से प्रभावित है, परन्तु उनपर अवधी, भोजपुरी, राजस्थानी तथा पंजाबी भाषाओं का भी यथेष्ट प्रभाव है । इन सभी भाषाओं क के शब्द उनकी भाषा में प्रयुक्त हुए हैं ।

श्री दादूदयाल जी की काव्य-भाषा राजस्थानी हिन्दी बताई जाती है, जिस पर सिन्धी, पंजाबी, खड़ीबोली, ब्रजभाषा, मराठी, गुजराती आदि भाषाओं का भी प्रभाव पड़ा है । इसी प्रकार श्री गुरुनानकदेव की काव्,भाषा पूर्वी पंजाबी कही जा सकती है, परन्तु उनकी भाषा पश्चिमी पंजाबी, खड़ीबोली, ब्रजभाषा, रेख्ता एवं सिंधी, लहंदा भाषाओं से भी प्रभावित है ।

हरिदास जी मारवाड़ प्रदेश के थे, अत: उनकी भाषा में राजस्थानी भाषा के शब्द भरे पड़े हैं, उनकी भाषा खड़ीबोली, ब्रजभाषा, गुजराती राजस्थानी आदि भाषाओं के प्रभाव से परिपूर्ण है । इसी प्रकार जाम्भो जी भी क्योंकि राजस्थान प्रान्त के थे, अत: उनकी रचनाएं ब्रजभाषा तथा खड़ी बोली में भी की हैं । इस प्रकार हम देखते हैं कि जाम्भो जी की काव्य-भाषा राजस्थान में

प्रचलित ब्रजभाषा तथा खड़ीबोली है, जिसमें राजस्थानी शब्द अधिक मात्रा में आए हैं । इस प्रकार हम देखते हैं कि सन्तों ने जिस सरल जनभाषा को अपनाकर काव्य-रचना की है, उसमें कई भाषाओं के शब्द घुलमिल गए हैं, परन्तु इससे भाषा की स्वाभाविकता तथा प्रवाह में बाधा की सृष्टि नहीं होने पायी है ।

शब्द और अर्थ का सम्बन्ध

शब्द और अर्थ का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध होता है । इनमें से किसी एक को दूसरे से अधिक महत्वपूर्ण नहीं कहा जा सकता है । क्योंकि तो काव्याचार्यों ने सर्वत्र शब्द और अर्थ का महत्व प्रतिपादित किया है । इन आचार्यों का अभिमत यह है कि शब्द और अर्थ दोनों ही मिलकर काव्य कहलाते हैं, इनमें से किसी एक को अलग करके दूसरे को काव्य नहीं कहा जा सकता है । भामह 'काव्यालंकार' में 'शब्दार्थौ सहितौ काव्यम्' कहकर दोनों के महत्व को स्वीकार करते हैं । आचार्य वामन गुण और अलंकार से युक्त शब्दार्थ को काव्य मानते हैं । आचार्य कुन्तक ने भी अपने काव्य-लक्षण में शब्द एवं अर्थ दोनों को महत्व प्रदान किया, इनके अनुसार शब्द और अर्थ दोनों में हो उसी प्रकार काव्यत्व होता है, जिस प्रकार तिल में तेल रहता है । आचार्य मम्मट भी दोष रहित तथा गुण-युक्त शब्दार्थ को काव्य कहते हैं । मम्मटाचार्य के अनुसार 'सामान्यरूप में प्रत्येक शब्द एक संकेतात्मक ध्वनिमात्र है, वह प्रत्यक्षज्ञान के आन्तरिक भावन का आंशिक बोतन करते हुए किसी न किसी अर्थ का वाचक होता है ।'[1] इस प्रकार हम देखते हैं कि आचार्यों ने शब्द और अर्थ के समान महत्व को स्वीकार किया है । इन लोगों ने शब्द और अर्थ के घनिष्ठ सम्बन्ध को समझा है । म महाकवि कालिदास ने रघुवंश के मंगलाचरण में शिव-पार्वती की वन्दना करते हुए यह कहा है कि संसार के माता-पिता पार्वती-महेश्वर उसी प्रकार नित्य ही मिले हुए हैं, जिस प्रकार शब्द और अर्थ परस्पर मिले रहते हैं । कालिदास ने भी शब्द एवं अर्थ के परस्पर सम्बन्ध को माना है । शब्द और अर्थ वास्तव में अभिन्न है ।

---

1 मम्मट : 'काव्यप्रकाश'--2।7 ।

काव्य-रचना में शब्द और अर्थ दोनों को महत्व प्रदान किया गया है । काव्य से भाषा का और भाषा से शब्दार्थ का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध होता है । कवि अपनी इच्छानुसार शब्दों का प्रयोग करके अर्थों की व्यंजना करता है । अभिधात्मक रूप में प्रयुक्त शब्दों से प्रसंगानुसार लाक्षणिक एवं व्यंजनात्मक अर्थों को अभिव्यक्त किया जाता है ।

<u>अप्रस्तुतों की अर्थगत योजना</u>

अर्थ तीन प्रकार का होता है-- वाच्य,लक्ष्य,व्यंग्य । अर्थ को भाषा का आन्तरिक पक्ष कहा गया है, शब्द अर्थ के वाचक होते हैं । अप्रस्तुत-विधान के संदर्भ में ,एकार्थक, द्वयर्थक,शब्दों का प्रयोग हुआ है । उदाहरण के लिए कुछ इस प्रकार हैं --

<u>एकार्थक</u> -- सन्तकवियों ने अनेक स्थलों पर एकार्थी शब्दों का प्रयोग किया है । अपने उपदेशों को जनसाधारण तक पहुंचाने के लिए तथा बाह्याचारों का खण्डन करने के लिए इन कवियों ने एकार्थी शब्दों का आश्रय ग्रहण करके ऐसे सरल सुबोध शैली में काव्य-रचना की है, जो कि साधारण जनता के लिए भी उसी प्रकार बोधगम्य है, जिस प्रकार साहित्य-मर्मज्ञों के लिए । परमात्मा के विरह से `विरहिनि` जीवात्मा के व्याकुल दशा का वर्णन अत्यन्त सरल,सुन्दर शब्दों द्वारा कबीर ने किया है--

` [illegible]
`नैना नीझर लाइया, रहट बहै निस याम ।
पपिहा ज्यूं पिव पिव करौं, कब रे मिलहुगे राम ।।`

इस साखी में शब्दों का एकार्थी प्रयोग है । विरहिणी जीवात्मा अपने प्रियतम से कहती है-- नैनों से आंसू ढुलक-ढुलक कर रात दिन रहट की तरह बह रहे हैं । पपीहा की तरह `पिव`-`पिव` की रट लगी है, हे राम। कब मिलोगे । नीझर, रहट, पपीहा आदि अत्यन्त सरलशब्दों द्वारा कवि अपने भावों को कितने मार्मिक ढंग से अभिव्यक्त करता है ।

<u>द्वयर्थक</u> -- लौकिक अर्थ के साथ-साथ आध्यात्मिक अर्थ की अभिव्यक्ति कराने के लिए सन्त-काव्य में द्वयर्थक शब्द प्रयुक्त हुए हैं । अत्यन्त व गूढ रहस्यों को इन शब्दों को

सहायता से पाठकों तक पहुंचाया गया है । अनेक स्थानों पर इन द्वयर्थक शब्दों का प्रयोग सन्तकवियों ने किया है । कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं --

`एको सरवरु कमल अनूप । सदा बिगासै परमल रूप ।
ऊजल मोती चूगहिं हंस । सरबकला जगदीसै अंस ।।`[1]

एक सरोवर है,जिसमें सुन्दर कमल खिले हैं ।यह सरोवर कमलों को विकसित करता है और उन्हें सुगंधि तथा रूप प्रदान करता है । हंस उज्ज्वल मोती चुगते हैं। वे हंस सर्वशक्तिमान जगदीश के अंश हो गए हैं । इन पंक्तियों का एक अर्थ इस प्रकार है । परन्तु नानक देव ने यहां द्वयर्थक शब्दों का प्रयोग करके एक अन्य अर्थ की अभिव्यंजना कराई है । यहां सरोवर,कमल, हंस, मोती आदि शब्दों के दो दो अर्थ हैं ।

सरवरु : १ -- सरोवर, २-- सत्संग
कमल : १ -- कमल, २- गुरुमुख
हंस : १ -- हंस, २- गुरुमुख
मोती : १ -- मोती २- नाम

इस प्रकार एक दूसरा अर्थ इन पंक्तियों का यह है -- एक सत्संग रूपी सरोवर है, जिसमें गुरुमुख रूपी सुन्दर कमल खिले हैं । यह सरोवर कमलों को विकसित करता है और उन्हें सुगंधि तथा रूप प्रदान करता है ।गुरुमुख रूपी हंस सर्व शक्तिमान् जगदीश के अंश या भाग हो गए हैं ।

इसी प्रकार कबीरदास जी ने द्वयर्थक शब्दों का प्रयोग करके अपनी अनुभूतियों की अत्यन्त सफल अभिव्यक्ति की है --

`ढूलन लागे केवड़ा, टूटी अरहट माल ।
पानी की कल जानता, गया जो सींचनहार ।।`[2]

इस साखी का एक अर्थ इस प्रकार है-- रहट की माला टूट गई और केवड़ा ढूलने लगे । जो पानी की मशीन जानता था, वह सींचने वाला चला गया । इसी साखी का अन्य अर्थ जो कि कवि का अभीष्ट अर्थ है वह यह है--

---

१ डा० जयराम मिश्र : `नानक वाणी`,सबद रागु आसा १२,१,पृ०२५५ ।
२ डा० पारसनाथ तिवारी : `कबीर ग्रन्थावली`,साखी १६,३३,पृ० २०२ ।

प्राण का धागा टूट जाने पर शरीर के सब अंग जड़ हो जाते हैं,क्योंकि उनमें शक्ति का संचार करने वाली आत्मा हो जब उनका साथ छोड़ देती है, तो उनमें जीवन कहां से आवे । यहां अरघट माल का अर्थ है प्राण का धागा, डेवढ़ा का दूसरा अर्थ है शरीर के अंग, जड़ का अर्थ शरीर से है और सींचनहार है आत्मा। इन शब्दों के प्रयोग द्वारा भाषा की व्यंजना-शक्ति बढ़ती है और उसको एक आकर्षक रूप प्राप्त होता है ।

शब्द-शक्तियां--

कवि के इष्टार्थ का बोध कराने वाली शक्तियों को 'शब्द-शक्ति' के नाम से अभिहित किया जाता है । इसके द्वारा काव्यार्थ को समझने में सुविधा होती है । शब्द-शक्तियां शब्दार्थ के सौन्दर्य की वृद्धि करती हैं , शब्द-शक्तियों का प्रत्यक्ष सम्बन्ध भाषा से है । ये शब्दशक्तियां तीन प्रकार की कही गई हैं-- अभिधा,लक्षणा ,व्यंजना । इनमें से व्यंजना शक्ति को अधिक व्यापक , गूढ़ एवं सुन्दर माना गया है,यही काव्य का प्राण है ।

अभिधा

अभिधा शक्ति शब्दों के संकेतित अर्थ का बोध कराती है । संकेतित अर्थ को ही वाच्यार्थ कहते हैं । आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने वाच्यार्थ में ही काव्य की रमणीयता को स्वीकार किया है,यद्यपि व्यंग्यार्थ के महत्व का भी उन्होंने प्रतिपादन किया है। देव ने भी शब्दरसायन में अभिधा को उत्तम काव्य माना है । अभिधा का शब्द से अत्यन्त निकट का सम्बन्ध है, यह अर्थ ग्रहण और बिम्बग्रहण दोनों कराती हैं । शब्दशक्तियों में अभिधा का बहुत महत्व है । सन्तकवियों की रचनाओं में अभिधा के अनेक उदाहरण मिल जाते हैं । इन कवियों ने जनसाधारण को उपदेश देने के लिए सरल,सुबोध शब्दों का आश्रय लेकर ही अपने विचारों को अभिव्यक्त किया है । कबीर एक स्थान पर कहते हैं --

'कुछ अभिमान विचार तजि, छोड़ी पद निरबान'

(कबीर ग्रन्थावली रमैनी ७.७)

सन्त रैदास के काव्य में भी अभिधा के अनेक उदाहरण मिलते हैं --

`मुकंद मुकंद जपहु संसार । बिनु मुकंद तनु होइ अउहार ।
सोई मुकंदु मुकति को दाता।सोई मुकंदु हमरा पिता माता।।'
(रैदास पद ६.१)

सन्त नामदेव अत्यन्त सरल शब्दों में कहते हैं--

`हमारे करता राम सनेही ।
काहे रे नर गरब करत है बिनसि जाइगी देही ।।' (नामदेव पद १४०.१)

लक्षणा

इसमें लाक्षणिक शब्दों का प्रयोग होता है । आचार्य मम्मट लक्षणा की जो परिभाषा देते हैं, उसका अर्थ है--`मुख्य अर्थ के बाधित होने पर रूढ़ि अथवा प्रयोजन के कारण जिस क्रिया(शक्ति) द्वारा मुख्य अर्थ से सम्बन्ध रखने वाला अन्य अर्थ लक्षित हो, उसे लक्षणा-व्यापार (शक्ति) कहते हैं । लक्षणा शक्ति की तीन स्थितियां हैं-- मुख्यार्थ का बोध, मुख्यार्थ का अमुख्यार्थ या लक्ष्यार्थ से सम्बन्ध तथा रूढ़ि या प्रयोजन । लक्षणा के दो भेद माने गए हैं -- रूढ़ि तथा प्रयोजनवती लक्षणा । प्रयोजनवती लक्षणा के सब मिलाकर ६४ भेद स्वीकार किए गए हैं । रूढ़ि लक्षणा तथा प्रयोजनवती लक्षणा के उदाहरण इस प्रकार हैं --

रूढ़ि लक्षणा -- रूढ़ि लक्षणा मुहावरों के प्रयोग में प्राय: रहती है, इसमें रूढ़ि शब्द अर्थ लक्षित होता है । सन्तकाव्य में रूढ़िलक्षणा के उदाहरण भी मिलते हैं, जैसे -- `माया मोह का जोबना, बांधि बंधे सब लोई।' (कबीर रमैनी१४.८)

यहां माया मोहादि सूक्ष्म तत्वों द्वारा लोगों को बांधने की बात कही गई है जो कि असम्भव है, यहां मुख्यार्थ का बाध हो रहा है । अत: रूढ़ि द्वारा ही `बंधे' का `प्रभावित होना' अर्थ लक्षित हो रहा है, अर्थात् माया मोहादि लोगों को अपने आकर्षण के कारण प्रभावित कर लेते हैं ।

इसी प्रकार एक स्थान पर कबीरदास चकई चकवे के रात्रि में वियोग वाली अभिव्यक्ति के माध्यम से कहते हैं--

'चकई बिछुरी रैनि की, आइ मिले परभाति ।
जे नर बिछुरे राम सौं, ते दिन मिले न राति ।।'
(कबीर साखी २.४)

रात्रि में चकवे से बिछुड़कर चकई दिन में उससे मिल जाती है, परन्तु राम से विमुख होकर जीव न रात्रि में ही और न दिन में ही उनसे मिल पाता है, राम से दिन और रात में न मिलने का अर्थ है-- जीव के दुःखों का कभी अन्त नहीं होना ।

प्रयोजनवती लक्षणा -- इसके दो भेद हैं-- गौणी और शुद्धा । गौणी लक्षणा में सादृश्य सम्बन्ध के आधार पर पदार्थों में समानता दिखाई जाती है । जब मुख्यार्थ का बोध होता है तो सादृश्य सम्बन्ध द्वारा अर्थ लक्षित होता है, जैसे-- नामदेव कहते हैं --'पायो मैं राम संजीवनि मूरी ।' (नामदेव, पद १६८.१)

'राम' और 'संजीवनीमूरी' दोनों एक नहीं हो सकते । अतः यहां मुख्यार्थ का बाध हो रहा है,किन्तु यहां गुण-साम्य के कारण समानता की कल्पना की गई है । जिस प्रकार संजीवनी बूटी लोगों को नवीन जीवन देने में समर्थ है, उसी प्रकार राम में भी यह शक्ति विद्यमान है । भक्त राम को प्राप्त कर अपने भीतर नव जीवन के संचार का अनुभव करता है । यह गौणी लक्षणा दो प्रकार की होती है-- सारोपा और साध्यवसाना । रूपक अलंकार में सारोपा लक्षणा होती है और रूपकातिशयोक्ति में साध्यवसाना । सारोपा लक्षणा का उदाहरण इस प्रकार है --

'माया दीपक नर पतंग,भ्रमि भ्रमि मांहि पड़ंत ।' (कबीर साखी १.२४.१)

यहां गुणों में समानता के कारण 'माया' पर 'दीपक' का और 'नर' पर 'पतंग' का आरोप किया गया है, अतः सारोपा लक्षणा है ।

साध्यवसाना लक्षणा में विषयी में विषय का अध्यवसान हो जाता है, जैसे --'झूलन लागे केवड़ा, टूटी अरहट माल ।
पानी की कछ आमता, गया जो सींचनहार ।।'
(कबीर साखी)

यहां 'केवड़ा' शरीर है , 'अरहट माल' रक्त संचार है, सींचनहार आत्मा है, विषयी

में विषय का अध्यवसान हो गया है, अतः यह साखी साध्यवसाना लक्षणा का सुन्दर उदाहरण है ।

<u>शुद्धा लक्षणा</u> -- इसमें अंगांगिभाव सम्बन्ध से तथा आधाराधेयभाव सम्बन्ध से अर्थ लक्षित होता है । इसके भी दो भेद हैं-- उपादान लक्षणा और लक्षण लक्षणा । उपादान लक्षणा में लक्ष्यार्थ से वाचक लक्षक शब्द का वाच्यार्थ समन्वित होता है अर्थात् अन्य अर्थ के लक्षित होने पर भी अपना अर्थ बना रहता है --

'कबर परी हरि मथुरा नगरी कान्ह पियासा जाईरे ।' (कबीर पद१२१.६)

यहां 'पियासा' का लक्ष्यार्थ अनुप्त रहा, किन्तु इस पंक्ति में प्यासा रहने का अर्थ भी बना हुआ है, अन्य अर्थ के लक्षित होने पर भी अपना अर्थ बना हुआ है, अतः यहां उपादान लक्षणा है ।

लक्षण-लक्षणा में लक्ष्यार्थ से किसी सम्बन्धित अर्थ का बोध होता है, अर्थात् वाच्यार्थ का बोध कराने के लिए वाच्यार्थ अपने को छोड़कर केवल लक्ष्यार्थ को सूचित करता है । कबीर कहते हैं --'माधु रे मन मेरो नट होल'। यहां भी मुख्यार्थ का बाध हो रहा है, क्योंकि मन का नाचना असम्भव है । यहां वाच्यार्थ अपना अर्थ छोड़कर केवल लक्ष्यार्थ लक्षित कर रहा है, वह है--'आनन्द मंगल मनाना ।

<u>व्यंजना</u>

'व्यंजना शक्ति शब्द के मुख्यार्थ तथा लक्ष्यार्थ को पीछे छोड़ती हुई उसके मूल में छिपे हुए अकथित अर्थ को द्योतित कराती है । अभिधा तथा लक्षणा अपने अर्थ का बोध कराकर जब विरत हो जाती है, तब जिस शब्दशक्ति द्वारा व्यंग्यार्थ ज्ञात होता है, उसे व्यंजनाशक्ति अथवा व्यापार कहते हैं । व्यंग्यार्थ के लिए ध्वन्यार्थ, सूच्यार्थ, आक्षेपार्थ, प्रतीयमानार्थ आदि शब्द प्रयुक्त होते हैं ।[1] 'जब अभिधा लक्षणा द्वारा किसी अर्थ का बोध नहीं हो सकता है तब व्यंजना शक्ति का

---

१ हिन्दी साहित्य कोश, पृ०८०५ ।

आश्रय लेना पड़ता है, व्यंजना शब्द और अर्थ दोनों पर ही आधारित रहती है । व्यंग्यार्थ द्वारा अर्थ का ध्वनन ही हो सकता है, अर्थ कथित या लक्षित नहीं हो सकता है, व्यंजना द्वारा ध्वनित अर्थ को सहृदय पाठक स्वयं ही समझ लेता है । इस व्यंजना शक्ति के दो भेद हैं--शाब्दी और आर्थी । शाब्दी व्यंजना भी दो प्रकार की होती है--अभिधामूला तथा लक्षणामूला,फिर इनके भी अनेक भेद -प्रभेद होते हैं । आर्थी व्यंजना के भेद इस प्रकार हैं-- वाच्य संभवा, लक्ष्य संभवा तथा व्यंग्य संभवा फिर इसके भी भेद-प्रभेद हैं । `हिन्दी साहित्य कोश` में कहा गया है --`वस्तुत: व्यंजना की सम्भावनाएं अनन्त हैं-- कब, कहां तथा किस बात के कारण व्यंजना होने लगती है, इसकी कोई निश्चित व्यवस्था नहीं दी जा सकती है । शास्त्रकारों ने जिन भेदों का निर्देश किया, उन्हें तो केवल बानगी ही समझा जा सकता है । व्यंजना-व्यापार की अनन्तता के अतिरिक्त अर्थ-परम्परा की जो क्रमबद्ध शृंखला प्रस्तुत करने की अद्भुत क्षमता इस शब्द-शक्ति में स्वभावत: विद्यमान है, वह अन्यत्र दुर्लभ है । तभी तो ध्वनि के मेधावी आचार्यों ने व्यंग्यार्थ के चमत्कार को ही काव्य की एकमात्र कसौटी माना है[1] ।`

सन्तकाव्य में व्यंजना शक्ति के अनेक उदाहरण मिलते हैं, सन्तकवियों ने व्यंजक शब्दों का बहुत अधिक प्रयोग किया है । सन्तकाव्य में आए हुए व्यंजनाशक्ति के कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं-- `तू ब्राह्मन मैं काशी का जोलहा चीन्हि न मोर गियाना` कबीर ग्रन्थावली का १८८ वां पद व्यंजना का उत्कृष्ट उदाहरण है, इसमें कबीर कहते हैं कि तुम ब्राह्मण हो और मैं काशी का(जुलाहा) जुलाहा हूं, परन्तु तुमने मेरे ज्ञान की परख नहीं की है । इसी में आगे कबीर कहते हैं -- तुम राजाओं से याचना करते हो परन्तु मेरा ध्यान राम पर लगा है । ओछे कर्मों के कारण और भक्तिविहीन होने के कारण मैं भी पूर्वजन्म में ब्राह्मण बना, लेकिन रामदेव की सेवा में त्रुटि रह गई, इसलिए उसने मुझे पकड़ कर जुलाहा बना दिया । इसमें बड़ी सूक्ष्म व्यंजना है । कबीर ब्राह्मणों के पाखंड या बाह्याचारों की निन्दा सभी स्थानों पर करते हैं, यहां भी इन पाखंडी ब्राह्मणों का उपहास करते हुए व्यंग्य करते हैं कि तुम भी राम ज की भक्ति उचित ढंग से नहीं कर रहे हो, इस त्रुटि

---

१ हिन्दी साहित्य कोश, पृ०८०६ ।

को देखकर कहीं राम तुम्हें भी मेरी तरह निकृष्ट कुलारा न बना दें । कबीर को ब्राह्मण कुल में जन्म लेने की कोई इच्छा न थी, वे तो ब्राह्मणों के अहंकार को चूर्ण करने के लिए उनका उपहास करते हैं । कबीर की व्यंजना शक्ति अत्यन्त सबल तथा उत्कृष्ट है । अपने सूक्ष्म व्यंजनाओं से वे सभी सहृदय पाठकों को सहज ही प्रभावित कर लेते हैं ।

एक अन्य स्थलपर कबीरदास कहते हैं :--

पढ़ये पद कौं जो जन दीन्हें तिनहीं परम पद पाया ।।
चिंते तो माधव चिंतामणि हरि पद रमैं उदासा ।
चिंता अरु अभिमान रहित है कहै कबीर सो दासा ।'

(कबीर पद ३२- ६,७,८)

'अन्तिम'पद' श्लिष्ट शब्द है । इसके अनेक अर्थ हो सकते हैं । यहां 'पद' शब्द में 'पैर' का अर्थ बोध कराने वाली जो शक्ति है, वह व्यंजना है और शब्द-विशेष पर ही वह आधृत है । इसी कारण अभिधामूलक है । इससे ध्वनि निकलती है कि माधव चिंतामणि हैं,अत: उन्हीं के चरणों में मन लगाना चाहिए तभी मोक्ष[1] प्राप्त होगा । यह ध्वनि अभिधामूलक व्यंजना द्वारा ही व्यंजित होती है ।'

वक्रोक्ति

इसका अर्थ है-- वक्र उक्ति , वाणी के विलक्षण व्यापार में ही वक्रोक्ति माना गया है । आचार्य कुन्तक वक्रोक्ति को केवल उक्ति चमत्कार या वाक्-चातुर्य ही नहीं मानते, वे कहते हैं--'वक्रत्वं कविव्यापार:' अर्थात् कवि-व्यापार का कविकौशल वक्रोक्ति है । डा० त्रिपाठी वक्रता के विषय में अपने विचारों को व्यक्त करते हुए कहते हैं --' वक्रतावाद के विषय में तो कुन्तक का स्पष्ट कथन है --'स्वभावस्वीकरणेन परिपोषणमेववक्रतायाः परं रहस्यम्' । सामान्यत: क्या साहित्यदर्पणकार जैसा पुराना विवेचक वक्रता को केवल अलंकार

---

१ डा० महेन्द्र : 'कबीर की भाषा',पृ०२१२ ।

समझता है और आचार्य शुक्ल उसे वाग्वैचित्र्यवाद के नजदीक रखना चाहते हैं ? वास्तव में वक्रता वह कवि व्यापार है जो अपने मूल प्रस्थान में ही सम्भाव्य तथा व्यवहारोपयोगी अनाकर्षक ढंग से पृथक् कर लेता है । वर्ण्यवस्तु के सम्बन्ध में उसकी धारणा है कि उसमें सहज निहित सौन्दर्य को ही प्रतिमा की कुदाली से उभारने की क्रिया ही कवि व्यापार है, वक्रता है । यह सारा प्रयत्न कुन्तक की दृष्टि में सौन्दर्यानुरोधी तथा रसानुरोधी ही हुआ करता है । कुन्तक ने स्पष्ट कहा है कि वह वक्रता ही है, कवि व्यापार ही है, जो वर्णनीय पदार्थ स्वभाव को सुन्दर एवं सरस रूप में उभार कर, कुरेद कर ऊपर रख देता है। उत्कृष्ट स्वभाव वाले वर्णनीय पदार्थ में लीन सौन्दर्य को बिना किसी प्रकार की प्रौढोक्तिजन्य अथवा आलंकारिक लेप लगाए बिना उभार देना चाहिए ।'[1] कुन्तक वक्रोक्ति को काव्य की आत्मा मानते हैं । भामह शब्द और अर्थ दोनों की वक्रता को वक्रोक्ति कहते हैं । आचार्य दण्डी वक्रोक्ति को काव्य का अनिवार्य माध्यम स्वीकार करते हैं । आचार्य कुन्तक ने वक्रोक्ति के पांच भेद किए हैं-- वर्णविन्यास वक्रता, पदपूर्वार्द्ध वक्रता, पदपरार्धवक्रता, वाक्यवक्रता तथा प्रबन्ध वक्रता । कतिपय विद्वानों ने वक्रोक्ति के दो भेद किए हैं-- काकु और श्लेष । सन्तकाव्य में भी वक्रोक्ति के अनेक उदाहरण मिल जाते हैं, जैसे--

'सहज सहज सब कोइ कहै, सहज न चीन्हैं कोई ।
जिहिं सहजै विषया तजै, सहज कहावै सोइ ॥

(कबीर,साखी ३४.१)

'यहां 'सहज' शब्द प्रभु के लिए , स्वभाव के लिए तथा सहजज्ञान के लिए प्रयुक्त हुआ है, समान वर्ण वाले भिन्नार्थक शब्द होने के कारण यहां वर्णविन्यासवक्रता है ।

'हरि जननी मैं बालक तोरा '(कबीर पद ३०.१) यह पंक्ति पदपूर्वार्द्धवक्रता के अन्तर्गत लिंगवैचित्र्यवक्रता नामक भेद का उदाहरणा है, क्योंकि यहां कवि ने 'हरि' पुलिंग में 'जननी' स्त्रीलिंग का आरोप किया है, यह आरोप लिंगवैचित्र्यवक्रता पर आधारित है । इसके अतिरिक्त वक्रोक्ति के अन्य भेदों के भी

---

१ डा० राममूर्ति त्रिपाठी : 'भारतीय काव्यशास्त्र : नयी व्याख्या',पृ०४२ ।

उदाहरण सन्तकाव्य में पाए जाते हैं ।

प्रतीक

अव्यय या चिह्न को प्रतीक कहते हैं । संक्षिप्त हिन्दी शब्द सागर में कहा गया है--`किसी शब्द,संख्या,नाम, गुण या सिद्धान्त आदि का सूचक चिह्न प्रतीक है । अंग्रेजी में इसे `सिंबल `कहते हैं । डा०नित्यानन्द शर्मा प्रतीक की परिभाषा देते हुए कहते हैं --`अप्रस्तुत,अप्रेय,अगोचर अथवा अमूर्त का प्रतिनिधित्व करने वाले उस प्रस्तुत या गोचर वस्तुविधान को प्रतीक हैं जो देश,काल एवं सांस्कृतिक मान्यताओं से युक्त है ।` साहित्यकार द्वारा प्रतीकों के प्रयोग के मुख्यत: तीन प्रयोजन हैं-- भावना को मूर्त रूप प्रदान करने के लिए,कुतूहल और विस्मय उत्पन्न करने के लिए तथा गोपनीय को दूसरों से गुप्त रखने के लिए प्रतीकों के क्रमिक विकास में डा० महेन्द्र कहते हैं -- `प्रतीकों के क्रमिक विकास का इतिहास अत्यन्त रोचक तथा महत्वपूर्ण है । वैदिक काल से लेकर कबीरदास के समय तक नवीन अर्थों से युक्त नए प्रतीकों का निर्माण होता रहा है । इन विभिन्न प्रतीकों की योजना दो प्रकार की रही है-- एक साम्यमूलक और दूसरी विरोधमूलक ।विभिन्न रूपकों तथा संख्यावाची शब्दों का प्रयोग साम्यमूलक प्रतीक योजना के अन्तर्गत है तथा विरोधमूलक प्रतीक योजना से उलटवांसी शैली का विकास हुआ है । डा० रामकुमार वर्मा ने अपने एक लेख में प्रतीक योजना के इतिहास का संक्षिप्त विवरण देते हुए ऋग्वेद उपनिषद,महाभारत आदि में प्राप्त प्रतीकों का संकेत करने के पश्चात् लिखा है--`धीरे-धीरे इन प्रतीकों द्वारा गंभीर और दार्शनिक भावभूमि को स्पष्ट किया गया ..... नाथपंथियों और संत कवियों ने इस प्रकार के प्रतीकों का प्रयोग अपनी रचनाओं में किया ।`सन्तकवियों ने प्रतीकों को जनसामान्य में प्रचलित किया तथा इन कवियों ने नवीन प्रतीकों का निर्माण भी किया । सन्तकाव्य में जिन प्रतीकों का प्रयोग हुआ है, वे या तो वैदिक साहित्य से लिए गए हैं या सिद्ध नाथ साहित्य से, कुछ प्रतीक तत्कालीन वातावरण और व्यवसाय से भी लिए गए हैं । वैदिक साहित्य

---

१ डा० नित्यानन्द शर्मा : `आधुनिक हिन्दी काव्य में प्रतीक-विधान`,पृ०२१।

२ डा० महेन्द्र : `कबीर की भाषा`,पृ०२४४ पर उद्धृत ।

से प्रभावित प्रतीक जैसे-- हंस, पद, कूप आदि प्रयुक्त हुए हैं, परन्तु ऐसे प्रतीकों की संख्या बहुत अधिक नहीं है।[1] कबीरदास द्वारा प्रयुक्त प्रतीकों को डा० महेन्द्र चार वर्गों में विभाजित करते हैं --

(१) साधना पद्धति से सम्बन्धित विशिष्ट पारिभाषिक प्रतीक--गगन-गुफा, गगनमंडल, चंद, सूर, घट, डाकिनि, वाकिनी, औंधाकुआं, ज्योति, अनहद, नाद, बिंद, सहज आदि।

(२) संख्यावाची शब्दों के साथ प्रयुक्त प्रतीक--एकै कुवां, चौदपुर, तीनिकालो, पंचचोर, पांचो नाग, पांच किरसांना, सात समुंद, सात सूत, पंचनारि, छप्पन कोटि, तैतीसकरोड़ी, सवा लाख, चौरासी लाख आदि।

(३) रूपक, अन्योक्ति के माध्यम से प्रस्तुत भावमूलक प्रतीक-- अंध, मंदिर, हीरा, तरवर, पंखि, गज, बनमाली, मृग, बेल, गांठ, कुलहिनी, बालम, राजा, बांदी, सिकदार, नारद, बालक, भरतारी आदि।

(४) उलटबांसियों के प्रतीक --मच्छ, सिंघ, समुंदर, नीर, आगि, सुआ, काठ, मिरिग(मृग) ससा, हरिनि, चीता, काग, बटेर, बाघ, मूस, मंजार, स्यारि, स्वान, डाकुल, सुंडा, बैल, व गाइ, बछरा, दादुर, सर्प आदि।

अन्य सन्तकवियों ने भी इन प्रतीकों का प्रयोग किया है। उदाहरणस्वरूप निम्नलिखित पद्यांश प्रस्तुत हैं --

`बिमल मझारि बसहि निरमल जल पदमनि जावल रे।
पदमनि जावल जल रस संगति संग दोख नहीं रे ॥१॥
दादर तू कबहि न जानसि रे।
भखहि सिबालु बससि निरमल जल अंमृतु न लखसि रे ॥१॥रहाउ॥

(--नानकवाणी, राग मारू, सबद ४)

इस पद में पदमनि या कमल `प्रकृति' का प्रतीक है, दादर, विषयासक्त पुरुषों का एवं सिबार `विषयों' का प्रतीक है। एक अन्य स्थल पर प्रस्तुत पंक्ति में हंसों का सरोवर में आकर उतरने का अर्थ है `वृद्धावस्था में

---

[1] डा० महेन्द्र :`कबीर की भाषा`, पृ०२६०।

बालों का सफेद हो जाना` । इसी प्रकार काला हिरन, भंवरा, मछली,मगर आदि जीवात्मा के प्रतीक रूप में आए हैं --

`तूं सुणि हरण कालिआ की वाड़ीऐ राता राम ।`

`भवरा फूलि भवंतिआ दुखु अति भारी राम ।`

मछली जिहुंनी नैण हंनी जालु बधिकि पाइआ ।`

(नानक वाणी,राग आसा छंत ५)

प्रतीकों के द्वारा भाषा की लक्षणा एवं व्यंजना शक्ति बढ़ जाती है । कवि की भाषा सजीव, भावपूर्ण एवं प्रभावयुक्त बन जाती है ।

कबीरदास द्वारा प्रयुक्त कुछ प्रतीकों के उदाहरण इस प्रकार हैं --

`रस गगन गुफा में अजर झरै ।

अजपा सुमिरन जाप करै ।। टेक ।। (कबीर पद १४५-१,२)

`गगनगुफा` `ब्रह्मरन्ध्र` का प्रतीक है । इस ब्रह्मरन्ध्र के खुलने पर अमृत रस झरने लगता है । इड़ा, पिंगला,सुषुम्ना नाड़ियों के लिए `चंद`,`सूर` तथा`घर` का प्रतीक रूप में प्रयोग किया गया है --

`सूर समाना चांद में, दुहूं किया घर एक ।

मन का चेता तब भया कछू पुरबला लेख ।। (कबीर साखी ६-२०)

ब्रह्मरन्ध्र में इड़ा,पिंगला तथा सुषुम्ना नाड़ियों का संगम होता है । शरीर द्वारा ही साधना सम्भव है, इस शरीर के लिए सन्तकाव्य में जो विभिन्न प्रतीक प्रयुक्त हुए हैं, वे हैं -- घर,गढ़,मठ,बिरिछ,बांबी,कुंभ,मंदिर, कुटिया आदि । माया साधना के मार्ग में सबसे बड़ी बाधा है,अत: उसके लिए डाकिन, डाकिनी,नागिनी आदि प्रतीक हुए हैं ।आत्मा परमात्मा के लिए `हंस` प्रतीक का प्रयोग बहुत होता है, जैसे -- कबीर कहते हैं `कहै कबीर स्वामी सुखसागर हंसहिं हंस मिलावहिंगे ।`

संख्यावाची शब्दों के साथ प्रयुक्त प्रतीकों के उदाहरण इस प्रकार हैं --

'एकै कुवां पांच पनिहारी ।
एकै लेजु भरै नौ नारी ।।
फाटि गया कुवां विनसि गई बारी ।
बिलग भई पांचौ पनिहारी ।।(कबीर पद९३-३,४,५,६)

यहां 'एकै कुवां' शरीर के लिए, 'पांच पनिहारी' पंच तत्व या इन्द्रियों के लिए प्रयुक्त हुए हैं । पंच नारी, पंच कठपिया, पांच लरिका आदि प्रतीक भी इन्द्रियों के लिए प्रयुक्त हुए हैं । शरीर के आंख,कान, नाक आदि के लिए 'नवं दुवार' या 'नवे घर' तथा ब्रह्मरन्ध्र के लिए 'दसवें द्वारि' या 'दस' संख्या का प्रयोग हुआ है ।

पंच विकारों के लिए 'पंच चोर' प्रतीक रूप में आया है--'पंच चोर संगि लाइ दिए हैं इन संगि जनम गंवायो ।' (कबीर पद ३६-४)।

इसीप्रकार ६४ कलाओं तथा १४ विद्याओं के लिए 'दीवा', 'चंदा' आदि प्रतीकों का प्रयोग कबीरदास ने किया है -- 'चौसंठि दीवा जोइ करि, चौदह चंदा मांहिं ।' (कबीर साखी १-३-१)

रूपक अन्योक्ति के माध्यम से प्रस्तुत कुछ भावमूलक प्रतीकों के उदाहरण इस प्रकार हैं --

'दुलहिनीं गावहु मंगलचार ।
हम घरि आए राजा राम भरतार' ।टेक।। (पद७)

यहां व आत्मा-परमात्मा का मिलन विवाह के प्रतीक रूप में वर्णित है । ब्रह्म जीव के सम्बन्ध को पति-पत्नी सम्बन्ध रूप में माना गया है--'मैं बहुरे पिय गौहनि आई ।' कुछ भावपूर्ण प्रतीक अन्योक्ति रूप में प्रस्तुत किए गए हैं --

'चलि चलि रे भंवरा कंवल पास ।
तेरी भंवरी बोलै अति उदास ।।(कबीर पद ७५-१,२)

इसी प्रकार संसार की नश्वरता का वर्णन करने के लिए कवि अन्योक्ति का सहारा लेता है--

`माली आवत देखि के, कलियां करैं पुकार ।
फूली फूली चुनि गईं, काल्हि हमारी बार।।
(कबीर साखी १६-३४-१)

आत्मारूपी बजाने वाले के शरीर रूपी यंत्र से निकल जाने के पश्चात् शरीर रूपी यंत्र व्यर्थ हो जाता है --

`कबीर जंत्र न बाजई , टूटि गए सब तार ।
जंत्र बिचारा क्या करै, चले बजावनहार ।।`
(कबीर साखी १६-९-१)

`इसप्रकार साम्यमूलक प्रतीक-योजना का क्षेत्र अत्यन्त विस्तृत है । निश्चय ही विरोधमूलक प्रतीक-योजना से इसकी योजना अधिक सुदृढ़ और काव्यात्मक है[1] ।`

विरोधमूलक प्रतीकों के अन्तर्गत उलटबांसियों का स्थान है, ऐसे प्रतीकयोजना में विपर्यय या उलटे कथनों का आश्रय लिया जाता है,अत्यन्त क्लिष्ट कल्पना की जाती है । विरोधमूलक प्रतीकों का प्रयोग करने में अन्य सन्त कवि कबीर से प्रभावित हैं । कबीर कहते हैं--

जब लगि सिंह रहै बन मांहि तब लगि यहु बन फूलै नांहि ।
उलटि सियार सिंह कौं खाई । तब यहु फूलै सब बनराइ ।।
(कबीर पद ७१)

यहां `सिंह` संशय का ,`सियार` बोध का,`बन` काया का प्रतीक है । इसी प्रकार`कबीर ग्रन्थावली`के अनेक पद विरोधमूलक प्रतीकों के सुन्दर उदाहरण हैं , जैसे-- पद संख्या ११६,१०८,१२०,१२७,११०,११६,१६६ । ऐसे प्रतीकों के द्वारा कवि वर्णन को अधिक रमणीय बना देता है,पाठकों के मन में जिज्ञासा जागृत हो जाती है । इससे काव्य की रोचकता बढ़ जाती है । ऐसे प्रतीक आलंकारिक सौन्दर्य से युक्त होकर रहस्यपूर्ण हो जाते हैं और काव्य को आकर्षक रूप प्रदान करते हैं । सन्तकाव्य में इन विरोधमूलक प्रतीकों को विशिष्ट स्थान प्राप्त है ।

---

१ डा० महेन्द्र : `कबीर की भाषा`,पृ०२४५ ।

[illegible]

संत कवियों के भाषा-प्रयोग की विशेषताएं

सन्तकवियों की भाषा में अद्वितीय प्रभाव डालने की शक्ति है । उनकी भाषाशक्ति ने उनके काव्य कोअत्यन्त सुबोध तथा सरल बना दिया है । अत्यन्त सामान्य शब्दावली द्वारा इन कवियों ने अपने विचारों और उपदेशों को जनता तक पहुंचा दिया है । अपने चारों ओर के वातावरण से संतों ने शब्दों को चुन-चुनकर रखा है । शब्दों का प्रयोग इन कवियों ने पूर्ण सफलता के साथ किया है । शब्द-प्रयोग बड़ी ही सतर्कता के साथ किया है,इसलिए कहीं भी व्यर्थ के शब्द प्रयुक्त नहीं हो पाए हैं । पूर्ण एवं मार्मिक उपमानों के प्रयोग द्वारा सन्तकवियों ने अपनी अप्रस्तुतयोजना को अत्यन्त समृद्ध रूप प्रदान कियाहै । इन कवियों की अप्रस्तुत-योजना में चित्रात्मकता,सरलता, स्वाभाविकताएवं लाक्षणिकता है । सन्तों ने सूक्ष्म अभिव्यक्तियों के लिए अप्रस्तुतों की योजना की थी । इन कवियों की अप्रस्तुतयोजना पूर्ण रूप से सफल सिद्ध हुई है ।

सन्त कवियों ने भावों के अनुरूप ही भाषा का प्रयोग किया है । जनभाषा को अपनाकर इन लोगों ने काव्यभाषा को सहज सुन्दर रूप प्रदान किया है । सशक्त भाषा ने कवियों के अभिव्यक्ति पक्ष में व्यंजकता ला दिया है । भाषा के लोकप्रचलित रूप को अपनाकर काव्य-रचना में प्रवृत्त होने के कारण सन्त कवि इतने लोकप्रिय हो गए हैं । सन्तों की भाषा का अपना एक विशिष्ट रूप है , उसे खिचड़ी पंचमेल या सधुक्कड़ी कहना न्यायसंगत नहीं है । श्री मंगलदास स्वामी ने हरिदास जी की भाषा के विषय में अपना अभिमत देते हुए यह कहा है कि हरिदास जी की भाषा उस समय की हिन्दी कही जा सकती है । स्वामी जी आगे लिखते हैं--`अधिकांश सन्त-महात्मा साधक थे, उन्होंने विधिवत: संस्कृत आदि भाषाओं का अध्ययन किया हो-- ऐसा प्रतीत नहीं होता । फिर भी इनकी रचनाओं में भाषा का जो रूप सामने आता है, वह

विशेष भाषाशास्त्र के सिद्धान्तों से विपरीत नहीं है।[1]"

इसी प्रकार श्री जायसवाल भी कबीर की भाषा के विषय में अपना मन्तव्य इस प्रकार देते हैं -- `निष्कर्ष के रूप में हम कह सकते हैं कि कबीर की काव्य भाषा में १५ ई०ई० तथा १६ वीं ई०ई० पूर्वार्द्ध की हिन्दवी का वह स्वरूप सुरक्षित है, जिसे हम तत्कालीन राष्ट्रभाषा का स्वरूप कह सकते हैं।[2]` सन्तकवियों की भाषाओं का गम्भीर अध्ययन करने वाले विद्वान इस मत से सहमत नहीं हो सकते कि इन लोगों की भाषा खिचड़ी या पंचमेल भाषा है, जिसका एक निश्चित रूप नहीं है। यह बात अवश्य है कि सन्तकवियों की भाषा में अनेक भाषाओं के शब्दों का प्रयोग हुआ है, पर्यटनशील होने के कारण ऐसा होना स्वाभाविक ही है। इन शब्दों के कारण उनकी भाषा के स्वाभाविक प्रवाह में तो कोई अन्तर नहीं आ पाया है। कबीर की भाषा के विषय में अपना अभिमत प्रकट करते हुए डा० तिवारी कहते हैं -- `कबीर की भाषा में वस्तुतः अपभ्रंश के तत्व बहुत हैं, साथ ही जनपदीय अवश्य बना देते हैं, किन्तु शब्दों को तोड़ने मरोड़ने का आरोप पूर्णतया निराधार है। तद्भव शब्दों के जैसे रूप प्रचलित थे, उन्हीं का प्रयोग उन्होंने किया है। जहां तक व्याकरण का प्रश्न है, वह भाषा का अनुगामी होता है। कबीर की भाषा का भी अपना पृथक व्याकरण है, किन्तु जैसा भी वह है, उसमें सर्वत्र एकरूपता है।[3]`

अत्यन्त घटिया शब्दजाल के कारण कहीं भी इन कवियों की भाषा निष्प्राण नहीं हो पायी है। सीधी सादी भाषा में अभिव्यक्ति की अद्भुत क्षमता है। अपने भावों को अभिव्यक्त करने के लिए इन सन्तकवियों ने भी लोकोक्तियों, सूक्तियों तथा मुहावरों की सहायता ली है, इससे भाषा की सौन्दर्यवृद्धि हुई है। इन्होंने बलात्पूर्वक लोकोक्तियों तथा मुहावरों का प्रयोग नहीं किया है। इन लोगों ने तो आवश्यकतानुसार ही अत्यन्त स्वाभाविक रूप में उनका प्रयोग किया है।

१ मंगलदास स्वामी : `श्रीमहाराज हरिदास जी की वाणी (भूमिका), पृ०८१

२-श्री माताबदल जायसवाल : `कबीर की भाषा`, पृ०२३४

३ डा० पारसनाथ तिवारी : `कबीर-वाणी`, पृ०१३०

सूक्ति

सूक्तियों के द्वारा कवि अपने व्यापक तथा सूक्ष्म ज्ञान और भाषा-शक्ति का परिचय दे देता है । सूक्तियों के प्रयोग से भाषा में तीव्रता बढ़ जाती है, सरसता बढ़ जाती है । इनसे काव्यभाषा की व्यंजकता बढ़ जाती है। सूक्तियों की सहायता लेकर कवि अपने अनुभवों की व्यंजना अत्यन्त सरलतापूर्वक कराता है । अत: सूक्तियां भी अप्रस्तुतों की योजना में सहायक सिद्ध होती है । सन्तकवि गुरु नानक देव द्वारा प्रयुक्त सूक्ति इस प्रकार है --

'मछी तारू किआ करे पंखी किआ आकासु ।'[1]

बहुत गहरा पानी मछली का क्या कर सकता है ? वह कितना ही गहरा क्यों न हो, मछली को इसकी चिन्ता नहीं रहती । आकाश पक्षी का क्या कर सकता है ? कुछ भी नहीं । इस सलोक के अन्त में नानकदेव कहते हैं कि इसी प्रकार का स्वभाव मूर्ख का होता है, उसे कितना ही समझाया जाए, किन्तु जब वह बोलता है तब ऐसी मूर्खतापूर्ण बातें बोलता है जिससे दूसरों को नुकसान पहुंचे । एक अन्य स्थान पर नानकदेव मनुष्यों के कर्म और कर्मफल को सूक्तिरूप में इस प्रकार समझाते हैं --

'फुडु भाउ फलु लिखिआ पाइ । आपि बीजि आपे ही खाइ ।।'[2]

फल के भाव के अनुसार फल भी लिखे जाते हैं । मनुष्य के जीवन रूपी वृक्ष में जिस प्रकार के अच्छे-बुरे कर्मों के फूल लगते हैं, उसी के अनुसार उसके फल भी होते हैं । मनुष्य स्वयं ही जो बोता है, वही खाता है । नानकदेव द्वारा प्रयुक्त सूक्तियां पंजाब में बहुत प्रसिद्ध हैं । इसी प्रकार अन्य सन्तों ने भी इन सूक्तियों का प्रयोग करके अपनी भाषा की व्यंजना शक्ति में वृद्धि की है । इन सूक्तियों के द्वारा रचनाओं में अधिक व्यंजकता आ जाती है ।

कबीरदास ने भी सूक्तियों का अत्यन्त सुन्दर प्रयोग किया है । प्रेम-विरह के अंग में एक स्थान पर इस बात को कि जो जिसका प्रिय है, वह

---

१ डा० जयराम मिश्र : 'नानकवाणी' वारमाझ की सलोकु २२,पृ०१८५,[illegible]

२ वही : वही सिरी रागु, पृ०१३०

उसी के पास है, सूक्ति के सहारे इस प्रकार दिखाया है --

`ज्योतिषी अवहरि कहै, बंदा कहै अकासि ।[1]
जो है वाका भावता, सो ताही के पासि ।।`

इस प्रकार हम देखते हैं कि इन सूक्तियों के द्वारा वस्तु-वर्णन में सहायता मिलती है । कवि अत्यन्त सहज रूप में अपने भावों को अभिव्यक्ति प्रदान करता है ।

लोकोक्ति

लोकभाषा से लोकोक्तियों का जन्म होता है । इसलिए ये सामूहिक अनुभव की प्रतीक होती हैं । लोकोक्तियों को लोक-चेतना का अंग माना जाता है । लोकोक्तियों का बड़ा व्यापक प्रभाव जनसाधारण पर रहता है । कवि जीवन के विभिन्न क्षेत्रों से अपने सूक्ष्म-निरीक्षण के द्वारा लोकोक्तियों को लाकर रखता है । इससे भाषा में सजीवता आती है । कवि अपने भावों को भली प्रकार से अभिव्यक्त करता है । लोकोक्तियां भाषा में स्वाभाविकता,सजलता लाकर भाषा के प्रवाह को बनाए रखने में सहायक सिद्ध होती हैं । सन्तकवियों ने अनेक लोकोक्तियों को अपने काव्य में स्थान दिया है । कबीरदास ने एक स्थान पर लोकोक्ति का प्रयोग इस प्रकार किया है --

`कबीर गरब न कीजिये, इस जोबन की आस ।
टेसू फूले दिवस दोय, खंखर भए पलास ।।`

यहां दृष्टान्त की भांति लोकोक्ति का प्रयोग किया गया है । सन्तकवियों ने अनेक स्थानों पर इस प्रकार के प्रयोग किए हैं । `टेसू फूले दिवस दोय, खंखर भए पलास` इस लोकोक्ति को दृष्टान्त की तरह अपनी साखी में कबीर ने रखा है । इसी प्रकार दादूदयाल ने `मनहर` के अवसर में बोए गए बीजों की व्यर्थता की ओर ध्यान दिलाकर, लोकोक्ति से विषय-प्रतिपादन में सहायता ० ली है --

---

१ डा० पारसनाथ तिवारी : `कबीर ग्रन्थावली`,पृ०१४४ ।

'दादू माया मगहर खेत खर, सतगति कदे न होइ ।
जे बंचहि ते देवता, राम सरीखे सोइ ॥'[1]

कबीर ने प्रेमविरह के अंग में एक स्थान पर यह उपदेश दिया है कि संसार में जो आया है उसे चाहिए कि वह ईश्वर की भक्ति करे । इससे जीव को अलौकिक प्रेम का आनन्द प्राप्त होगा । जो ऐसा नहीं करता, उसका तो जीवन ही व्यर्थ है । ऐसे मनुष्य की तुलना वे सूने घर के अतिथि से करते हैं । इस लोकोक्ति के माध्यम से अत्यन्त प्रभावपूर्ण ढंग से वे अपनी बात इस प्रकार कहते हैं--

'कबीर प्रेम न चाखिया, चाखि न लीया साव ।
सूनं घर का पाहुणां, ज्यूँ आया त्यूँ जाव ॥'

मुहावरा

सूक्तियों तथा लोकोक्तियों के समान ही मुहावरों को भी काव्य-भाषा में महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है । मुहावरे अधिकतर आकार में छोटे होते हैं । मुहावरा वाक्यांश होकर वाक्य में प्रयुक्त होता है, इसमें विकार भी आ जाता है । यह भी बहुत व्यापक रूप से प्रयुक्त होता है । जनसाधारण रूप में मुहावरों का प्रचलन बहुत अधिक है । विभिन्न प्रान्तों में इनका स्वरूप भिन्न-भिन्न हो जाता है । चिन्तामणि में आचार्य शुक्ल मुहावरों के विषय में कहते हैं-- मुहावरे लाक्षणिक प्रयोग ही हैं, पर बंधे हुए । इनसे किसी भाषा की लाक्षणिक प्रवृत्ति के स्वरूप का पता चलता है ।

मुहावरों के प्रयोग से कवि की भावव्यंजना में तीव्रता आती है । काव्य-भाषा की व्यंजकता में वृद्धि होती है और भाषा के स्वाभाविक प्रवाह को बनाए रखने में सहायता मिलती है । मुहावरों से काव्य-भाषा अधिक मधुर तथा मार्मिक बन जाती है । सन्त कवियों ने भी इन मुहावरों का अनेक स्थानों पर प्रयोग किया है, कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं --

---

१ परशुराम चतुर्वेदी : 'दादूदयाल ग्रन्थावली', पृ०१३३ ।

गूंगे का गुड़ -- बिन चाखिया सेई साहु जाणनि जिउ गूंगे मिठिआई ।[1]

गुरु नानक कहते हैं कि परमात्म-रस का आस्वादन करने वाले ही उसके स्वाद को जानते हैं, परन्तु उस स्वाद का वर्णन करना उतना ही कठिन है, जितना कि गूंगे का मिठाई ।

सोनें संग सुहागा -- हरिजन हरि सौं ऐसें मिलिया जस सोनें संग सुहागा[2] ।

यहां कबीरदास जी ने सोनें संग सुहागा, इस मुहावरे का प्रयोग करके यह दिखलाया है कि भगवान और भक्त का भी ऐसा ही सुन्दर परम मिलन होता है । एक साखी में मानव जीवन की क्षणभंगुरता का वर्णन कबीर ने एक अत्यन्त साधारण मुहावरा पानी का बुलबुला होना, की सहायता से किया है --

पानी केरा बुदबुदा -- पानी केरा बुदबुदा, अस मानुस की जाति ।
देखत ही छिपि जाएगे, ज्यौं तारे परभाति ।।[3]

इस प्रकार हम देखते हैं कि मुहावरों के प्रयोग द्वारा अप्रस्तुतों की भाव-व्यंजना कराने में सफल होता है ।

इसप्रकार हम देखते हैं कि सन्त कवियों ने उस समय में प्रचलित जनभाषा में अपनी काव्य-रचनाएं की है। इन लोगों ने तत्सम, तद्भव, देशज और विदेशी आदि सभी प्रकार के शब्दों का प्रयोग किया है। सूक्तियों, लोकोक्तियों तथा मुहावरों के प्रयोग से इनकी भाषा की व्यंजना शक्ति और बढ़ गई है। सन्तों की भाषा चित्रात्मक, सहज स्वाभाविक, मार्मिक, लाक्षणिक एवं प्रसाद गुणयुक्त, इनकी भाषा में एक प्रकार की तीव्रता, सरलता है। सन्तों की भाषा कृत्रिमता से बहुत दूर है, कहीं भी इनकी भाषा निष्प्राण नहीं लगती। वस्तु-वर्णन को प्रभावपूर्ण बनाने में भाषा भी सहायक सिद्ध हुई है ।

१- डा० जयराम मिश्र : नानकवाणी : राग सोरठि, पृ०३६६

२- डा० पारस नाथ मिश्र : कबीर ग्रन्थावली : पद १६, पृ०११

३- डा० पारस नाथ मिश्र : कबीर ग्रन्थावली : सब साखी १६अंग, पृ०२००

सर्वत्र भावों के अनुरूप ही भाषा का प्रयोग किया गया है। सीधी सादी भाषा में अभिव्यक्ति की अद्भुत क्षमता है। सन्तों की भाषा पर मौलिकता की स्पष्ट छाप है। विभिन्न भाषाओं के शब्दों को अपनाने के कारण उनकी भाषा को एक अनोखा रूप प्राप्त हो गया है, जिसमें सन्तों के विचारों, भावनाओं को अभिव्यक्ति प्रदान करने की क्षमता विद्यमान है। जहां बाह्याचार, पाखंड आदि के प्रति घोर विरोध प्रकट किया गया है, वहां व्यंग्य से भरी हुई सशक्त भाषा का रूप देखने योग्य है। सन्तों की भाषा में एक विशेष प्रकार की शक्ति है, इस शक्ति का अजस्र स्रोत ग्रामीण समाज में विद्यमान है।सरल सुबोध जनपदीय भाषा सन्त-काव्य को इतनी अधिक जनप्रिय बनाने में सफल सिद्ध हुई है। सन्त कवियों का अपनी भाषा पर पूर्ण अधिकार था, भाषा से इन लोगों ने जो कहलाना चाहा, वह कहला लिया है । इसी विलक्षण-शक्ति सम्पन्न काव्य-भाषा के माध्यम से की गई सन्त कवियों की अप्रस्तुतयोजना अत्यन्त प्रभावपूर्ण तथा सुन्दर सफल एवं मार्मिक है। सुन्दर, सबोध, एवं व्यंजक उपमानों का प्रयोग करके वस्तु-वर्णन के प्रभाव की वृद्धि की गई है। सन्त कवियों की भाषा उनके सूक्ष्म भावों तथा विभिन्न विचारों की अभिव्यक्ति में तथा सन्तों के सदुपदेशों को जनसामान्य तक पहुंचाने में पूर्ण समर्थ है। आडम्बरहीन, क्लिष्ट शब्दों से रहित, जनसामान्य के लिए बोधगम्य के लिए सरल-स्वाभाविक भाषा ही किसी कवि के काव्य का प्राण है। सन्तकाव्य की भाषा इसी आदर्श पर सफल लोकप्रिय हुई है ।

--0--

अध्याय -- ६

-o-

सन्तकाव्य में प्रयुक्त उपमानों का काव्यशास्त्रीय अध्ययन

कवि अपने भावों की अभिव्यक्ति के लिए प्रकृति से प्रेरणा ग्रहण करता है । काव्य में अनुभूति की प्रधानता होती है । कवि की यह अनुभूति संवेदना समन्वित होती है । संवेदना अपने व्यापक अर्थ में प्रभावशीलता है । यह विश्व की समस्त जड़-चेतन वस्तुओं[१] में देखी जा सकती है और यही सर्जन की आंतरिक प्रेरणा -शक्ति मानी जाती है । संवेदना सुखात्मक और दुःखात्मक होती है, यह समस्त भावों को सम्मिलित किए रहती है । इन भावों को अभिव्यक्त करने के लिए वाणी का आधार लिया जाता है, वाणी का सम्बन्ध शब्द और अर्थ से होता है। अपने विचारों और भावों को अभिव्यक्त करने के लिए कवि मानव, मानवेतर तथा प्राकृतिक जगत् को आधार बनाता है ।

संस्कृत काव्याचार्यों ने अलंकारशास्त्र को बहुत अधिक महत्त्व प्रदान किया है । भामह,दण्डी,उद्भट,वामन, रुद्रट,रुय्यक तथा केशव मिश्र आदि सभी आचार्यों ने काव्यशास्त्र को अलंकार शास्त्र के रूप में ही लिया है । इस प्रकार हम देखते हैं कि काव्यशास्त्र अलंकारशास्त्र का पर्याय माना गया है । इसलिए अलंकारों के आधार पर ही अप्रस्तुतों का अध्ययन करना चाहिए । संस्कृत तथा हिन्दी के विभिन्न आचार्यों ने अलंकार शब्द का भिन्न-भिन्न अर्थ में प्रयोग किया है, यह जान लेना आवश्यक है ।

---

१ डा० रघुवंश : प्रकृति और काव्य ,पृ०५३ ।

वेदों में अलंकारशास्त्र का उल्लेख कहीं नहीं है । परन्तु अत्यन्त स्वाभाविक रूप में अलंकार अनेक स्थलों पर आए हैं । वहां पाण्डित्य-प्रदर्शन या काव्य-शोभा की वृद्धि के लिए आयासपूर्वक अलंकारों को भरा नहीं गया है, किन्तु स्वाभाविक रीति से उपमा, रूपक, अतिशयो अतिशयोक्ति,रूपकातिशयोक्ति आदि का सुन्दर प्रयोग किया गया है । दार्शनिक रहस्य की अभिव्यक्ति रूपकातिशयोक्ति अलंकार के द्वारा किस प्रकार की गई है, इसके लिए ऋग्वेद के `अस्यवामीय सूक्त` का एक अत्यन्त प्रसिद्ध मन्त्र द्रष्टव्य है[1] —

`द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते ।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्योऽभिचाकशीति ।।`

इसमें दो पक्षी जीवात्मा एवं परमात्मा के लिए , वृक्ष शरीर के लिए तथा पिप्पल कर्मफल के लिए उपमान बनकर आए हैं ।

वेदों में उपमा और रूपक अलंकारों का प्रयोग ही अधिक हुआ है । ऋग्वेद(१.२५.४) का एक मन्त्र द्रष्टव्य है —

`परा हि मे विमन्यवः पतन्ति वस्य इष्टये । वयो न वसतीरुप ।।`

अर्थात् जैसे चिड़ियां अपने घोंसलों की ओर दौड़ती हैं,उसी प्रकार हमारी क्रोध-शून्य चिन्ताएं भी धन प्राप्ति की ओर दौड़ रही हैं । यहां उपमालंकार है । इस सूक्त के पहले और तीसरे मन्त्रों में भी उपमा है । इसी प्रकार सामवेद(२.७.८),यजुर्वेद(३.६०) और अथर्ववेद (२०काण्ड) में भी उपमालंकार है[2] । पं० रामगोविन्द त्रिवेदी कहते हैं— `गीर्वाणी` (पृ०३१-३२) का यह कहना प्रायः ठीक ही है—` वेदभाषा उत्तम शैली की काव्य-रचना है । संस्कृत-ग्रन्थों में इससे उत्तम अलंकार कम मिलेंगे ।+ + + जो व्यक्ति काव्य -रचना, निरुक्त और अलंकार की विद्या से अनभिज्ञ है, वह वेदों के वास्तविक भाव को समझ नहीं सकता ।`[3] यास्क ने निरुक्त में `अलंकरिष्णु` शब्द का प्रयोग अलंकृत करने के शील व्यक्ति के अर्थ में किया है । छान्दोग्य उपनिषद् में भी इसी अर्थ में यह शब्द प्रयुक्त हुआ है । उपमा आदि

---

१ ऋग्वेद-संहिता,अष्टक २,मण्डल १,अध्याय३, सूक्त १६४, २० वां मन्त्र ।

२ पं० रामगोविन्द त्रिवेदी : `वैदिक साहित्य`,पृ०३६६ ।

३ वही वही ,पृ०३७०

अलंकारों के उदाहरण कठोपनिषद् में भी प्राप्त होते हैं ।

इसके पश्चात् संस्कृत आचार्यों में सर्वप्रथम भामह के मत का उल्लेख किया जा सकता है , वे कहते हैं :--

`सैषा सर्वैव वक्रोक्तिरनयार्थो विभाव्यते ।
यत्नोऽस्यां कविना कार्य: कोऽलंकारोऽनयाविना[1] ।।`

भामह के अनुसार अलंकार शब्द अर्थ की विचायक शब्द की उक्ति चातुरी है । उन्होंने वक्रोक्ति को बहुत अधिक महत्त्व प्रदान किया है । वक्रोक्ति क ही अर्थ का प्रकाशन कराती है, इससे अर्थ में रमणीयता आती है । अत: भामह के मत में कोई भी अलंकार वक्रोक्ति के बिना सम्भव नहीं है ।

आचार्य दण्डी काव्य के शोभाकारक धर्मों को अलंकार कहते हैं :--

`काव्यशोभाकरान् धर्मान् अलंकारान् प्रचक्षते[2] ।`

आचार्य वामन अलंकार को सौन्दर्य का प्रतीक मानते हुए कहते हैं कि अलंकार से युक्त होने पर ही काव्य ग्रहण योग्य होता है । इसप्रकार वामन का अलंकार शब्द से तात्पर्य काव्य के सौन्दर्य से है --

`काव्यंग्राह्यमलंकारात् सौन्दर्यमलंकार:[3] ।`

अलंकार के लिए आनन्दवर्धन कहते हैं :--

`अंगाश्रितास्त्वलंकारामंतव्या: कटकादिवत्`[4] ।

कटक आदि के समान जो अंगाश्रित हैं वे अलंकार हैं । आनन्दवर्धन ने वाणी की अनन्त शैलियों को अलंकार क हा है ।

राजशेखर के अनुसार अलंकारशास्त्र वेद का सातवां अंग है । वेदों के अर्थ को समझने के लिए अलंकारों का ज्ञान आवश्यक है, इसप्रकार अलंकार वेदार्थ के उपकारक हैं । वक्रोक्तिजीवित में आचार्य कुन्तक कहते हैं -- शब्द और

---

१ भामह : `काव्यालंकार` २।८५
२ दण्डी : `काव्यादर्श`--२।१
३ वामन : `काव्यालंकार सूत्र --१।१।१-२
४ आनन्दवर्धन : `ध्वन्यालोकवृत्ति --२।६

अर्थ अलंकार्य हैं, मर्मस्पर्शिनी, कवि-कौशल-समन्वित, वक्रता-मय उक्ति इन दोनों का अलंकार है । अलंकार के विषय में आचार्य मम्मट अपना मत इस प्रकार प्रकट करते हैं --

'उपकुर्वन्ति तं सन्तं येऽङ्गद्वारेण जातुचित् ।
हारादिवदलंकारास्तेऽनुप्रासोपमादयः ॥'

अर्थात् जैसे हार आदि आभूषण कण्ठ आदि अंग के सौन्दर्यवर्द्धक हुआ करते हैं, वैसे ही अनुप्रास और उपमा आदि अलंकार शब्द और अर्थरूप अंग के सौन्दर्यवर्द्धक हुआ करते हैं । यह एक दूसरी बात है कि जैसे कभी किसी सुन्दरी के कण्ठ का आभूषण उसके वास्तविक सौन्दर्य-- उसके सुन्दर व्यक्तित्व में चारचांद लगा है वैसे ही कभी किसी कविता के शब्द अथवा अर्थ का अलंकार उसके वास्तविक सौन्दर्य- उसके रसरूप आत्मतत्व के भी चमक उठने में हाथ बंटा है[1] ।

रुय्यक कहते हैं --

'अभिधानप्रकारविशेषा एवालंकाराः'[2] अभिधान विशेष ही अलंकार है । अर्थात् कवि की प्रतिभा से प्रादुर्भूत कथनविशेष ही अलंकार है ।

आचार्य जयदेव काव्य में अलंकारों के महत्त्व का प्रतिपादन करते हुए कहते हैं --

'अङ्गीकरोति यः काव्यं शब्दार्थावनलंकृती ।
असौ न मन्यते कस्मादनुष्णमनलंकृती ॥'[3]

अर्थात् उष्णता रहित अग्नि की कल्पना के समान अलंकारहीन काव्य की कल्पना हास्यास्पद है । अतः जयदेव के अनुसार काव्य में अलंकारों का होना अनिवार्य है ।

'साहित्यदर्पण' में विश्वनाथ कहते हैं -- जिस प्रकार आभूषण मनुष्य के शरीर को सुन्दर बनाते हैं, उसी प्रकार अलंकार भी काव्य के

---

1 डा० सत्यव्रत सिंह : 'काव्यप्रकाश' --८।६७, पृ०२८४
2 राजानक रुय्यक : 'अलंकारसर्वस्व' (भूमिका), पृ०६
3 जयदेव : 'चन्द्रालोक' -- ५।८

शब्द और अर्थ के सौन्दर्य की वृद्धि करते हुए रसों के प्रकाशन में सहायक सिद्ध होते हैं ।

पण्डितराज जगन्नाथ 'रसगंगाधर' में कहते हैं --

'काव्यात्मनो व्यंग्यस्यरमणीयता प्रयोजका अलंकाराः'[1]

इस प्रकार हम देखते हैं कि आचार्य जगन्नाथ अलंकारों को काव्यात्मा 'व्यंग्य' के रमणीयता प्रयोजक धर्म मानते हैं । संस्कृत आचार्यों के विचारों को देखने के पश्चात कुछ हिन्दी आचार्यों के अलंकार-विषयक विचारो पर दृष्टिपात करना आवश्यक है । इन आचार्यों में सबसे पहले आचार्य केशव ने अलंकारों के महत्त्व का प्रतिपादन किया है । केशवदास कहते हैं --

'जदपि सुजाति,सुलच्छनी,सुबरन, सरस,सुवृत्त ।
भूषन बिनु न बिराजई, कविता बनिता मित्त ।'[2]

सर्वगुणों से युक्त कामिनी भी भूषण के अभाव में जिस प्रकार सुन्दर नहीं लगती, उसी प्रकार अलंकारों के अभाव में काव्य शोभाहीन है । केशवदास ने अलंकारों को काव्य का आवश्यक तत्त्व माना है ।

आचार्य चिन्तामणि कहते हैं -- हारादि अलंकार जिस प्रकार मनुष्य के शरीर को अलंकृत करते हैं, उसी प्रकार उपमादि अलंकारों का कार्य है शब्द और अर्थ रूप काव्यशरीर को सुसज्जित करना --

शब्द अर्थ व तनु बनिये जीवित रस जिय जानि ।
अलंकार हारादि ते उपमादिक मन आनि ।।[3]

आगे चिन्तामणि कहते हैं --

अलंकार ज्यों पुरुष को हारादिक मन आनि ।
उपमादिक त्यों कवित अलंकार त्यों जानि ।।'[4]

---

१ पण्डितराज जगन्नाथ : 'रसगंगाधर' द्वितीयाननम्,पृ०१६४ ।
२ केशव : 'कविप्रिया', पृ० ५।१
३ चिन्तामणि : 'कविकुलकल्पतरु' -- १।६
४ वही : वही -- २।४

कवि भूषण अलंकार शब्द के स्थान पर `भूषन` शब्द का प्रयोग करते हुए उपमा को श्रेष्ठ अलंकार मानते हैं --[1]

`भूषन सब भूषननि में उपमहि उत्तम चाहि ।`

`रसरहस्य` में श्री कुलपति मिश्र अलंकारों को शब्दार्थ रूप शरीर का आभूषण मानते हैं ।

भिखारीदास अलंकार के लिए इस प्रकार अपने विचार व्यक्त करते हैं --

`अनुप्रास उपमादि जे, सब्दार्थालंकार ।
ऊपर ते भूषित करैं, जैसे तन को हार ।।`[2]

इनके अनुसार अलंकार शब्दार्थ को ऊपर से अलंकृत करते हैं । अलंकार के अभाव में भी काव्य रसयुक्त हो सकता है,क्योंकि सरस होने के लिए काव्य में अलंकारों का होना आवश्यक नहीं है । भिखारीदास के अनुसार अलंकार कहीं तो वाच्य रहते हैं और कहीं व्यंग्य --

`कहु बचन कहुं व्यंग्य में, परे अलंकृत जाय`[3] ।`

इसके पश्चात् अलंकारों के विषय में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के विचार इस प्रकार हैं --`भावों का उत्कर्ष दिखाने और वस्तुओं के रूप,गुण और क्रिया का अधिक तीव्र अनुभव कराने में कभी-कभी सहायक होने वाली युक्ति अलंकार है ।` अलंकार भावों की उत्कर्ष-व्यंजना में सहायक होते हैं तथा वस्तुओं के रूपानुभव, गुणानुभव और क्रियानुभव को और तीव्र करते हैं । कवि अपने वर्ण्य की प्रभाववृद्धि के लिए उसी के समान रूप,गुण और धर्म वाली वस्तुओं को लाकर रखता है, कभी-कभी वह अपनी बातों को घुमा-फिराकर कहता है । इस तरह के भिन्न-भिन्न विधान और कथन के ढंग अलंकार कहलाते हैं । आगे शुक्ल जी कहते हैं -- अलंकार चाहे अप्रस्तुतयोजना के रूप में हों, जैसे--उपमा,रूपक,इत्यादि में, चाहे वाक्यवक्रता

---

1. भूषण : `शिवराजभूषण`,दो० ३१
2. भिखारीदास : `काव्यनिर्णय`,पृ०५७
3. वही : वही पृ०५५

के रूप में, जैसे अप्रस्तुत-प्रशंसा , व्याजस्तुति इत्यादि में, वे प्रस्तुत भाव या भावना के उत्कर्ष साधन के लिए ही । 'मुख के वर्णन में जो कमल, चन्द्र आदि सामने रखे जाते हैं, वह इसीलिए जिनमें इनको वर्ण-रुचिरता, कोमलता, दीप्ति इत्यादि के योग से सौन्दर्य की भावना और बढ़े[१] ।'

'हिन्दी साहित्य कोश' में अलंकारों के विषय में कहा गया है -- अलंकार काव्य के बाह्य शोभाकारक धर्म हैं, इस धर्म का फल काव्य का अलंकरण या सजावट है, इसलिए इसका प्राधानतम अभिधान अलंकार है । वास्तव में अलंकार वाणी के विभूषण हैं । इनके द्वारा अभिव्यक्ति में स्पष्टता, भावों में प्रभविष्णुता और प्रेषणीयता तथा भाषा में सौन्दर्य का सम्पादन होता है । इसलिए काव्य में इनका महत्त्वपूर्ण स्थान है । काव्य में रमणीयता और चमत्कार का उद्रेक करने के हेतु अलंकारों की स्थिति आवश्यक है, अनिवार्य नहीं[२] ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि अलंकार काव्य के लिए आभूषण के समान हैं, ये शब्द और अर्थ के सौन्दर्य की वृद्धि करते हैं । अलंकार भावों एवं विचारों में स्पष्टता, रमणीयता, रसात्मकता लाकर उनके अभिव्यक्ति के साधन बनते हैं । सभी आचार्यों के विचारों का अध्ययन करने के पश्चात् पता चलता है कि कुछ आचार्य यह मानते हैं काव्यगत सम्पूर्ण सौन्दर्य ही अलंकार है । कुछ अन्य आचार्य यह कहते हैं कि रस, गुण आदि के प्रभावक एवं उत्कर्ष धर्म ही अलंकार है । कुछ आचार्यों के अनुसार अलंकार हारादि आभूषणों के समान हैं जो रस के उपकारक हैं ।

अलंकारों का प्रयोग स्वाभाविक रूप में ही करना चाहिए । बलपूर्वक लाये गए अलंकार आकर्षक नहीं लगते, बल्कि वे काव्य में भारस्वरूप प्रतीत होते हैं । शुक्ल जी अलंकारों को काव्य का साध्य नहीं मानते हैं, साधन मानते हैं । वे अलंकारों को काव्य के ही अन्दर से प्रकट होते हुए देखना चाहते हैं, ऊपर से बलपूर्वक लादा हुआ नहीं । इस प्रकार हम देखते हैं कि स्वाभाविक रूप में प्रयुक्त अलंकार काव्य की शोभावृद्धि में सहायक सिद्ध होते हैं । अलंकारों को काव्य में

---

१ आचार्य रामचन्द्र शुक्ल : 'रसमीमांसा', पृ०४८-४९ ।

२ हिन्दी साहित्य कोश, पृ०६०

महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है । 'जो लोग अलंकार से केवल परिगणित वक्रभंगिमा (उपमा,उत्प्रेक्षा आदि) ही समझते हैं वे अलंकार को अन्तरात्मा नहीं समझते । भारतीय आचार्यों ने अलंकार को वाग्भंगिमा या वाग्विकल्प कहा है और उसे अनंत समझा है । अलंकार कहने का एक काव्योचित अंदाज है, अभिप्रेत के प्रकाशन का एक सशक्त ढंग है ।'[1]

अलंकार और अलंकार्य

अलंकार और अलंकार्य को लेकर विद्वानों में मतभेद है, इसलिए इनके परस्पर भेद का प्रश्न विवादास्पद रहा है । कुछ आचार्यों ने रसवद् अलंकार के रूप में रसों को अलंकारों में अन्तर्भुक्त कर दिया है,किन्तु रस तो सदैव अलंकार्य है, इसलिए अलंकार नहीं हो सकते । रसवादियों तथा ध्वनिवादियों के मतानुसार शब्द और अर्थ अलंकार नहीं हो सकते । रसवादियों तथा ध्वनिवादियों के मतानुसार शब्द और अर्थ प्रत्यक्षत: तथा रस मूलत: अलंकार्य है, उपमा रूपकादि अलंकार हैं । अलंकार्य सौन्दर्य है, यह 'साहित्यदर्पण' में कहा गया है अलंकार उस सौन्दर्य की अभिवृद्धि के साधन हैं । काव्य में अलंकार्य वही होता है,जिसमें सौन्दर्य पर्यवसित होता है । सौन्दर्य की अभिवृद्धि के लिए प्रयुक्त दूसरे तत्व अलंकार कहलाते हैं । जो भावात्मक अर्थ कवि का मुख्य अभिव्यंग्य होता है, उसी को ध्वनि की संज्ञा प्राप्त होती है । वह रस या भाव ही अलंकार्य होता है और उसी के लिए अलंकारों का प्रयोग किया जाता है[2]। आचार्य कुन्तक 'वक्रोक्तिजीवित' में कहते हैं-- रस भाव वर्णन ही अलंकार्य है । यदि उसी को अलंकार कहें तो फिर स्वभाव-वर्णन से भिन्न कौन सी वस्तु है जो अलंकार्य है ? काव्य में अलंकार शरीरस्थानीय है । वह शरीर ही यदि अलंकार्य को अलंकृत करके अलंकार बन जाये, तो वह उस अलंकार से पृथक् दूसरे किस अलंकार्य को अलंकृत करेगा ? स्वभाव वर्णन अलंकार्य भी हो और अलंकार भी यह सर्वथा असम्भव कल्पना है । उन्होंने अलंकारभूत स्वभावोक्ति को अलंकार नहीं माना है[3]।

---

१ डा० राममूर्ति त्रिपाठी : 'भारतीय काव्यशास्त्र': नई व्याख्या',पृ०४२ ।

२ डा० रामकुमारी मिश्र : मध्ययुग के हिन्दी सूफी काव्य में अप्रस्तुतविधान',पृ०२७९

३ कुन्तक : वक्रोक्तिजीवित' १।६,२।११, २।१२

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल इस विषय में कहते हैं --'अलंकार-अलंकार्य का भेद मिट नहीं सकता । शब्द शक्ति के प्रसंग में हम दिखा आये हैं कि उक्ति चाहे कितनी ही कल्पनामयी हो उसकी तह में कोई 'प्रस्तुत अर्थ' अवश्य हो होना चाहिए(यही अलंकार्य है) । इस अर्थ से या तो किसी तथ्य की या भाव की व्यंजना होगी । इस अर्थ का पता लगाकर इस बात का निर्णय होगा कि व्यंजना ठीक हुई है या नहीं । अलंकारों के भीतर भी कोई न कोई अर्थ व्यंग्य रहता है, चाहे उसे गौण ही कहिए ।'[1]

डा० नगेन्द्र कहते हैं --' संस्कृत साहित्यशास्त्र में रस(भाव) वस्तु और अलंकारों तीनों का पृथक् स्थिति मानी गई है ।अलंकार, रस(भाव) का उपकार करता है अर्थात् उसको तीव्रतर करता है और वस्तु के चित्रणमें रमणीयता अथवा आकर्षण उत्पन्न करता है[2] । अतएव (भाव) और वस्तु दोनों अलंकार्य हुए और अलंकार उनके अलंकरण का साधन ।' डा० नगेन्द्र ने पौरस्त्य तथा पाश्चात्य, अर्वाचीन और प्राचीन चिन्तकों को आमने सामने रखते हुए यह स्थापना की है कि क्रोचे की भांति न तो भारतीय श साहित्य शास्त्री और न ही विदेश के साहित्य-मनीषी व्यावहारिक धरातल पर भी अलंकार और अलंकार्य के भेद को अस्वीकार करते हैं । भाव सर्जनात्मक अनुभूति के बीच से से रूपाकार दैविक विकास कोश भांति स्वत: स्फूर्त होता है और काव्य की यही समस्त प्रक्रिया है ।इस तथ्य की पुष्टि पुष्टि भारतीय साहित्य शास्त्री तात्त्विक धरातल पर करते हैं । जब आनन्दवर्धन अलंकार को ' अपृथग्यत्ननिर्वर्त्य' कहते हैं, जब कुन्तक 'अलंकृतस्येव काव्यत्वम् न तु काव्यस्यालंकार: 'कहते हैं तब वे भी अखिल दर्शन को मन में रखकर क्रोचे की तरह की बात करते हैं । हां, इतना अन्तर अवश्य है कि एक व्यावहारिक धरातल पर समझने-समझाने के लिए दोनों की पृथक् सत्ता कल्पित कर लेता है[3], दूसरा वहां भी दार्शनिक और तात्त्विक धरातल की ही बात करता है । '

अलंकार और रस

रस को काव्यशास्त्र के आचार्यों ने अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान प्रदान किया है । नाट्यशास्त्र में आचार्य वरुण भरत ने कहा है कि रस के

---

1 'चिन्तामणि' भाग २,पृ०१८६
2 रीतिकाव्य की भूमिका,पृ०८३
3 डा०राममूर्ति त्रिपाठी :'भारतीयकाव्य-शास्त्र,नई व्याख्या,पृ०९६०

बिना कोई अर्थ हो ही नहीं सकता । भरत रस के स्वरूप का विवेचन करते हुए कहते हैं --

`विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगाद्रसनिष्पत्ति:` अर्थात् विभाव, अनुभाव और व्यभिचारी भावों के संयोग से रस की निष्पत्ति होती है ।

आचार्य अभिनव गुप्त रस के विषय में कहते हैं -- रस का अर्थ है आनन्द और आनन्द विषयगत न होकर आत्मगत ही होता है ।इसके पश्चात् विश्वनाथ कविराज के रस विषयक मत का उल्लेख करना आवश्यक है । विश्वनाथ `साहित्यदर्पण` में कहते हैं --

`सत्वोद्रेकादखण्डस्वप्रकाशानन्दचिन्मय:
वेद्यान्तरस्पर्शशून्यो ब्रह्मास्वादसहोदर: ।
लोकोत्तरचमत्कारप्राण: कैश्चित्प्रमातृभि:
स्वाकारवदभिन्नत्वेनायमास्वाद्यते रस: ।` (३।२-३)

अर्थात् सत्वगुण का उद्रेक होने पर कुछ सहृदय सामाजिक जन ही अखण्ड, स्वप्रकाशानन्द, चिन्मय, सभी प्रकार के ज्ञान से विनिर्मुक्त, ब्रह्मास्वाद-सहोदर, अलौकिक चमत्कारपूर्ण रस का स्वस्वरूप से अभिन्न आस्वादन करते हैं । इसप्रकार विश्वनाथ के अनुसार रस का अनुभव वही कर सकते हैं, जो सहृदय हों, जिनके हृदय में सत्वगुण का उद्रेक हो गया हो । वह रस अखण्ड, स्वयंप्रकाश, आनन्दमय, चिन्मय, अलौकिक चमत्कारप्राण, ब्रह्मास्वाद-सहोदर तथा अपने रूप से अभिन्न है । विश्वनाथ के पश्चात् पंडितराज जगन्नाथ आते हैं । उन्होंने `रसगंगाधर` में रस के विषय में कहा है-- ` जब चेतना का आवरण भंग हो जाता है, उस अवस्था में रति इत्यादि जो स्थायीभाव होते हैं, वे ही रस कहलाते हैं । स्थायी भाव की आनन्दमयी चेतना ही पण्डितराज के मत में रस कहलाती है`।[१]

रस और अलंकार का अत्यन्त घनिष्ठ सम्बन्ध है । रसानुभूति में अलंकार सहायक होते हैं । इसके लिए यह आवश्यक है कि औचित्य का ध्यान रखते हुए अत्यन्त स्वाभाविक रूप में सतर्कतापूर्वक अलंकारों का प्रयोग किया जाए । कवि

---

१ डा० शान्तिस्वरूप गुप्त : `साहित्यिक निबन्ध : रस का स्वरूप`, पृ०४६ ।

अलंकारों की सहायता से अपने भावों और विचारों को व्यक्त करते हुए बिम्बग्रहण कराता है, इस बिम्ब ग्रहण से पाठकों के हृदय की भावनाएं जाग उठती हैं और वे काव्यरस का आस्वादन करने लगते हैं। कवि अपनी वाणी का आश्रय लेकर बिम्ब ग्रहण कराता है, उसकी वाणी में अलंकारों को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। कुछ विद्वानों ने रस को काव्यात्मा माना है और अलंकारों को काव्य-शरीर की शोभा, इस प्रकार इनके अनुसार अलंकार साधन है और रस साध्य। साध्य तक पहुंचने में साधन की आवश्यकता पड़ती ही है। अलंकार रसों का उद्रेक करने, इनमें उत्कर्ष लाने में सहायक होते हैं। डा० नगेन्द्र कहते हैं -- रसानुभूति में अलंकार का क्या योग है, इसका परिमाण करने के लिए हमें यह देखना चाहिए कि अलंकार किस प्रकार हमारी वृत्तियों को अन्वित करने में सहायक होता है। वैसे तो सभी अलंकारों का मूल मुलाधार अतिशय है, जो हमारी वृत्तियों को उद्दीप्त करता हुआ बाद में उन्हें पूर्ण अन्विति के लिए तैयार कर देता है। परन्तु जैसा मैंने अन्यत्र कहा है व्यवहार-तल पर भी अलंकारों के छः स्पष्ट आधार हैं,जो अतिशयमूलक होते हुए भी एक-दूसरे से भिन्न और अपने में स्वतन्त्र हैं-- साधर्म्य,अतिशय, वैषम्य, औचित्य, वक्रता और चमत्कार। साधर्म्यमूलक अलंकार द्वारा मुख्यतः हम अपने कथन को स्पष्ट करते हुए श्रोता की मनोवृत्तियों को अन्वित करते हैं -- उदाहरण के लिए यदि हम किसी सुन्दरी के मुख को चन्द्रमा की उपमा देते हैं तो वास्तव में मुख को देखकर हमारे मन में जो विशिष्ट भाव उठता है उसका हम एक प्रसिद्ध उपमान की सहायता लेकर साधारणीकरण करते हैं। चन्द्रमा एक प्रसिद्ध सौन्दर्य प्रतीक है। उसके दर्शन से मन में जैसा भाव उत्पन्न होता है, उसे हमारे अतिरिक्त अन्य सहृदय व्यक्ति भी पूरी तरह से जानते हैं। अतएव हम किसी सुन्दर मुख को चन्द्रमा के समान कहकर अपनी उद्दीप्त भावना को श्रोताओं के हृदय में बैठाते हैं। इस प्रकार हमारी उक्ति के प्रभाव को पूर्णतः ग्रहण करके श्रोता की वृत्तियां प्रसन्न होकर अन्विति के लिए तैयार हो जाती है।[1] अतः हम कह सकते हैं कि

---

1 'रीतिकाव्य की भूमिका',पृ० ८० ।

रसानुभूति में अलंकार विशेष रूप से सहायक सिद्ध होते हैं, अलंकार और रस में अत्यन्त घनिष्ठ सम्बन्ध है ।

अलंकार और ध्वनि

ध्वनि को काव्यात्मा घोषित करते हुए आचार्य आनन्दवर्धन उसके स्वरूप का विवेचन इन शब्दों में करते हैं --

`यत्रार्थ: शब्दो वा तमर्थमुपसर्जनीकृत स्वार्थौ
व्यक्त: काव्यविशेष: स ध्वनिरिति सूरिभि: कथित: ।`[1]

अर्थात् जहां पर अर्थ अथवा शब्द अपने अर्थ को छोड़कर उस व्यंग्यार्थ की अभिव्यक्ति करते हैं, वह काव्यविशेष विद्वानों के द्वारा `ध्वनि` ऐसा कहा गया है । इस व्यंग्यार्थ या ध्वन्यार्थ के द्वारा कवि अपने काव्य के भाव-सौन्दर्य की वृद्धि करता है । ध्वनि के दो भेद किए जाते हैं -- (१) संलक्ष्यक्रमव्यंग्यध्वनि, (२) असंलक्ष्यक्रम-व्यंग्यध्वनि । संलक्ष्यक्रमव्यंग्यध्वनि दो प्रकार की होती है -- (१)शब्दशक्तिउद्भव और (२) अर्थशक्तिउद्भव । इन दोनों में ही वस्तुध्वनि तथा अलंकारध्वनि होती है । व्यंजक स्वत: संभवी, कवि-प्रौढोक्ति और कविनिबद्धमात्र की प्रौढोक्ति के रूप में तीन प्रकार के होते हैं और व्यंग्य वस्तु रूप में या अलंकार रूपमें होते हैं । इसके भी वस्तु से वस्तु, वस्तु से अलंकार, अलंकार से वस्तु और अलंकार से अलंकारके भेद से चार प्रकार होते हैं[2] । ध्वनि के विभिन्न भेदों के आधार पर भी यह कहा जा सकता है कि ध्वनि और अलंकार में भी निकट का सम्बन्ध है ।

कुछ अलंकार ऐसे हैं, जिनसे व्यंग्यार्थ (प्रतीयमान अर्थ) की प्रतीति होती रहती है । यथा, समासोक्ति, विशेषोक्ति, पर्यायोक्ति, व अपह्नुति आदि । अत: ऐसे अलंकार ध्वनि के सहायक, पोषक या अंग होते हैं किन्तु सभी अलंकारों से व्यंग्यार्थ की प्राप्ति नहीं होती । वे अलंकरण मात्र होते हैं[3] ।

---

१ आनन्दवर्धन : `ध्वन्यालोक १३

२ पं० रामदहिन मिश्र : `काव्य में अप्रस्तुतयोजना`, पृ०८३, ८४ ।

३ डा० नगेन्द्र : `हिन्दी वक्रोक्तिजीवित` (१९५५), पृ०१६१-१६६ ।

अलंकार और प्रतीक

अपने भावों की सफल अभिव्यक्ति के लिए मनुष्य प्रतीकों की सहायता लेता है । कवियों के द्वारा सदैव ये प्रतीक काव्य में प्रयुक्त होते रहे हैं । 'प्रतीक' शब्द का सामान्य अर्थ है चिह्न, अवयव, अंग, पता, प्रतिमा, प्रतिरूप आदि । संस्कृत काव्यशास्त्र में प्रतीक के लिए 'उपलक्षण' शब्द प्रयुक्त हुआ है । विद्वानों ने विभिन्न प्रकार से प्रतीकों का विवेचन किया है। जैसा कि पहले संकेत किया गया है, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल यह मानते हैं --''किसी देवता का प्रतीक सामने आने पर जिस प्रकार उसके स्वरूप और उसकी विभूति की भावना झट मन में आ जाती है, उसी प्रकार काव्य में आई हुई कुछ वस्तुएं विशेष मनो-विकारों या भावनाओं को जाग्रत कर देती है । जैसे 'कमल' माधुर्यपूर्ण कोमल सौन्दर्य की भावना जाग्रत करता है । इसी प्रकार के कुछ अन्य उदाहरण भी उन्होंने दिए हैं ।

श्री लक्ष्मीनारायण 'सुधांशु' कहते हैं --'हमारे काव्य में प्रतीक प्राय: अलंकार प्रणाली के भीतर उपमान के रूप में प्रयुक्त किए गए हैं, उन्होंने प्रतीक और उपमान का अन्तर करते हुए कहा है कि प्रतीक और उपमान में सबसे बड़ा अन्तर यही है कि प्रतीक के लिए सादृश्य के आधार की आवश्यकता नहीं, केवल उसमें भावोद्बोधन की शक्ति रहनी चाहिए, पर उपमान में सादृश्य के आधार का रहना आवश्यक है[1] ।

प्रतीक और उपमान में कोई विभाजन -रेखा खींचना असम्भव है । परम्परा से चले आते हुए बहु उपमानों को प्रतीक की संज्ञा दी जा सकती है । प्रतीकों का प्रयोग प्रत्येक युग की कविता में प्राप्त होता है । काव्य में इसके प्रयोग से अर्थबोध में न तो कोई कठिनाई होती है और न काव्यानुभूति में किसी प्रकार की बाधा ही । प्रतीक मनोगत भावों और विचारों के व्यंजक होते हैं[2] ।

---

१ 'काव्य में अभिव्यंजनावाद', पृ०१२६-१२७ ।

२ विद्याधर : 'जायसी-साहित्य में अप्रस्तुतयोजना', पृ०२५३ ।

आचार्य शुक्ल यह मानते हैं कि प्रतीक और अलंकार में अन्तर है, क्योंकि अलंकार में उपमान का आधार सादृश्य या साधर्म्य माना गया है, परन्तु प्रतीक में भावना जाग्रत करने की शक्ति होनी चाहिए। कुछ उपमान प्रतीक भी बन जाते हैं और प्रतीक-रूप में वह काव्य को और अधिक प्रभावशाली बना देते हैं। डा० शांतिस्वरूप गुप्त कहते हैं -- अप्रस्तुत उपमानों के द्वारा प्रस्तुत अर्थ को अधिक भावपूर्ण बनाने के लिए काव्य में अलंकारों का प्रयोग किया जाता है। इसी प्रकार 'प्रतीक' का प्रयोग भी अप्रस्तुत को अधिक भाव-व्यंजक एवं स्पष्ट करने के लिए ही किया जाता है।[1]

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि प्रतीक और अलंकार दोनों में अन्तर है, यद्यपि कहीं-कहीं इनमें इतना साम्य हो जाता है कि इनके भेदीकरण में भ्रान्ति हो जाती है। साहित्य में प्रतीकों को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है, साहित्यकार इनके द्वारा भावाभिव्यक्ति को सबल बनाता है तथा सौन्दर्य-चित्रण करता है। प्रतीकों के द्वारा कवि रहस्यमयी भावों को अत्यन्त सरलतापूर्वक व्यक्त कर देता है। प्रतीकों के माध्यम से अत्यन्त सुगमता पूर्वक थोड़े से शब्दों द्वारा भावों एवं विचारों को मूर्त रूप प्रदान किया जा सकता है।

अप्रस्तुतयोजना में अलंकारों की मूल स्थिति और उनका महत्व

डा० रामदहिन मिश्र कहते हैं -- अप्रस्तुतयोजना का रूप आलंकारिक होता है। सादृश्यमूलक अलंकारों में साम्य के लिए अप्रस्तुतों की योजना की जाती है। अप्रस्तुतयोजना में अलंकारों को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। विभिन्न अलंकारों के द्वारा किसी वस्तु का बोध कराया जाता है। काव्य में बिम्ब की योजना अलंकार करते हैं। डा० नगेन्द्र कहते हैं--'बिम्ब की कल्पना कवि भाव या विचार,कल्पना और अनुभूति के माध्यम से करता है। कल्पना की सृष्टि होने के कारण बिम्ब का सम्बन्ध अलंकार, ध्वनि, वक्रता के साथ घनिष्ठ

---

1 'साहित्य निबन्ध', प्रतीक विधान, पृ०११३,११६।

है और रीति के साथ कम । अलंकार-विधान में सादृश्यमूलक अलंकार प्राय: बिम्बात्मक होते हैं, जिनमें सादृश्य प्रतीयमान रहता है उनमें बिम्ब की स्थिति और भी अधिक निश्चित रहती है ।[1] अत: बिम्ब और अलंकारों का घनिष्ठ सम्बन्ध है । काव्याभिव्यक्ति में यह बिम्ब-विधान केवल कोरी चमत्कारिता का ही घोतन नहीं करता है बल्कि क्रिया साम्य, गुण साम्य, प्रभाव साम्य, चित्र साम्य, रूप साम्य का अभिव्यंजनात्मक प्रक्रिया द्वारा रसानुभूति भी कराता है । रसानुभूति की इस स्थिति की अभिव्यंजना उपमेय और उपमान में साधर्म्यगत अलंकारों की मूल अन्तश्चेतना, वाच्य साधर्म्य,प्रतीयमान साधर्म्य, तुल्य साधर्म्य, अभेद साधर्म्य, विशेषण वैचित्र्यगत साधर्म्य,विरोधात्मक साधर्म्य, शृंखलामूलक साधर्म्य, विशेषण विशेष्य वैचित्र्यगत साधर्म्य, तर्क काव्य, लोकन्यायमूलक साधर्म्य एवं गूढार्थ प्रतीतिमूलक साधर्म्य के द्वारा होती है ।[2] भामह अलंकार को काव्य का प्राणतत्व मानते हुए कहते हैं -- सुन्दर होते हुए भी आभूषणहीन नारी का मुख जिस प्रकार आभाहीन लगता है उसी प्रकार अलंकारविहीन वाणी आकर्षणहीन है । वाणी की सौन्दर्यवृद्धि के लिए अलंकारों का विशेष प्रयोजन है । आचार्य दण्डी अलंकारों को काव्य का सर्वस्व मानकर कहते हैं कि काव्य के शोभाकारक धर्म अलंकार हैं । जयदेव भी अलंकारों को आवश्यक मानते हैं उनके अनुसार अलंकारहीन काव्य की तो कल्पना ही नहीं की जा सकती है । आचार्य वामन भी अलंकारों के महत्व को स्वीकार करते हुए उन्हें सौन्दर्य का प्रतीक मानते हैं । कवि अपने वर्ण्य के रूप गुण को अधिक आकर्षक दिखाने के लिए अलंकारों का प्रयोग करता है । अलंकार कवि के भावों को स्पष्टरूप प्रदान करने में सहायक होते हैं । अलंकारों को चमत्कारपूर्ण उक्ति या कथन की ललित भंगिमा कहा गया है । इस चमत्कारपूर्ण उक्ति के द्वारा कवि पाठकों को सहज ही अपने काव्य की ओर आकर्षित कर लेता है । अत: अलंकार काव्य के लिए अत्यन्त आवश्यक हैं,इसीलिए विद्वानों ने अलंकारों को काव्य का प्राणतत्व कहा है । अलंकारों की इस साधर्म्यगत मूल अन्तश्चेतना का सम्बन्ध सादृश्य पर निर्भर करता है ।

---

१ `काव्यबिम्ब`,पृ०३६ ।

२ विद्याधर : `जायसी-साहित्य में अप्रस्तुतयोजना`, पृ०२५४ ।

साहृश्य का मूल रहस्य

अप्रस्तुतयोजना में साहृश्य का बहुत अधिक महत्त्व है । कवि उपमेय या प्रस्तुत के प्रभावबृद्धि के लिए उसी के समान रूप, गुण वाली वस्तु अर्थात् उपमान या अप्रस्तुत को अपने काव्य में स्थान देता है । अत: अप्रस्तुतयोजना के लिए सादृश्य का होना आवश्यक है । अधिकतर अलंकार सादृश्यमूलक होते हैं । यह सादृश्य समानता, विरोध, अतिरेक तथा एकरूपता को अभिव्यक्ति करता है । विभिन्न वस्तुओं के मूल में समान तत्त्व रहता है,इसलिए उनमें एक सादृश्य दिखाई देता है । इन तत्त्वों की दृष्टि से समान होने के कारण ही कुछ वस्तुएं एक-दूसरे के सदृश होता हैं । न्यायवैशेषिक दर्शन में जिन सात पदार्थों को माना गया है, वे इस प्रकार हैं --

'द्रव्यं गुणस्तथा कर्म सामान्यं सविशेषकम् ।
समवायस्तथाऽभाव: पदार्था: सप्त कीर्तिता:।।'[1]

इस प्रकार सात पदार्थ कहे गए हैं -- द्रव्य,गुण ,कर्म, सामान्य,विशेष, समवाय तथा अभाव । सामान्य तथा विशेष ये दोनों तत्त्व सादृश्य में रहते हैं । डा० ब्रह्मानन्द शर्मा कहते हैं --'सामान्य तत्त्व का दूसरा नाम साधर्म्य है तथा विशेष तत्त्व का दूसरा नाम वैधर्म्य है । अत: साधर्म्य तथा वैधर्म्य इन दोनों के मिलने से सादृश्य का जन्म होता है[2] ।'आचार्य मम्मट कहते हैं कि द्रव्य,गुण,क्रिया और जाति पदार्थों के स्वरूप या धर्म विशेष हैं । इनके आधार पर विश्वनाथ सादृश्य के चार प्रकार जाति,द्रव्य,गुण,क्रिया मानते हुए कहते हैं --

'श्लेषो मुख्यो जातौ गुणद्रव्यक्रियासु च'[3] ।

चारुत्व, चमत्कार और रसार्द्रता सादृश्य के आवश्यक तत्त्व हैं । सादृश्य की सार्थकता इन तत्त्वों पर निर्भर करती है । सादृश्य के स्वरूप

---

१ श्री विश्वनाथपंचानन भट्टाचार्य : 'न्यायसिद्धान्तमुक्तावली',पृ०७
२ 'संस्कृत साहित्य में सादृश्यमूलक अलंकारों का विकास',पृ०२
३ विश्वनाथ : 'साहित्यदर्पण' -- २।४

के विषय में डा० शर्मा कहते हैं --"जहां सादृश्य विचारों अथवा भावों के क्षेत्र में होता है, वहां सादृश्य का स्वरूप चेतना होता है । सादृश्य का अचेतन रूप केवल पदार्थों के भौतिक स्वरूप में दिखाई देता है । प्रकृति में विद्यमान सादृश्य के कतिपय रूप इसी श्रेणी के अन्तर्गत आते हैं । सादृश्य सम्बन्धी चेतन तथा अचेतन का मिश्रित स्वरूप सप्राण वस्तुओं में दिखाई देता है । सप्राण वस्तुओं में उनके भौतिक अंशों को लेकर जो सादृश्य होता है वह सादृश्य का अचेतन रूप होता है तथा उन भौतिक अंशों से अभिव्यक्त चेतनाओं में साम्य होने पर सादृश्य का चेतन रूप होता है । उदाहरणार्थ-- कान्ता, बालक आदि की विभिन्न शारीरिक अवयवों में कोमलता आदि की दृष्टि से जो सादृश्य है वह सादृश्य का अचेतन रूप है । इसके अतिरिक्त इन प्राणियों के विभिन्न अंगों से अभिव्यक्त होने वाले प्रसन्नता एवं क्रोधादिक भावों में भी साम्य सम्भव है । यह साम्य चेतनता की श्रेणी में आता है । इस प्रकार सप्राण वस्तुओं में सादृश्य के चेतन एवं अचेतन दोनों रूप संभव हैं ।

श्री रामदहिन मिश्र कहते हैं-- सादृश्य दो प्रकार का होता है । एक सदृश शब्दों या सदृश वाक्यों का होता है । यह सादृश्य केवल चमत्कार उत्पन्न कर सकता है । दूसरा स्वरूप का सादृश्य होता है, यह भी काव्योपयुक्त नहीं कहा जा सकता । एक तीसरे प्रकार का साम्य साधर्म्य का अर्थात् गुण या क्रिया की समानता का माना गया है । रूप या आकार की समानता और साधर्म्य की समानता के अन्तरंग में एक प्रभाव-साम्य भी छिपा रहता है । प्रभावसाम्य पर ध्यान देकर ही नयी कविता का महत्व बढ़ जाता है[1] ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि सभी वस्तुओं के मूल में समान तत्व विद्यमान हैं , इसलिए विभिन्न वस्तुओं में सादृश्य दिखाई देता है । सादृश्य में सामान्य तथा विशेष के तत्व होते हैं । सामान्य पदार्थ की कल्पना भी इस बात का प्रमाण है कि वस्तुओं के मूल में सादृश्य विद्यमान है । सामान्य पदार्थ एक प्रकार का साधारण धर्म है । साधारण धर्म जिस प्रकार अनेक वस्तुओं में विद्यमान रहकर उन वस्तुओं के सादृश्य का आधार होता है, उसी प्रकार सामान्य

---

१ 'काव्य में अप्रस्तुतयोजना', पृ०१७ ।

पदार्थ अनेक वस्तुओं में विद्यमान रहकर उन वस्तुओं के सादृश्य का आधार होता है । उदाहरणार्थ गोत्व को लें । यह गोत्व जाति कतिपय अवयवों के रूप में समस्त गौओं में विद्यमान रहता है तथा उन गौओं के सादृश्य का कारण होती है ।

सादृश्यमूलक अलंकार और अप्रस्तुतयोजना

अधिकतर अलंकार सादृश्यमूलक होते हैं । इनमें कवि सादृश्य के बल पर अलंकारों की योजना करता है । अप्रस्तुतयोजना में सादृश्य का होना आवश्यक है, कवि प्रस्तुत के समान रूप गुण वाली वस्तु को या अप्रस्तुत को लाकर प्रस्तुत का उत्कर्ष दिखाता है । सादृश्य का अप्रस्तुतों की योजना करने में विशेष महत्व है । अलंकारों के सौन्दर्य का मूल सादृ य में है । अलंकार साहित्य में सादृश्य-मूलक अलंकारों को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है । `वस्तुत: सम्पूर्ण भारतीय साहित्य और कला की दृष्टि अपने सौन्दर्यबोध के लिए सादृश्य का आश्रय ग्रहण करती है । भारतीय सौन्दर्य का मूलाधार सादृश्य रहा है ।`[१] रस गंगाधर में पण्डितराज जगन्नाथ कहते हैं कि सादृश्य के लिए यह आवश्यक है कि वह वाक्यार्थोपस्कारक हो अर्थात् सादृश्य वाक्य के अर्थ को सुशोभित करने वाला हो । सादृश्य में सौन्दर्य का होना भी आवश्यक है, इससे सहृदय पाठकों को विशेष प्रकार का आनन्द प्राप्त होता है । सादृश्य के द्वारा भाव की वृद्धि होती है । सादृश्य ही यदि प्रभावविस्तारक नहीं है तो अप्रस्तुत प्राणहीन से लगते हैं,इसलिए अप्रस्तुतयोजना में प्रभावसाम्य की उपेक्षा नहीं करनी चाहिए । आचार्य रामचन्द्र शुक्ल कहते हैं सादृश्य की योजना दो दृष्टियों से की जाती है -- स्वरूप-बोध के लिए और भावतीव्र करने के लिए । कवि लोग सदृश्य वस्तुएं भाव तीव्र करने के लिए ही अधिकतर लाया करते हैं । पर बाह्य कारणों से अगोचर तथ्यों के स्पष्टीकरण के लिए जहां सादृश्य का आश्रय लिया जाता है, वहां कवि का लक्ष्य स्वरूप-बोध भी रहता है । इस प्रकार हम देखते हैं कि सादृश्य और अप्रस्तुतयोजना का अत्यन्त घनिष्ठ सम्बन्ध है । कल्पनाशील कवि अपनी प्रतिभा के द्वारा सादृश्य के बल पर सुन्दर,भावपूर्ण अप्रस्तुतयोजना करता है । केवल अनुभवी कवि पुराने उपमानों के अतिरिक्त नवीन उपमानों को भी अपनी

---

१ विद्याधर : `बाबरी-साहित्य में अप्रस्तुतयोजना`,पृ०२५८ ।

रचनाओं में स्थान देता है, ऐसे उपमान कवि के भावों को अभिव्यक्त करने में सहायक सिद्ध होते हैं ।

सादृश्यमूलक अलंकारों में रूढ़ियां

कवि अपनी प्रतिभा के द्वारा नवीन,मौलिक उपमानों को काव्य में स्थान देता है,परन्तु वह परम्परा से चले आते हुए रूढ़ उपमानों की उपेक्षा नहीं कर सकता है । इन रूढ़ उपमानों को सभी कवि अपनाते हैं । कुछ विशेष वस्तुओं के लिए उपमानों की रूढ़ियां स्थापित हो जाती हैं,इन रूढ़ उपमानों का कवियों में प्रचार होने लगता है,अत: कवि अपनी रचनाओं में इनका प्रयोग करने लगते हैं । उदाहरण के लिए कुछ ऐसे रूढ़ उपमान लिए जा सकते हैं-- मनुष्य जन्म या जीवन के लिए हीरा,रतन,नग,सपना आदि उपमानों का प्रयोग किया जाता है। इसी प्रकार माया के लिए ठगिनी,डाइन,पापिनी,विषबेली तथा संसार के लिए दु:ख दरिया, विषवन, भवसागर, मेला, सूवा, गांव, बाजी आदि उपमान आए हैं । जीव के लिए मछली,हंस,पक्षी,पपीहा, परदेसी,विरहिनी आदि उपमान प्रयुक्त हुए हैं । यद सन्त कवियों ने भी मौलिक उपमानों के साथ ही इन रूढ़ उपमानों का प्रयोग किया है । सन्त कवियों ने जनसाधारण को सदुपदेश देने के लिए अत्यन्त प्रसिद्ध उपमानों को चुनकर रखा है । व्यावहारिक जीवन के लिए गए ये उपमान सन्तों के भावों तथा विचारों को व्यक्त करने में पूर्ण सफल हुए हैं ।

अप्रस्तुतयोजना और कविप्रसिद्धियां

अप्रस्तुतयोजना में कविप्रसिद्धियों का प्रयोग कवियों ने उपमान रूप में अनेक स्थलों पर किया है । 'काव्यमीमांसा' नामक ग्रन्थ में राजशेखर कवि-समय की परिभाषा इस प्रकार देते हैं --

'अशास्त्रीयमलौकिकं च परंपरायातं यमर्थमुपनिबध्नन्ति कवयः सकविसमयः'[१] ।

अर्थात् अशास्त्रीय, अलौकिक तथा केवल परम्परा में प्रचलित जिस अर्थ का कवि-लोग वर्णन करते हैं,वह कवि-समय है । अत: कवि-समय शास्त्रबहिर्भूत

---

१ 'काव्यमीमांसा',पृ०१९८ ।

लोक में अज्ञात तथा परम्परा में प्रचलित होते हैं, कवि सम्प्रदाय में बहुत अधिक प्रचलित होने के कारण ये कवि समय सर्वमान्य हो गए हैं । राजशेखर कवि-समयों के लिए कहते हैं-- प्राचीनकाल के पंडितों ने विभिन्न वेदों तथा शास्त्रों का अध्ययन करके बहुत से देशों तथा द्वीपों को देखकर जिन बातों का ज्ञान प्राप्त किया, उन्हें काव्यों में स्थान दिया । वे बातें यद्यपि आज उसी रूप में नहीं मिलती हैं फिर भी उन बातों का वैसा ही वर्णन करना कवि-समय है । इन कवि-समयों को अस्वीकार नहीं करना चाहिए । `हिन्दी साहित्य कोश` में कवि-समय की परिभाषा इस प्रकार दी गई है-- कवि समाज में प्राचीन परम्परा से मानी जाती हुई बातें और परिपाटियां।इ काव्य में जिन कवि प्रसिद्धियों का उल्लेख किया जाता है वे निम्न हैं --

हंस का नीर-क्षीर विवेक, चकोर का अंगार भक्षण, रात्रि में चकवा-चकवी का वियोग, यश और हास्य का श्वेत रंग, पाप का कृष्ण वर्ण, क्रोध और प्रेम की रक्तता, चन्द्रमा का शश लांछन और कामदेव का मकरकेतन नाम, शिव के भाल पर चन्द्रमा की स्थिति, विष्णु का क्षीरशयन, कोल, कमठ और शेष का पृथ्वीधारण इत्यादि । इन कवि-प्रसिद्धियों का प्रयोग साहित्यकार सदा से करते आ रहे हैं । सन्तकाव्य में भी हंस,चकोर तथा चकवा-चकवी आदि कविप्रसिद्धियों का प्रयोग अनेक स्थलों पर हुआ है ।

अप्रस्तुतों के साथ प्रयुक्त वाचक और उनका महत्व

अप्रस्तुतयोजना में वाचकों को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है । अधिकतर सादृश्यमूलक अलंकारों में वाचकों का आश्रय लिया जाता है । वैदिक तथा साहित्य में भी इन वाचकों का प्रयोग मिलता है । संस्कृत के `इव` वाचक शब्द का प्रयोग हिन्दी साहित्य में भी किया जाता है । कुछ अलंकारों में वाचकों की अनिवार्य सत्ता मानी गई है,जैसे --पूर्णोपमा । उत्प्रेक्षा और उपमा में तो सबसे अधिक वाचकों का प्रयोग किया जाता है । सन्त कवियों ने भी इन वाचकों का प्रयोग किया है । सन्तकाव्य में प्रयुक्त कुछ वाचक इस प्रकार हैं-- समान,सी,से, सौं, सो , सरिस, सदृश,जैसें, जैसे, ज्यूं, ज्यूं, ज्यों, जैसे, जैसो, यथा,जस,जैसा, जैसी,जैसा, जैसे, सम, जैसे, त्यों, ज्यों, मानो, मानों, सदा , मता , यत आदि।

अप्रस्तुतयोजना और उपमा

हिन्दी साहित्य कोश में कहा गया है-- उपमा का शब्दार्थ है सादृश्य, समानता तथा तुल्यता आदि । अलंकार के सौन्दर्य का मूल सादृश्य में है और यही कारण है कि सादृश्यमूलक अलंकार ही प्रधान हैं । उपमा इन समस्त सादृश्यमूलक अलंकारों का भी प्राण है, क्योंकि स्वत: सादृश्य है । उपमा की श्रेष्ठता और महत्व के सम्बन्ध में प्रारम्भ से अन्त तक आचार्य सहमत रहे हैं । यही कारण है कि प्राय: सभी आचार्यों ने अर्थालंकारों में उपमा को सर्वप्रथम स्वीकार किया है[1] । `चित्रमीमांसा` में अप्पय दीक्षित अत्यन्त सुन्दर शब्दों में उपमा के महत्व का प्रतिपादन करते हुए कहते हैं--

`उपमैका शैलूषी संप्राप्ता चित्रभूमिकाभेदात् ।
रंजयति काव्यरंगे नृत्यन्ती तद्विदां चेत: ।।`[2]

काव्यरूपी रंगशाला में यह उपमारूपी नटी चित्रभूमिका के भेद से अनेक रंग रूपों में आकर नाचती हुई काव्यमर्मज्ञों का मनोरंजन करती है । अप्पय दीक्षित बाईस अलंकारों को उपमा के अन्तर्गत रखते हुए कहते हैं कि उपमा ही विभिन्न भूमिकाभेद से अनेक अलंकारों का रूप धारण करती है ।

`चन्द्रमा के समान मुख है` यह हुई उपमा । यही भणिति-भंगिमाओं के भेद से अनेक अलंकारों का रूप धारण कर लेती है । जैसे--चन्द्रमा के समान मुख है और मुख के समान-उपमेयोपमा । मुख के जैसा मुख है--अनन्वय । मुख के समान चन्द्रमा है-- प्रतीप । चन्द्रमा को देखकर मुख का स्मरण हो आता है- स्मरण । मुख ही चन्द्रमा है-- रूपक । मुखचन्द्र से ताप शान्त होता है--परिणाम। यह मुख है या चन्द्रमा- सन्देह । चन्द्रमा समझ, चकोर ने तेरे मुख का पीछा किया- भ्रान्ति । मुख को चन्द्रमा तथा कमल समझ चकोर और कमल समझ कर भ्रमर प्रसन्न होते हैं -- उल्लेख । चन्द्रमा है, मुख नहीं है--अपह्नुति । मुख चन्द्रमा है--उत्प्रेक्षा । मुख चन्द्रमा ही है-- अतिशयोक्ति । मुख से चन्द्रमा और कमल हार गये--तुल्ययोगिता। रात में उसका मुख और चन्द्रमा आनन्दित होते हैं-- दीपक । तेरा मुख है इससे हम

---

१ हिन्दी साहित्य कोश ,भाग १,पृ०१६८
२ अप्पय दीक्षित : `चित्रमीमांसा`,पृ०५

और चन्द्रमा है इससे चकोर प्रसन्न होते हैं -- प्रतिवस्तूपमा । आकाश में चन्द्रमा और पृथ्वी पर तेरा मुख है-- दृष्टान्त । मुख चन्द्रमा की कान्ति धारण करता है-- निदर्शना । निष्कलंक मुख चन्द्रमा से भी बढ़ा-चढ़ा है--व्यतिरेक । तुम्हारे मुख के साथ चन्द्रमा रात में हंसता है-- सहोक्ति । मुख के सामने चन्द्रमा फीका लगता है-- अप्रस्तुतप्रशंसा आदि[1] । श्री वेडिप्पन पिळे कहते हैं-- इस प्रकार हम देखते हैं कि बाकी अलंकार वस्तुत: मूल रूप में उपमा ही हैं । इसका कार्य है अप्रसिद्ध वस्तु की तुलना प्रसिद्ध वस्तु से करना । कभी-कभी यह प्रसिद्ध की तुलना अप्रसिद्ध से करता है ।[2] राजशेखर भी उपमा के महत्व का प्रतिपादन करते हुए कहते हैं कि उपमा अलंकारों की मुकुटमणि है, काव्य की सम्पत्ति है, कविवंश की माता के समान है । `अलंकार सर्वस्व` में आचार्य रुय्यक अपने विचार प्रकट करते हुए कहते हैं कि प्रकार-भेद से उपमा ही अनेक अलंकारों का मूल है । उपमालंकार को सभी भाषाओं के साहित्यकारों ने अपनाया है और महत्व प्रदान किया है । इसके व्यापकत्व को भी सभी ने स्वीकार किया है । श्री रामदहिन मिश्र कहते हैं उपमा ही समतामूलक अलंकारों का शिरोमणि है और यह बहुत व्यापक है । कारण यह कि सांसारिक कोई भी पदार्थ जब दृष्टिगत या कल्पित होता है, तब हम उसकी तुलना करने लगते हैं । यह किसके समान है, ऐसा और कोई पदार्थ है या नहीं, इत्यादि । यह तुलना उस वस्तु के आकार प्रकार की या रंग-रूप की या गुण-धर्मों की जाती है । जहां समता नहीं होती, वहां विरोध दिखाई देता है । किन्तु समान रूप-रंग-गुण-धर्मवाली वस्तुओं की अधिकता के कारण विरोध इतना व्यापक नहीं है ।[3] आचार्यों ने यह माना है कि उपमा ही मूल अलंकार है और इसी से अनेक अलंकारों का जन्म हुआ है, क्योंकि अर्थालंकारों में किसी न किसी तरह वस्तुओं की समानता का संकेत रहता ही है और समानता का नाम आते ही वे उपमा के रूप हो जाते हैं । वस्तुत: जल के विभिन्न भेद होते हुए भी जिस प्रकार लहर, बुलबुले और भंवर आदि भिन्न-भिन्न प्रतीत होते हैं, उसी प्रकार

---

1 पं० रामदहिन मिश्र : `काव्य में अप्रस्तुतयोजना`, पृ०१७२

2 तिरुक्कोव वाक साहित्य, पृ०१०

3 `काव्य में अप्रस्तुतयोजना`, पृ०१७०

बहुत से अर्थालंकार भिन्न-भिन्न प्रतीत होते हुए भी उपमा पर ही आश्रित हैं । यह बात अवश्य है कि अप्रस्तुतयोजना की नियोजना विरोधमूलक,शृंखलाबद्धमूलक, न्यायमूलक और गूढार्थ प्रतीतिमूलक अलंकारों द्वारा भी की जाती है,किन्तु सादृश्यमूलक अलंकारों द्वारा की गयी अप्रस्तुतयोजना में प्रभावसाम्य एवं रसानुभूति की स्थिति अपेक्षाकृत अधिक होती है । केवल संस्कृत और हिन्दी भाषा में ही नहीं,अपितु अन्य भाषाओं में भी इस अलंकार को प्रथम आदर मिला है और बहुत से अन्य छोटे-छोटे अलंकार इसी की शाखा-प्रशाखा रूप माने गये हैं[1] । उपमा के चार अंग हैं-- उपमेय,उपमान, साधारण धर्म और वाचक । जिसका वर्णन किया जाए या जिसकी तुलना की जाए उसे उपमेय या प्रस्तुत कहते हैं । जिसके साथ तुलना की जाए उसे उपमान या अप्रस्तुत कहते हैं । उपमेय और उपमान में रहने वाला गुण साधारण धर्म है । जिस शब्द के द्वारा समानता व्यक्त हो, वह वाचक कहलाता है ।

उपमा शब्द तथा उसके सादृश्य अर्थ का इतिहास बहुत पुराना है, अलंकारशास्त्र की प्रतिष्ठा के बहुत पहले से प्रयुक्त, ऋग्वेद में उपमा शब्द का प्रयोग मिलता है । प्रारम्भ में उपमा शब्द का प्रयोग व्याकरण के अन्तर्गत हुआ है । यास्क ने `निरुक्त` में उपमा को `सादृश्य` माना है और कर्म गुणवान् अथवा प्रसिद्ध से गुणन्यून तथा अप्रसिद्ध की समता । यह तुलना न्यूनगुण से गुणवान की भी की जा सकती है ।

ऋग्वेद के उषा सूक्त के एक मंत्र में चार उपमाओं का प्रयोग किया गया है, इसमें उषा के आगमन का वर्णन किया गया है--

`अभ्रातेव पुंस एति प्रतीची गर्तारुगिव सनये धनानाम् ।
जायेव पत्य उशती सुवासा उषा हस्रेव निरिणीते अप्सः।`[2]

इसमें `अभ्रातेव पुंस` `गर्तारोहिणीव` `जायेव पत्ये` `हस्रेव` इन चार उपमाओं का निर्देश निरुक्तकार यास्काचार्य ने किया है ।

कठोपनिषद् में भी अत्यन्त सुन्दर उपमाओं का प्रयोग किया गया है । एक स्थान पर कहा गया है, जिस प्रकार सम्पूर्ण भुवन में प्रविष्ट

---

१ विद्याधर : `जायसी साहित्य में अप्रस्तुतयोजना`, पृ०२६५ ।

२ ऋग्वेद संहिता , अष्टक -२, मं०१, अ०१, सूक्त १२४, ऋ० ७ ।

हुआ एक ही अग्नि प्रत्येक रूपवान वस्तु के अनुरूप हो गया है, उसी प्रकार सम्पूर्ण भूतों का एक ही अन्तरात्मा उनके रूप के अनुरूप हो रहा है और बाहर भी है--

`अग्निर्यथैको भुवनं प्रविष्टो रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव ।
एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा रूपं रूपं प्रतिरूपो बहिश्च ।`[1]

यहां की उपमा बाह्य वस्तुओं की विविधता की समता जीवों की विविधता से तो कर रही है वैसे अग्नि से आत्मा की व्यापकता का भी । अविकारी रूप से अग्नि जैसे बाहर रहता है, वैसे ही आत्मा भी आकाश के समान बाहर है[2] । इस प्रकार हम देखते हैं कि वैदिककाल से ही भारतीय साहित्य में उपमालंकार का प्रयोग होने लगा था । इसके पश्चात् तो लौकिक संस्कृत के कवियों ने उपमा को बहुत अधिक महत्व प्रदान करके अपनी रचनाओं में उत्कृष्ट कोटि की उपमाओं का प्रयोग किया है । इन कवियों में कालिदास तो अपनी उपमाओं के कारण युगों तक अमर रहेंगे । कालिदास की जिन उपमाओं को विद्वानों ने विशेष आदर प्रदान किया है, उनमें से एक इस प्रकार है --

`संचारिणी दीपशिखेव रात्रौ यं यं व्यतीयाय पतिंवरा सा ।
नरेन्द्रमार्गाट्ट इव प्रपेदे विवर्णभावं स स भूमिपालः ॥

यह रघुवंश के ६ वें सर्ग का ६७ वां छन्द है । स्वयंवर-सभा में बैठे हुए राजाओं के सामने से धीरे धीरे जाती हुई इन्दुमती की उपमा दीपशिखा से दी गई है । भूमिपालों को छोड़कर जब इन्दुमती आगे बढ़ जाती है, तब वे (भूमिपाल) राजमार्ग पर दीपशिखा के द्वारा छोड़े गये महलों के समान प्रतीत होते हैं । निराश नरेन्द्रों की उदासी की अभिव्यक्ति उपमा के द्वारा बड़े ही सुन्दर ढंग से की गई है ।

नाट्यशास्त्रकार भरत ने उपमा की व्याख्या करते हुए कहा है । काव्यबन्धों में सादृश्य के आधार पर गुण-आकृति के आश्रय से जो तुलना की जाती है, वह उपमा कहलाती है --

---

१ कठ० अ० २ व २।९

२ पं० रामदहिन मिश्र : `काव्य में अप्रस्तुतयोजना`,पृ०२०६-७ ।

'यत्किंचित्काव्यबन्धेषु सादृश्येनोपमीयते । उपमा नाम विज्ञेया गुणाकृतिसमाश्रया ।[1]

आचार्य भामह उपमा की परिभाषा देते हुए कहते हैं --

'विरुद्धेनोपमानेन देशकालक्रियादिभि: ।
उपमेयस्य यत्साम्यं गुणलेशेन सोपमा[2] ।।'

अर्थात् भिन्न उपमान के साथ उपमेय की देश,काल,क्रिया आदि के द्वारा गुण-लेश से जो समानता होती है, वह उपमा है ।

आचार्य दण्डी उपमा का निरूपण इस प्रकार करते हैं --

'यथाकथंचित् सादृश्यं यत्रोद्भूतं प्रतीयते ।
उपमा नाम सा तस्या: प्रपंचो यं प्रदर्श्यते[3] ।।'

तात्पर्य यह कि जिस किसी तरह से कुछ भी समानता जहाँ प्रधान रूप से स्फुट व्यक्त होती है, उसका नाम उपमा है । उद्भट मनोहारी साधर्म्य को उपमा कहते हैं । आचार्य वामन 'काव्यालंकार सूत्रवृत्ति' में उपमानेनो-पमेयस्य गुणलेशत: साम्यमुपमा' कहकर भामह के उपमा सम्बन्धी भावों को ग्रहण करते हैं । काव्यालंकार में आचार्य रुद्रट औपम्य के लिए समान शब्द का प्रयोग करते हैं । अलंकारों में उपमा को सर्वश्रेष्ठ मानते हुए राजशेखर कहते हैं--

'अलंकारशिरोरत्नं सर्वस्वं काव्यसम्पदाम् ।
उपमा कविवंशस्य मातैवेति मतिर्मम[4] ।।'

अर्थात् उपमा सम्पूर्ण अलंकारों में शिरोभूषण के समान है, काव्य की सम्पत्ति है और कविवंश की माता के समान है । इनके पश्चात् मम्मटाचार्य उपमा की परिभाषा देते हुए कहते हैं --'साधर्म्यमुपमा भेदे'[5] ।

अर्थात् उपमा वह अलंकार है जिसे उपमान और उपमेय का, उनमें भेद होने पर भी, परस्पर साधारण धर्म से सम्बद्ध होना कहा जाता है ।

----

१ भरत : 'नाट्यशास्त्र', अध्याय १७।४४।
२ भामह : 'काव्यालंकार' -- २।३०
३ दण्डी : 'काव्यादर्श' -- २।१४
४ राजशेखर : 'काव्यमीमांसा',पृ०४८
५ मम्मट : 'काव्यप्रकाश' -- १०।८७ सूत्र १२५

आचार्य मम्मट ने 'सादृश्य' के स्थान पर 'साधर्म्य' का प्रयोग किया है ।

आचार्य रुय्यक 'अलंकारसर्वस्व' में कहते हैं :--
'उपमैवानेकप्रकारवैचित्र्येणानेकालंकारबीजभूतेति'[1] । इस प्रकार रुय्यक ने अनेक प्रकार के वैचित्र्य के आधार पर उपमा को सम्पूर्ण अलंकारों का बीजरूप माना है । आचार्य जयदेव उपमा की परिभाषा देते हुए कहते हैं-- 'उपमा यत्र सादृश्य लक्ष्मीरुल्लसति द्वयोः'[2] ।

इसका तात्पर्य है, जहां दोनों(उपमान,उपमेय) में चमत्कृत सौन्दर्यमूलक सादृश्य कहा जाता है, वहां उपमा अलंकार होता है । उपमा के विषय में पण्डितराज जगन्नाथ कहते हैं -- 'सादृश्यं सुन्दरं वाक्यार्थोपस्कारकमुपमालंकृतिः'[3] । सौन्दर्य अर्थात् चमत्कृति जिससे चित्त में एक प्रकार का आनन्दविशेष पैदा हो उठे जो उपस्कृत्य वाक्य या अर्थ है, वह उपमा है ।

संस्कृत के आचार्यों के पश्चात् हिन्दी के आचार्यों ने उपमा के विषय में जो विचार प्रकट किए हैं, उनमें से कुछ इस प्रकार हैं --
केशवदास के अनुसार --'रूप शील गुन होंहि सम, जो क्यों हूं अनुसार'(कवि०१४:१)
मतिराम के अनुसार --'जहां बरनिये दुहुनि की सम छवि को उल्लास'(ललितललाम४०)
भूषण के अनुसार --'जहां दुहुन को देखिये,शोभा बनत समान'(शि०भू० ३२)

इनपर भाषा के आचार्यों का प्रभाव पड़ा है,'चन्द्रालोक'और 'कुवलयानन्द' की छाया स्पष्ट परिलक्षित होती है । कुलपति के 'रसरहस्य' में उपमा का लक्षण अधिक स्पष्ट और वैज्ञानिक है--'

'शब्द अर्थ समता कहै, चोखन की चेहि ठौर ।
नाहिं कल्पित उपमान जंह, सो उपमा सिरमौर ।।'(रसरहस्य ८।३)

यहां शब्द-अर्थ कहकर अलंकार की व्याप्ति से अलग किया है और अकल्पित उपमान कहकर इसे उत्प्रेक्षा से अलग किया गया है । अनेक आचार्यों ने

---

१ रुय्यक : 'अलंकारसर्वस्व',पृ०४० ।
२ जयदेव : 'चन्द्रालोक' --५।११
३ पण्डितराज जगन्नाथ : 'रसगंगाधर द्वि०आननम्,पृ०१६५

मम्मट तथा विश्वनाथ का आधार ग्रहण किया है, पद्माकर कहते हैं--'उपमेय हु उपमान को इक सम धरम जु होइ'[1] (पद्माभरण७) ।

डा० देवराज के उपमा विषयक विचार इस प्रकार हैं-- 'कहा जाता है कि समस्त अर्थालंकारों का मूल उपमा है । यह उपमा और कुछ नहीं जीवन एवं जगत की अर्थवत् छवियों को सम्बन्धित करने का एक प्रकार मात्र है । वैज्ञानिक भी वस्तुओं के सम्बन्ध-सूत्र खोजता है, किन्तु यह सम्बन्ध प्राय: कार्य-कारण-मूलक होते हैं । साहित्यकार जिन सम्बन्धों को देखता व पाता है, वे नितान्त भिन्न कोटि के होते हैं । शायद उनका मूल भावना की निगूढ अन्त: प्रकृति में रहता है, शायद वे मूल्य-जगत के अनिर्वाच्य नियमों के वाहक होते हैं । इसका अर्थ यह हुआ कि उपमा अथवा अन्य अलंकारों का विधान कोई खामखयाली चेष्टा नहीं है । वे अलंकार जो वस्तुत: मार्मिक हैं, जो हृदय को स्पर्श करते हैं, प्रगल्भ कल्पना के रूप में नहीं आते, वे अनुभूति का अवियोज्य अंग, उसके विधायक अणु-परमाणु रूप होते हैं । ऐसे अलंकार वाणी या कल्पना का विलासमात्र नहीं होते.......... उपमान और उपमेय की समानता इस अर्थ में सत्य होती है कि दोनों के तुल्य रूप द्रष्टा में समान प्रतिक्रिया जगाते हैं[2] ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि अधिकतर विद्वान् यह मानते हैं कि उपमा अर्थालंकारों का मूल है, अत: यह बहुत व्यापक है, अलंकारों में सर्वश्रेष्ठ है। उपमा इतनी व्यापक अलंकार है कि किसी भी भाषा के साहित्य में इसका अभाव नहीं दिखायी पड़ता । लोक, वेद, शस्त्र और काव्य में सब स्थलों में यह अपने सौन्दर्य के द्वारा सबको प्रभावित कर देती है । हम परस्पर वार्तालाप करते हुए अपनी बात को सुगम या सुन्दर बनाने के अनेक उपमाओं का व्यवहार करते हैं, जैसे- - चांद सा मुखड़ा, कोयल सी काली, ताड़ सा लम्बा आदि । उपमालंकार कवि के भावों को

---

१ 'हिन्दी साहित्य कोश', भाग १, पृ०१६९ ।

२ 'साहित्य चिन्तन', पृ०५०-५१ ।

प्रभावशाली ढंग से अभिव्यक्त करता है । विषय, भावना और साम्य पर ध्यान देकर उपमा की जो योजना की जाती है, वह अनायास ही हृदय पर प्रभाव डालती है । कवि उपमेय का वर्णन करते समय जिस भाव को व्यक्त करने की इच्छा करता है, यदि उपमान के द्वारा भाव तीव्र हो उठे या उपमेय का उत्कर्ष दिखाई देने लगे तो समझना चाहिए कि कवि की अप्रस्तुतयोजना सफल हुई । श्री रामदहिन मिश्र कहते हैं कि उपमा के सम्बन्ध में कुछ बातों का ध्यान रखना आवश्यक है । इनमें सर्वप्रथम अप्रस्तुतों की योजना करते समय यह देखना चाहिए कि जिस वस्तु, व्यापार या गुण के सदृश जो वस्तु, व्यापार या गुण लाया जाता है, वह उस भाव के अनुकूल है कि नहीं । अप्रस्तुत भी वैसा ही भावोत्तेजक हो, जैसा कि प्रस्तुत । दूसरी बात यह है कि उपमा में तुलना के लिए दो वस्तुएं होनी चाहिए । क्योंकि इसके बिना काव्य-सौन्दर्य प्रस्फुटित नहीं होता । तीसरी बात यह है-- उपमेय की तुलना ऐसी वस्तु से होनी चाहिए जिससे उपमेय का सुनिश्चित ग्रहण हो, अर्थचमत्कार की उत्कर्ष प्राप्त हो । चौथी बात यह है कि उपमेय के जिस साधारण धर्म से उपमान की तुलना की जाये उसमें उपमेय से उपमान बढ़ा-चढ़ा हो । क्योंकि अप्रस्तुतयोजना का यही मुख्य उद्देश्य है । यदि उपमेय से उपमान हीन हुआ तो वह उपमेय की सौंदर्य-वृद्धि में सहायक ही कैसे होगा । पांचवी बात यह है कि उपमेय और उपमान का साधारण धर्म कवि-सम्मत और लोकविरुद्ध न हो । छठवीं बात यह है कि उपमान का यथार्थ होने पर भी भावव्यंजक और सुरुचि का परिचायक होना चाहिए । उपमा के दो प्रयोजन हैं--वाक्यार्थ को स्पष्ट करना और वाक्यार्थ को अलंकृत करना । 'उपमा का अलंकार की दृष्टि से विशेष महत्त्व है । अप्रस्तुतयोजना के द्वारा कवि के भाव या विचार अधिक भावग्राह्य बन जाते हैं । अप्रस्तुतयोजना में सुन्दरता, सरसता, अर्थचमत्कार और विषय के बिम्बात्मक भाव-बोध कराने की क्षमता विद्यमान रहती है ।

सन्तकाव्य में अत्यन्त स्वाभाविक रूप में अलंकार प्रयुक्त हुए हैं, बलपूर्वक लाये नहीं गए हैं । सन्त कवियों द्वारा प्रयुक्त अलंकार काव्य के ही अन्तर से प्रकट होते हुए दिखाई देते हैं, सन्तकवियों ने अलंकारों को काव्य वह का साध्य

---

१ 'काव्य में अप्रस्तुतयोजना', पृ०१५१-१५२ ।

नहीं माना है । यही कारण है कि सन्तकाव्य में अलंकारों का भरमार नहीं है । जनसाधारण को सदुपदेश देने के लिए जिस सुबोध शैली का तथा सरल भाषा का आश्रय लिया गया है, उसमें कुछ अलंकार अनायास ही आकर काव्यशोभा की वृद्धि में सहायक हो गए हैं । काव्यशास्त्र के ग्रन्थों को सामने रखकर इन मस्तमौला संतों ने अलंकारों की रचना न नहीं की है । इसलिए इस दृष्टि से सन्तों द्वारा प्रयुक्त अलंकारों को परखना उन पर अन्याय करना होगा । स्वाभाविक रूप में जिन अलंकारों का प्रयोग हुआ है वे पर्याप्त हैं, इससे अधिक अलंकारों की आवश्यकता उन लोगों को नहीं थी । सन्तकवियों द्वारा प्रयुक्त अलंकार उनके भावों एवं विचारों को अभिव्यक्त करने में पूर्ण सफल हुए हैं, यही बहुत बड़ी बात है ।

उपमा अलंकार

सन्तकवियों की रचनाओं में उपमा अलंकार कई स्थानों पर आया है । कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं --

`रामनाम डूंगर की सिला, धोबिया धोवै अंतरिमला ।`

(नामदेव की हिन्दी पदावली,पद १२९-३)

नामदेव रामनाम की तुलना विशाल प्रस्तर-खण्ड से करते हैं,जिसपर धोबी वस्त्र पछाड़कर धोता है । मैले वस्त्र को धोबी शिला पर पछाड़ कर स्वच्छ करता है और रामनाम के सतत उच्चारण से हृदय का मैल धुल जाता है । यहां `डूंगर शिला` उपमान है,`रामनाम` उपमेय है ।

कबीर माया की तुलना `मीठी खांड` से करते हुए लोगों को सचेत करते हैं -- माया मीठी खांड के समान है जो अपनी मिठास से लोगों को सहज ही आकर्षित करके उन्हें मोहजाल में उलझा देती है । गुरु की कृपा ही माया के बन्धन से मुक्ति प्रदान करा सकती है --

`माया मीठी सबद में, जैसी मीठी खांड ।
सतगुर की किरपा भई, नाहिंतर करती भांड ।।`

(कबीर ग्रन्थावली,साखी ३१-७)

यहां `माया` उपमेय है,`खांड` उपमान है,`मीठी` साधारण धर्म है तथा जैसी वाचक शब्द है । यहां उपमा अलंकार है ।

रैदास कहते हैं —

हरि सा हीरा छाड़ि के, करै आन की आस ।

ते नर जमपुर जाहिंगे, सत भाषै रैदास ।। -- रैदास १०८-१

हरि के समान हीरे की उपेक्षा करके जो मनुष्य सांसारिक विषयों में आसक्त हैं, उनका `जमपुर` जाना निश्चित है । हीरा अमूल्य रत्न माना जाता है, लेकिन भक्तों के लिए तो हरि या इष्टदेव ही हीरा है । साधारण मनुष्य जो महत्त्व बहुमूल्य हीरे को देते हैं, सन्त जन वही महत्व ईश्वर को देते हैं । हीरे के समान हरि को प्राप्त करना श्रेयस्कर है । `हरि` उपमेय है, `हीरा` उपमान तथा `सा` वाचक शब्द है । साधारण धर्म लुप्त है, अमूल्य ही साधारण धर्म हो सकता है ।

सुन्दरदास तमोगुण बुद्धि की तुलना तवे से करते हैं । तमोगुण का वर्ण कृष्ण या काला माना जाता है और तवे का रंग भी काला ही होता है, तवे के अन्दर सूर्य प्रकाश का पहुंचना असम्भव है और तमोगुणी बुद्धि में भी ज्ञानप्रकाश का होना असम्भव है । ऐसी बुद्धि में तो घोर अज्ञान का अन्धकार ही रह सकता है, ज्ञान का प्रकाश तो इसमें रंचमात्र भी नहीं है —

तमोगुन बुद्धी जो तौ, तवा के समान देखे;

ताके मध्य सूरज की रंचहु न जोत है ।। --सुन्दरदास २३अंक१३-१

इसी छन्द में आगे सुन्दरदास रजोगुणी बुद्धि को दर्पण के विपरीत भाग के समान कहते हैं और सत्वगुणी बुद्धि को दर्पण के अग्र भाग के समान कहते हैं । जैसे रजोगुणी बुद्धि को दर्पण के उल्टी तरफ का रंग लाल होता है और उसमें सूर्य का थोड़ा-बहुत प्रकाश होता है, इसी प्रकार रजोगुण का वर्ण भी लाल ही माना जाता है, इसमें ज्ञान का प्रकाश बहुत कम मात्रा में पाया जाता है । सत्व गुण का वर्ण स्वच्छ शुभ्र माना जाता है, दर्पण की सीधी ओर के समान इसमें सूर्य का प्रतिबिम्ब स्पष्ट ही पड़ता है । सत्वगुण बुद्धि में भी ज्ञान का आलोक छाया रहता है । इस प्रकार हम देखते हैं कि सन्त कवियों ने व्यावहारिक जीवन में प्रतिदिन काम में आने वाली वस्तुओं को उपमान रूप में लाकर अपने प्रतिपाद्य विषय को सहज ही बोधगम्य बना दिया है । उनके काव्य को समझने के लिए यह आवश्यक

नहीं है कि पाठक काव्यशास्त्र का ज्ञाता हो । `तवा` या `आरसी` का अर्थ जानने के लिए किसी कोश को उलटने-पलटने की आवश्यकता नहीं है, इन्हें तो वह प्रतिदिन देखता रहता है । आकाश पाताल की बातें न करके सन्त कवि इसी जगत् से अपना सम्पर्क बनाए हुए थे, इसीलिए उनके अलंकार इतने स्वाभाविक लगते हैं ।

दादूदयाल कहते हैं :--

दादू झूठा जीव है, गढ़िया गोव्यंद बैन ।
मनसा मूंगी पंख ज्यूं, सूरिज सरीखे नैन ।। --दादू साखी४-३२३ ।

जीव झूठा है, सच्चा वह गोविन्द है, जिसने उसको वाणी दी । उसकी मानसिक वृत्ति को मूंगी पखो(जल काक) के पंखों के समान सतरंगी बनाया और सूर्य के समान नेत्र दिए (सूर्यो चक्षुराभवत्) ।

सन्तकवि हरिदास एक स्थान पर कहते हैं--

जुग में देखा सा जीवणां, `सुपने` का सा लामचे ।
जाब धणीं कूं देवणां, भज्यो न केवल रामचे ।। --हरिदास २-६-१

जग में मनुष्य का जीवन तो स्वप्न के समान है । जब तक हम निद्रामग्न रहते हैं, तभी तक स्वप्न का अस्तित्व रहता है । जागृतावस्था में हमें ज्ञान हो जाता है कि स्वप्न में जो कुछ देखा या किया सब मिथ्या ही है । इसी प्रकार मनुष्य अज्ञान में पड़ा रहता है और भूल जाता है कि उसका जीवन तो स्वप्न के समान ही नश्वर है, एक दिन सब कुछ नष्ट हो जायगा । जग में जो समय नष्ट करता है, राम नाम स्मरण नहीं करता । ईश्वर जब कर्मों का लेखा मांगेंगे तो वह क्या उत्तर देगा । यहां `जीवणां` उपमेय, `सुपने` उपमान है तथा `सा` वाचक शब्द है । `नश्वर` साधारण धर्म है जो कि लुप्त है ।

यह तन भवन सदृश हरि कुंजी सतगुरु पास ।--मीरा कुंडलिया९-१

मीरा मानव शरीर की तुलना घर से करते हुए कहते हैं कि यह तन घर के समान है, भवन सदृश है और इसी में हरि का निवास है । सतगुरु के पास ही `हरि कुंजी` है, इसलिए गुरु चाहें तो उस कुंजी के द्वारा हृदय-कपाट खोलकर परम तत्व का दर्शन करा सकते हैं । तन उपमेय है, भवन उपमान है तथा सदृश वाचक शब्द है ।

नानकदेव शरीर को सेमल वृक्ष के समान कहते हैं--

सिंमल रुखु सरीरु मै मैजन देखि भुलंन्हि ।

से फल कंमि न आवन्ही ते गुण मै तनि हंन्हि ।। --नानक,सूही सबद३.६

मेरा शरीर सेमल वृक्ष के समान है । इसके बाह्य सौन्दर्य को देखकर लोग भूल जाते हैं कि इसके गुण किसी भी काम नहीं आते । सेमल का वृक्ष भी ठीक इसी प्रकार का होता है, वह सुन्दर तो लगता है परन्तु उसका फल किसी काम का नहीं होता, तोता उसके लाल लाल फल को देखकर भ्रमवश चोंच मारता है और निराश होकर उड़ जाता है । यहां शरीर उपमेय है, सेमल वृक्ष उपमान है, बाह्य सौन्दर्य साधारण धर्म है ।

इस प्रकार उपमा अलंकार का प्रयोग सन्तकवियों ने अनेक स्थलों पर किया है ।

रूपक अलंकार

रूपक सादृश्यमूलक अभेदप्रधान आरोपमूलक अर्थालंकार है,जिसमें अतिसाम्य के कारण प्रस्तुत में अप्रस्तुत का आरोप करके अभेद दिखाया जाता है । रूपकों का प्रयोग सन्तकवियों ने सबसे अधिक किया है, यह अलंकार सन्तकवियों को अधिक प्रिय था । सन्तकाव्य में रूपकों की छटा निराली है, सरल रूपकों के माध्यम से सन्तों ने अपने आध्यात्मिक सिद्धान्तों को जनसाधारण तक पहुंचा दिया है ।

कबीरदास जी के रूपक अत्यन्त सुन्दर एवं सजीव चित्र उपस्थित करते हैं । ठेठ ग्रामीण शब्दावली का आधार लेकर उन्होंने ग्रामीण जीवन का अत्यन्त स्वाभाविक रूप प्रस्तुत करते हुए अपने विचारों को अभिव्यक्त किया है, उदाहरणस्वरूप `कबीर-ग्रन्थावली` का ४१ वां पद द्रष्टव्य है --

बाबा अब न बसउं यहि गाउं ।
घरी घरी का लेखा मांगै काइथ चेतू नांउ ।।टेक।।
देही गांवा जिव धर महतौ बसहिं पंच किरसाना ।।
नैनू नकटू स्रवनू रसनू इंद्री कह्या न माना ।।१।।
धरमराइ जब लेखा मांगै बाकी निकसी भारी ।
पंच क्रिसनवां भागि गए लै बांध्यौ जिव दरबारी ।।२।।
कहै कबीर सुनहु रे संतहु खेतहिं करहु निबेरा ।
अबकी बेर बकसि बंदे कौं बहुरि न भौजलि फेरा।।३।।

यहां शरीर को गांव, चित्त अथवा चित्रगुप्त को मेहु नामक कायस्थ, प्राणधारी आत्मा को गांव का मुखिया, पंच ज्ञानेन्द्रियों को पांच किसान सामन्त या जमींदार को धर्मराज या यमराज बताया गया है । मैहु, मकद् आदि नाम-चयन से रूपक बड़ा ही जीवंत हो उठा है, जिसमें ग्रामीण जीवन की जीती-जागती झांकी भी है, आध्यात्मिक संकेत भी । तुलसी, सूर आदि के रूपक साहित्यिक कोटि के हैं जो उन्हें परम्परा से प्राप्त हुए हैं । कबीर लोक-शैली-प्रधान रूपकों के पाइनियर हैं । सिद्धों तथा नाथयोगियों में इस शैली के रूपकों का बीजमात्र है, कबीर ने उसे पूर्ण रूप से पल्लवित किया है[1] ।

'कबीर ग्रन्थावली' के ५० वें पद में नृत्य का सुन्दर रूपक है--

अब मोहिं नाचिबौ न आवै ।
मेरौ मन मंदरिया न बजावै ।।टेक ।।
ऊमर था सो सूभर भरिया त्रिस्नां गागरि फूटि ।
काम चोलना भया पुराना गया भरम सब छूटी ।।१।।
जे बहु रूप किए ते कीए अब बहु रूप न होई ।
थाकी सौंज संग के बिछुरे राम नाम मसि धोई ।।२।।
जे थे सचल अचल ह्वै थाके झूठे बाद बिबादा ।
कहै कबीर मैं पूरा पाया भया राम परसादा ।।३।।

इसमें मंदरिया, झांझर बाजो, चोलना, मेहरा आदि 'सौंज' अर्थात् साज सामग्री द्वारा उन्मनावस्था का वर्णन है । कबीर कहते हैं-- अब मुझे नाचना नहीं आता, क्योंकि मेरा मन मंदला नहीं बजाता । यह मन जब तक आध्यात्मिक अनुभूतियों से रिक्त था, अब उनसे पूर्णरूपेण भर चुका है । उसके तृष्णा रूपी गागर फूट गई है, काम वासनाओं रूपी चोलना(नृत्य करने का वस्त्र) पुराना पड़ गया और सब भ्रम दूर हो गए हैं । अब रूप बदल-बदल कर नृत्य करने की प्रवृत्ति भी समाप्त हो चुकी है, इसलिए विविध स्वांग रचे नहीं जाते । नृत्य सामग्रियां सब रखी ही रह गईं अर्थात् सांसारिक जीवन से थक कर मन विरक्त हो चुका है, रामनाम के वशीभूत होने पर सभी समाजी(नृत्य में साथ देने वाले)अर्थात् कुटुम्बीजन बिछुड़ गए हैं । नृत्य में हाथ, पांव आदि का जो

---

१. डा० पारसनाथ तिवारी : 'कबीर-संग्रह'-संजीवनी', पृ०१४

संचालन होता था, वह अब स्थिरता को प्राप्त हो गया है, अर्थात् मन की चंचल वृत्तियां अब निश्चल हो गई है । अन्त में कबीर कहते हैं कि व्यर्थ के वाद-विवाद समाप्त हो चुके हैं और राम की कृपा से मैं पूर्ण तत्वज्ञानी हो च गया हूं । इस प्रकार हम देखते हैं कि एक तुल्य रूपक के द्वारा कबीर कितने सहजभाव से अपने विचारों को अभिव्यक्त करते हैं । स्वाभाविकता ही सन्तकवियों को लोकप्रिय बना देती है ।

कबीर ग्रन्थावली का ५१ वां पद भी रूपक अलंकार का सुन्दर उदाहरण है, यह पद बहुत प्रसिद्ध है । इसमें कल्पपालों की शब्दावली में सन्तों की गूढ़ साधना का ज्ञान अत्यन्त सरल रूप में प्रस्तुत किया गया है । इस रूपक की सहायता से जन साधारण अत्यन्त सुगमता पूर्वक आध्यात्मिक मदिरा बनाने का रहस्य समझ लेते हैं, वह व पद इसप्रकार है--

> है कोई संत सहज सुख अंतरि जाकौं जप तप देउं दलाली ।
> एक बूंद भरि देइ राम रस ज्यूं भरि देइ कलाली ॥टेक॥
> काया कलाली लाहनि मेलेउं गुरु का सबद गुड़ कीन्हां ।
> त्रिसना काम क्रोध मद मत्सर काटि काटि कसि दीन्हां ॥१॥
> भवन चतुरदस भाठी पुरई ब्रह्म अगिनि परजारी ।
> मुद्रा मदक सहज धुनि लागी सुखमन पोतनहारी ॥२॥
> नीझर झरै अमीरस निकसै तिहिं मदिरावल छाका ।
> कहै कबीर यहु बास बिकट अति ग्यान गुरु ले बांका ॥३॥

कबीर कहते हैं कि क्या कोई ऐसा सन्त है, जिसके हृदय में सहज सुख वर्तमान है ? यदि कोई ऐसा व्यक्ति है तो मैं उसको अपने सारे जप तप कलाली के रूप में प्रस्तुत देने को प्रस्तुत हूं, बदले में केवल एक ही वस्तु की कामना करता हूं कि वह मुझे एक बूंद रामभक्ति रस दे दे, जैसे कि कल्पपाली मद देती है । अथवा स्त्री कल्पपाली या कलाली ने काया का लाहन रखा, गुरु का उपदेश गुड़ के रूप मिलाया, तृष्णा, काम, क्रोध, मद, मत्सर को काट काट कर उनको कस दिया, चौदहों भुवन (दस इन्द्रियां तथा अन्त:करण चतुष्टय) की भट्ठी बनाई और उसमें ब्रह्माग्नि प्रज्ज्वलित की । मुद्रा का मोम (भभके के ढक्कन पर अथवा इन्द्रिय द्वारों पर) दिया तब सहज ध्वनि (अनाहत नाद) आरम्भ हुई और सुषुम्णा को

पोतनहारी बनाया (तब) निर्झर प्रवाहित होने लगा, जिससे अमृतरस (भक्तिमदिरा) निकला, जिसके मद में मन रूपी रावल या राजा उन्मत्त हो गया । आगे कबीर कहते हैं कि इस भक्तिमदिरा की गंध बड़ी उग्र है, इसका आघ्राण वही ले जिसे गुरु का सांचा ज्ञान प्राप्त हो अर्थात् यह कोई सहज सरल स्थिति नहीं है बड़ी विकट स्थिति है । इतने सूक्ष्म जटिल आध्यात्मिक रहस्य को कबीर ने इस सुन्दर रूपक के माध्यम से सहज ही बोधगम्य बना दिया है, यह पद सांगरूपक का उत्कृष्ट उदाहरण है ।

कबीर व्यवसायी थे, अतः अपने व्यवसाय में प्रयुक्त शब्दावली के माध्यम से उन्होंने शरीर और मन का रहस्यमय ताना-बाना समझाया है --

राजुराय चली बिनावन माहो ।
घर छोड़े जात जुलाहो ।।ह टेक ।।
गज नव गज दस गज उनईस की पुरिया एक तनाई ।
सात सूत दें गड बहत्तरि पाट लगु अधिकाई ।।१।।
गजें न मिनिबै तोलि न तुलिबै पचन सेर अढाई ।
अढाई में जे पाव घटे तो करकस करै घरहाई ।।२।।
दिन की बैठ खसम सौं करकस तापर लगी तिहाई ।
भींगी पुरिया घर की छांडी चला जुलाह रिसाई ।।३।।
छोछी नली काम नहिं आवै लपटि रही उरझाई ।
छांडि पसार राम भजु बौरे कहै कबीर समझाई ।।४।।

--कबीर ग्रन्थावली, पद २११

राजुराय नामक स्त्री अर्थात् माया माहो या वस्त्र बुनाने चली है अर्थात् कर्म कराने चली है । परन्तु मन रूपी जुलाहा इन कर्मों के जंजाल से ऊब गया है, इसलिए शरीर के प्रपंचों से उदासीन होकर चला जा रहा है । अब कबीर रूपक के माध्यम से बताते हैं कि शरीर का प्रपंच कैसा है -- गज गज(नौ नाड़ी) और दस गज(दस इन्द्रियां) दस उन्नीस गज (उन्नीस कील कांटों) को एक पुरिया तानी गई(शरीर निर्मित हुआ) फिर सात सूत(सप्त धातु के बहत्तर गंडे या बहत्तर धमनियां या कोठे) बांधे गए, जिससे (इस पुरिया में बड़ा पाट लगा (प्रपंचों का विस्तार बढ़ा) । : इस विलक्षण पुरिया(शरीर) को: गज से नापा नहीं जा सकता, तुला पर तौला नहीं जा सकता (शरीर-रचना का रहस्य अपरिमित है ।

इसमें ढाई सेर की माढ़ी(खुराक) लगती है । ढाई सेर में अगर पाव भर भी माढ़ी कम हो जाय तो घरवाई या स्त्री किचकिच करती है,अर्थात् (ढाई सेर की मुक्ति में यदि पाव भर की भी कमी पड़े तो कुमति इन्द्रियों में व्याकुलता उत्पन्न कर देती है) । दिन की बेगार खटने से जो (सावधान चित्त होकर साधना करने से जो) मालिक से बरकत पड़ती है (प्राप्ति होती है, अर्थात् प्रारब्ध कर्मों की वृद्धि होती है) । उस पर भी कमाई का तृतीयांश देना पड़ता है (त्रिविध ताप-तीन ताप-भोगना पड़ता है) । :इतने सारे प्रपंचों से ऊबकर : भोगी कुई पुरिया को घर ही छोड़ कर जुलाहा सीककर भाग चला(वासनासिक्त शरीर के जंजालों से ऊब कर मन उससे विरक्त हो चला) । कूंची नली से कपड़ा नहीं बुना जा सकता, वह अपने आप में ही उलझ पुलझ कर रह जाता है ।1 क्योंकि वह पुरिया में लपट कर उलझ जाती है(वासनाधीन मन से कर्म नहीं हो सकता, वह अपने आप में ही उलझ पुलझ कर रह जाता है) । इसलिए कबीर समझा कर कहता है कि रे भाइले, यह (जटिल) पसारा(दैहिक या भौतिक प्रपंच) छोड़कर राम का भजन करो । इस प्रकार हम देखते हैं कि सांग रूपक के माध्यम से कितने सरल स्वाभाविक ढंग से कबीर ने अपने विचारों को अभिव्यक्त किया है ।

कबीर ग्रन्थावली का ५२ वां पद भी रूपक की दृष्टि से बहुत सुन्दर है, इसमें आंधी का रूपक है --

संतो भाई आई ग्यान की आंधी रे ।
भ्रम की टाटी सबै उड़ानी माया रहै न बांधी रे ।।टेक ।।
दुचिते की दोइ थूंनि गिरानी मोह बलींडा टूटा ।
त्रिस्ना छानि परी घर ऊपरि दुरमति भांडा फूटा ।।१।।
आंधी पाछै जो जल बरसै तिहि तेरा जन भीना ।
कहै कबीर मनि भया प्रगासा उदै भानु जब चीना ।।२।।

कबीर कहते हैं -- अरे संतो भाई,ज्ञान की आंधी आ गई । भ्रम की सारी टाटियां उड़ गईं, माया का बंधन न रहा । दुविधा की दोनों

---

1 डा० पारसनाथ तिवारी : `कबीर -संग्रह- संजीवनी`,पृ०५६,६० ।

थुन्हियां (स्तम्भ या थाम) गिर गईं, मोह की बंडेर (बल्ली) टूट गई, तृष्णा की छान(छप्पर) नीचे जमीन पर आ पड़ी जिससे कुबुद्धि का भांडा (भांड या पात्र) फूट गया । ज्ञान की आंधी के पश्चात् भक्ति-जल की जो वर्षा हुई उसमें तुम्हारा दास तन्मय हो गया । कबीर कहता है(भक्ति-जल से जब आंधी का तूफान शान्त हुआ तो) उदय होता हुआ तत्वज्ञान रूपी सूर्य पहचान पड़ा और मन में उसका प्रकाश हुआ ।

कबीरदास साखी जैसे छोटे से छन्द में भी कितने सुन्दर रूपकों का प्रयोग करते हैं --

सब रग तांति रबाब तन, बिरह बजावै नित ।
और न कोई सुनि सकै, कै सांई कै चित ॥
-- प्रेम बिरह कौ अंग - साखी १७

शरीर रबाब है और सभी नसें रबाब की तांत हैं,विरह उसे नित्य बजाया करता है । किन्तु उसकी ध्वनि कोई और नहीं सुन सकता या तो स्वामी सुनता है या (विरहिणी का) चित्त ।

रूपक के माध्यम से कबीर समझाते हैं कि ब्रह्म तो हमारे हृदय में ही है, उसे हम बाहर क्यों खोजते हैं,परन्तु इस रहस्य को कुछ ही लोग जानते हैं --

अंतरि कंवल प्रकासिया, ब्रह्म बास तहां होइ ।
मन भंवरा तहं लुबधिया, जाणैगा जन कोइ ॥--परचा कौ अंग-१७

हृदय रूपी कमल जब प्रकाशित होता है तब उसमें स्थित ब्रह्मरूपी बास या सुगन्धि के प्रति मन रूपी भंवरा आकर्षित हो जाता है, मन भ्रमर जब यह जान लेता है कि हृदय कमल में ब्रह्म बास का निवास है तो वह अन्यत्र न जाकर ब्रह्म में लीन हो जाता है, परन्तु इस रहस्य को सब लोग समझने में असमर्थ हैं ।

पांडल पंजर मन भंवर, अरथ अनूपम बास ।
राम नाम सींचा अमी, फल लागा बेसास ॥--बेसास कौ अंग -१०

शरीर गुलाब है, मन भंवरा है, अर्थ ही अनुपम सुगन्धि है। राम नाम रूपी अमृत से सींचने पर इसमें विश्वास रूपी फल फलने लगा ।

कबीर के समान ही अन्य सन्तकवियों की रचनाओं में रूपक अलंकार के बहुत अधिक उदाहरण मिल जाते हैं । नामदेव जी ने एक स्थान पर कहा है-- मैं दिन रात श्री राम को जपते हुए उस अनन्त के नाम का चोला (वस्त्र विशेष) सिलता हूं, नाम रूपी चोला के सिलने के फलस्वरूप यम का भय अर्थात् मृत्युभय भाग जाता है । ऐसे अद्भुत कार्य में जो लोग मेरी सहायता करते हैं, वह इस प्रकार हैं -- मन मेरा गज है, जिभ्या मेरी कैंची का कार्य करती है, सुरति या ध्यान सुई बन गई है और उस सुई में मैं प्रेम रूपी धागा डालकर तब अनन्त नाम रूपी चोला सिलता हूं । इस प्रकार राम नाम में रमकर मैं यम की फांसी काट देता हूं, मृत्युभय से मुक्त हो जाता हूं । राम को भूलकर मैं जीवित नहीं रह सकता हूं, नामदेव जी का मन रामनाम रूपी वस्त्र को सीते हुए उन्हीं राम में लीन हो जाता है --

का करौं जाती का करौं पांती । राजाराम सेऊं दिन राती ॥टेक॥
मन मेरी गज जिभ्या मेरी काती। रामरमे काटौं जम की फांसी॥१॥
अनंत नाम का सींऊं बागा । जा सीवत जम का डर भागा ॥२॥
सीवना सींऊं सौं सींऊं सब सींऊं।राम बिना हूं कैसे जीऊं ॥३॥
सुरति की सुई प्रेम का धागा । नामा का मन हरि सूं लागा ॥४॥

--सन्त नामदेव की हिन्दी पदावली,पद १८

नामदेव जी गुड़ से गुड़ बनाने की प्रक्रिया सीखते हैं । यह गुड़ साधारण गुड़ नहीं है राम रूपी गुड़ है इसलिए इस गुड़ को प्राप्त करना कोई सरल कार्य नहीं है, जो राम रूपी गुड़ को प्राप्त करता है, वही इसके गुण को समझ सकता है --

गुड़ मीठा राम गुड़ मीठा । जिनि चाखा तिनि गुन दीठा ॥टेक॥
नैननि जाया स्रवननि पाया । सुमिरत मर्ड जिभ्या मधि माया॥१॥
पांच कलस थापि ध्यान मंडाणी। कौलू ध्यान धरी सिध पाणी॥२॥
षट कूंडा जब सोझ न सोधी । सहज अनल गुड़ सोना होयी ॥३॥
गुरुमा जो गुड़ाई पाया । जो गुड़ तिहूं पुर राजा ॥४॥
नामदेव प्रणवै जन न मिठाई । जहां जतन सुमिरन मनि बाई ॥५॥

--नामदेव पद - ८७

राम रूपी गुड़ बहुत मीठा है, इसको प्राप्त करने के लिए पंच ज्ञानेन्द्रिय रूपी ऊख या गन्ने को ज्ञान रूपी गंडासे से काट कर ध्यान रूपी कोल्हू पर रखना पड़ता है । इस प्रकार उसके रस को निकाल कर दोषरहित घट रूपी कढ़ाई या पात्र में डालकर यदि सहज रूपी अग्नि में पकाया जाए तो स्वर्ण-सदृश गुड़ तैयार हो जाएगा अर्थात् इन सब जटिलक्रियाओं को करने के पश्चात् राम रूपी अलौकिक गुड़ की प्राप्ति हो सकती है । इस प्रकार नामदेव भी सरल रूपकों का आश्रय लेकर सर्वसाधारण तक अपने विचारों को पहुंचा देते हैं ।

सन्त रैदास अपने मन को हरि की पाठशाला में पढ़ने के लिए प्रोत्साहित करते हैं --

चल मन हरि चटसाल पढ़ाऊं ।टेक।
गुरु की साटि ज्ञान का अच्छर,
बिसरै तौ सहज समाधि लगाऊं ।१।
प्रेम की पाटी सुरति की लेखनी,
ररौममौ लिखि आंक लखाऊं ।२।
येहि बिधि मुक्त भये सनकादिक,
हृदय बिदार प्रकास दिखाऊं ।३।
कागद कंवल मति-मसि करि निर्मल,
बिनरसना निसदिन गुन गाऊं ।४।
कह रैदास राम भजु भाई,
संत साखि दे बहुरि न आऊं ।५।

--सन्त रैदास, पद ७३

इस हरि-चटसाल(पाठशाला) में विद्यार्थियों को किस प्रकार शिक्षा प्रदान की जाती है, इसका वर्णन रैदास इसप्रकार करते हैं-- यहां गुरु की छड़ी के द्वारा ज्ञान रूपी अक्षर पढ़ाया जाता है, अक्षर के विस्मृत होने पर सहज समाधि लगा दी जाती है । प्रेम रूपी पटिया पर सुरति रूपी लेखनी से राम रूपी अंक लिखाया जाता है । इसी पाठशाला में इसी प्रकार पढ़कर सब मुक्त हो गए हैं । हृदय-कमल को कागद बनाकर उसमें मति रूपी निर्मल स्याही से बिन्या

की सहायता बिना ही दिनरात प्रभुगुण गाया जाता है । रैदास कहते हैं उपरोक्त विधि से जो तत्वज्ञान प्राप्त कर राम को भजता है, उसे लौटकर आने की आवश्यकता नहीं पड़ती है ।

सन्त देवाधिदेव श्री राम की आरती उतारते हैं परन्तु ऐसा करने के लिए उन्हें कहीं जाने की आवश्यकता नहीं पड़ती है,क्योंकि मन रूपी मन्दिर या देवालय में ही राम का निवास है । अत: उसी मन्दिर में अहंकार रूपी धूप जलाकर प्रेम रूपी माला राम को पहनाकर ज्योतिस्वरूप आत्मा का दीपक जलाकर, ज्ञानप्रकाश से चतुर्दिक आलोकित करके तन मन सर्वस्व न्योछावर करके हरि का गुणगान करते हैं --

संत उतारैं आरती देव श सिरोमनिए ।
उर अंतर तहां बैसे बिन रसना भनिए । टेक।
मनसा मंदिर मांहि धूप धुपइये ।
प्रेम-प्रीति की माल राम चढ़इये ।१।
चहुं दिसि दिवला बारि जगमग हो रहिये ।
जोति जोति सम जोति हिलमिल हो रहिये ।२।
तन मन आतम वारि तहां हरि गाइये री ।
भनत जन रैदास तुम सरना आइये री ।३। संत रैदास,पद८०

सन्त दादूदयाल को भी रूपक अलंकार अधिक प्रिय था,अत: उनकी रचनाओं में इस अलंकार के अनेक उदाहरण मिल जाते हैं । गुरु के महत्व का प्रतिपादन करते हुए दादू कहते हैं -- गुरु के उपदेशों को ग्रहण करके आचरण करने पर रामरूपी अमृत निकाला जा सकता है । गुरु का शब्द ही दूध है,जिसमें रामरस रूपी घृत छिपा रहता है । कोई साधु पुरुष ही इस दूध को मथने जाता है जो कि दूध को मथ कर उसमें से रामरस रूपी घृत को निकाल लेता है । गुरु के उपदेश द्वारा ही इस रहस्य का ज्ञान प्राप्त हो सकता है --

सबद दूध घृत रामरस, [illegible] ।
[illegible],

सबद दूध घृत राम रस, कोई साध बिलोवणहार ।

दादू अमृत काढिले, गुरमुख गहै बिचारि ।

--दादूदयाल ग्रन्थावली- साखी ९-३०

दादू जी संसार को नदी कहते हैं --

दरिया यहु संसार है, तामें राम नाम निज नाव ।

दादू ढील न कीजिये, यहु औसर यहु डाव ।।--दादू -साखी२-२७

यह संसार दरिया है उसमें राम नाम नाव है, संसार रूपी नदी को पार करने के लिए राम नाम रूपी नाव ही एकमात्र आधार है । इसलिए इस नाव को ऐसे समय तनिक भी ढील नहीं देना चाहिए, ऐसे कठिन समय में राम नाम का आधार छोड़ने पर मनुष्य संसार से मुक्ति नहीं पा सकता है ।

दादू हरि का नांव जल, मैं मीन ता मांहि ।

संगि सदा आनंद करैं, बिछुरत ही मरि जाहि ।।--दादू साखी२-६२

दादू हरि के नाम को जल कहते हैं और अपने को उस जल में रहने वाली मछली कहते हैं । हरि के संग तो वह आनन्द मनाते हैं,परन्तु उनका वियोग सहन नहीं कर पाते हैं ।

एक स्थान पर 'विचित्र बेली' का रूपक प्रस्तुत करते हुए दादू जी कहते हैं --

बेली आनंद प्रेम समाइ ।

सहजैं मगन रामरस पीवै, दिन दिन बधती जाइ।।टेक।।

सतगुरि सहजैं बाही बेली, सहज गगन घर छाया ।

सहजैं सहजैं कूंपल मेल्हे, जाणै अवधू राया ।।१।।

आतम बेली सहजैं फूलै, सदा फूल फल होई ।

काया बाड़ी सहजैं निपजै, बूझै बिरला कोई ।।२।।

मन हठ बेली सूकण लागी, सहजैं जुगि जुगि जीवै ।

दादू बेलि अमर फल लागै, सहजि सदा रस पीवै ।।३।।

--दादूदयाल ग्रन्थावली-पद-८-३६

भक्ति-बेलि आनन्द और प्रेम की वृद्धि करती है। मन को सहजावस्था में तल्लीन कर रामनाम रूपी जल से सींचने पर यह दिनोंदिन बढ़ती जाती है। गुरु ने सहज ही यह बेल लगाई और सहजस्थिति रूपी आकाशमण्डल में निवासस्थान बनाया। ब्रह्माण्ड साधना की युक्ति बताई। तब यह बेलि पल्लवित होने लगी जिसका रहस्य अवधूत योगी ही जान सकता है। आत्मसाधना रूपी बेलि सहजावस्था की प्राप्तिद्वारा फूल फल देती है। इस प्रकार शरीररूपी उद्यान में वह सहज ही फल प्रदान करती है। इसे कोई विरला ही जान सकता है। मन का बलपूर्वक निग्रह करने से यह बेलि सूखने लगती है,किन्तु सहज साधना द्वारा यह युग-युग तक जीवित रहती है। इस प्रकार इस बेलि में अमरत्व प्रदान करने वाला फल लगता है,जिसका रस सहजसाधना में ही मिलता है।

इसी प्रकार राग सोरठि का प्रथम पद भी रूपक का अच्छा उदाहरण है। इसमें किसी कोरी या जुलाहे के सूत कातने तथा वस्त्र बनाने की प्रक्रियाओं का स्पष्ट वर्णन किया गया है --

कोली साल न छाडै रे, सब घावर काढै रे ॥टेक॥
प्रेम पांण लगाई धागैं, तत तेल निज दीया।
येक मना इस आरंभि लागा, ग्यांन राछ भरि लीया ॥१॥
नांव नली भरि बुनकर लागा, अंतरगति रंगि राता।
ताणै बांणै जीव जुलाहा, परम तत सौं माता ॥२॥
सकल सिरोमणि बुणै बिचारा, सान्हां सूत न तोडै।
सदा सचेत रहै लिव लागा, ज्यूं टूटै त्यूं जोडै ॥३॥
ऐसैं तणि बुणि गहर गजीनां, सांई के मनि भावै।
दादू कोली करता कै संगि, बहुरि न भौजलि आवै ॥४॥

जीव रूपी कोली या जुलाहा वस्त्र बुनने की तैयारी करता है। वह बिनावट में रिक्त स्थान नहीं छोड़ता(भक्ति में कोई कमी नहीं करता) और सब उलझन(विक्षेप) निकालता जाता है। प्रेम रूपी माडी तागे में लगाकर उसे तत्त्वरूपी तेल से दृढ़ करता है, इस प्रकार एकाग्रचित्त होकर कपड़ा बुनना

आरम्भ करता है (नाम स्मरण आरम्भ करता है) । ज्ञान रूपी राछ (करघे का उपकरण) में सूत भरता है, नाम को नहीं भुलाता है । इस प्रकार आन्तरिक साधना के द्वारा परब्रह्म के प्रेम में अनुरक्त हो जाता है । वह इतना चतुर बुनकर है कि जुड़े हुए सूत (संलग्न वृत्ति) को कभी तोड़ता नहीं अर्थात् बराबर लौ लगा रखता है । ज्यों ही तागा(ध्यान) टूटता है वह उसे जोड़ लेता है । इस प्रकार अच्छा नगीना (उत्कृष्ट साधना) तैयार करता है,जो मालिक (परमात्मा) के मन को भा जाता है । इस प्रकार कोली रूपी जीव कर्ता का आश्रय लेकर पुन: इस भवसागर में नहीं आता है ।

सुन्दरदास उसी मनुष्य को शूरवीर कहते हैं,जो महाबलशाली अपने मन को अपने वश में रख सकता है । क्योंकि मन ही मनुष्य को इधर उधर ले जाता है और ईश्वरप्राप्ति के मार्ग में बाधक है । यह मन बलवान हाथी है,जिसे वश में रखना बहुत कठिन है --

महामत हाथी मन, राख्यो है पकरि जिन;
अति ही प्रचंड जामें बहुत गुमान है ॥
काम क्रोध लोभ मोह,बांधे चारों पांव पुनि;
छूटने न पावै नैक, प्राण पीलवान है ॥
कबहूं जो करै जोर, सावधान सांझ भोर;
सदा एक हाथ में, अंकुश गुरु ज्ञान है ॥
सुंदर कहत और, काहू के न वश होय;
ऐसो कौन शूरवीर, साधु के समान है ॥--सुन्दरविलास २१.१३

मन बहुत बड़ा अहंकारी मदमत्त हाथी है, इसे वश में रखना सरल कार्य नहीं है । ऐसे विशाल और अहंकारी हस्ती को जिसने बलपूर्वक पकड़ रखा है, वह वस्तुत: बहुत बड़ा वीर है । इस मन रूपी हाथी को वश में रखने के लिए यह आवश्यक है कि उसके चारों पैरों को बांधकर रखा जाए, काम,क्रोध लोभ मोह ही मन रूपी हस्ती के चार पांव हैं,जिन्हें वश में रखना बहुत आवश्यक है ।-प्राणरूपी हाथीवान उसे तनिक भी स्वतंत्रता नहीं देता, जिससे वह हाथी कहीं छूट न जाए । इस प्रकार दिन-रात उसकी चौकी रखना पड़ता है और गुरु का ज्ञान रूपी अंकुश सदैव हाथ में रखना ही है मन रूपी हस्ती को कठोर शासन में रखने के लिए ।

निर्लिप्त साधु के समान आत्मिक बल-सम्पन्न वीर पुरुष के ही वश में दुर्दम मन रूपी हस्ती रहता है सब के वश में नहीं होता ।

एक स्थान पर सुन्दरदास शरीर को दीपक कहते हैं--

देह शराव तेल पुनि मारुत, बाती अंतःकरण विचार ।
प्रगट ज्योति यह चेतन दीसै, जाते भयो सकल उजियार ।।

--श्री सुन्दरविलास,अंग २८.३१

अर्थात् शरीर ही दीपक है, तेल वायु है, बाती अंतःकरण है । शरीर रूपी दीपक अंतःकरण रूपी बाती के द्वारा वायु रूपी तेल से जलता है,जीवित रहता है । इस दीपक की ज्योति चेतन तत्व है, जिसके कारण ही सर्वत्र प्रकाश सम्भव है,अन्यथा देह रूपी दीपक तो निर्जीव है, चेतनतत्व ही रूपी ज्योति के वर्तमान रहने के कारण ही देहरूपी दीपक में उजाला है, यह जलता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि सुन्दरदास जी रूपकों के माध्यम से अपने आध्यात्मिक विचारों को पूर्ण दक्षता के साथ अभिव्यक्त कर देते हैं ।

हरिदास जी कहते हैं मन हरि का स्मरण नहीं करता, अपितु माया-मोह में उलझ कर समय नष्ट करता है --

मोह महल में मन `सोवै`, चिंता सोड़ बिछावै ।।
साधै की सज्या भई, मनसा जहां तहां धावै ।।
मनसा जहां तहां धाइ `सब` दिसि, त्रिविध बाधन संगि पटुवा ।।
दुख दोउ पावी पाथि मांहि, कुबधि कांटा डर अटुवा ।।
हरि नांव निरमल नीर न्यारा, करि मधि इमी मही यूं धोवै ।।
अन्यांन `असमाहि` पांच रस मधि, मोह महल में मन सोवै ।।

-- श्री हरिदास जी की वाणी- पद २.४

मोहरूपी महल में मन सोता रहता है अर्थात् अज्ञान रूपी निद्रा में मग्न रहता है । मन को सोने के लिए सभी उपकरण सहज रूप से सुलभ हैं-- चिंता रूपी चादर बिछाकर संशय रूपी खटुवा या खाट पर मन सोता है,

मन स्वतंत्र रूप से दसों दिशाओं में यत्र-तत्र घूमता रहता है, तीनों गुण रूपी शस्त्र उसके साथ लगे रहते हैं । परन्तु सुख शील रूपी साथी कभी साथ नहीं रहते, कुबुद्धि रूपी कांटा उसके हृदय में अटका रहता है । हरिनाम रूपी स्वच्छ अनुपम जल के द्वारा मलिनता का नाश करके पवित्र हो सकता है लेकिन अज्ञानी मन ईश्वर के नाम रूपी जल का आश्रय न लेकर साथ में लगी कालिमा को कालिमा से ही धोता है । अज्ञान रूपी स्थान पर पांच विषय-रसों का निवास है, इस प्रकार ऐसे स्थान में ऐसे दुर्जनों के साथ मिलकर मन माया-मोह में फंसा रहता है । अपने उद्धार के उपाय नहीं करता है ।

श्री जम्भनाथ जोगी का रूपक प्रस्तुत करते हुए कहते हैं कि मैं ही जोगी हूं जती हूं --

काया त कंथा मन जोगूं टो सींगी सास उसासूं ।
मन मृग राखिले कीकिले करसंण अम्हे मढा उदासूं ।
हमहीं जोगी हमहीं जती हमहीं सती हमहीं राखिबा च पिंडु ।
पांच पटण नव थांन सधिले आदिनाथ का भाटूं ॥

--जम्भवाणी: पद ५०

काया को कंथा (गुदड़ी) बनाया, मन को योगपट्ट बनाया, श्वास-प्रश्वास को सींगी बनाया, इस प्रकार योग के बाह्य उपकरणों की आवश्यकता नहीं रह गई । मन रूपी मृग को नियंत्रित करके साधना रूपी कृषि की रक्षा की । इस तरह मैं अच्छा खासा उदासी बना । मैं ही योगी जती हूं । पांच पत्तन (पंच विकार) तथा नव धाम(इन्द्रिय द्वार नियंत्रण प्राप्त किया) । इस प्रकार मैं आदिनाथ का सच्चा भक्त हूं ।

जाम्भोजी एक स्थान पर अद्भुत कृषिकर्म का वर्णन करते हुए कहते हैं कि इसमें पांच पुरुष ही खेत का कार्य करते हैं, गंगा जमुना दोनों रस्सियां हैं, इस खेती में सत्य संतोष रूपी दो बीजों को बोया जाता है । इस प्रकार की गई कृषि आकाश तक पहुंच जाती है, अब इस खेत की रखवाली करने के लिए चेतन रूपी रावल या राजा पहरे पर बैठकर यह देखता है कि कहीं पंच मनोविकार रूपी मृग खेती अनुपम खेती को चर तो नहीं जाते--

हलोली मड पालीलो, सिव पालीलो ।
खेत कहै सुन्य रानूं ।
चंद सूरि दोय बैल रचीलो गंग जमन दोय रासो ।
सत संतोष दोय बीज बीजिलो खेती खड़ी अकासी ।
चेतन रावळ पहरे बैठा मृगा खेती न चरि जाई ।
म्हेई अकाते केवळ ग्यानी थाय सिव पाईलो ।।

--जम्भवाणी- पद १०६

इस प्रकार जाम्भो जी विलक्षण हाली (कृषक) का वर्णन करते हैं, जिसकी खेती शून्य निर्जन स्थान में खड़ी है ।

यारी साहब भी ऐसी अद्भुत योगसाधना का वर्णन करते हैं, जिसमें योगी तत्वरूपी तिलक छापा धारण करके मन रूपी मुद्रा के द्वारा ब्रह्माण्ड की मेखला लेकर भंवर रूपी गुफा में अजपा जाप रूपी तिपाई या अधारी पर बैठकर योगसाधना करता है । ऐसे अनुपम योग के द्वारा योगी ज को सहज ही सिद्धि प्राप्त हो जाती है, किसी बाह्याडम्बर की आवश्यकता नहीं पड़ती--

तत तिलक छापा मन मुद्रा, अजपा जाप तिर पाई ।
भंवरगुफा ब्रह्मण्ड मेखला, जोग जुगति बनि आई ।।

-- यारी साहब की रत्नावली, भजन १०-४

भीखा साहब जगत् को समुद्र, मानव शरीर को नाव तथा गुरु को परम विश्वासपात्र केवट कहते हैं । गुरु रूपी केवट ही मानव शरीर रूपी नाव पर बैठे जीव को अथाह संसार रूपी सागर पार करा सकता है, अर्थात् मोक्ष प्रदान कर सकता है । हरि का नाम अमर जीवन प्राप्त कराने वाला अमृत है, जिसका एक बार स्वाद लेने पर मन नहीं भरता है, ऐसा अनुपम स्वाद है हरि के नाम रूपी अमृत का --

जग समुद्र नवका नर देही, कनिहर गुरु विस्वासी ।
अमृत हरि को नाम सजीवन, चाखत छकि न अघासी ।।

-- भीखा साहब की शब्दावली : उपदेश १६-३

भीखा साहब ऐसे ढंग से भांग बनाने के लिए कहते हैं जिस ढंग से बने हुए भांग का नशा कभी नहीं उतरता है --

काया कुंड बनाइ के घुमि घोटना देह ।
विषया बीज मिलाइ के निर्मल घोंटा लेह ।।
साफी सहज सुभाव को छानो सुरति लगाय ।
नाम पियाला छकि रहै अमल उतरि नहिं जाय ।।

-- भीखा साहब की शब्दावली--साखी १.२

शरीररूपी कुण्ड बनाकर उसमें भांग रूपी बीज मिलाकर घुमाकर घोटने से निर्मल घूंट तैयार हो जाता है । सुरति लगाकर सहज स्वभाव रूपी छन्ने से छानकर नाम रूपी प्याले में भर कर जो भांग पी जाता है, उसका नशा कभी नहीं उतरता, क्योंकि इस विधि से बनाया गया भांग अलौकिक भांग है, साधारण नहीं ।

गुरु नानकदेव की रचनाओं में भी रूपक अलंकार बहुत अधिक मात्रा में आए हैं । नानकदेव के रूपकों के विषय में डा० जयराम मिश्र लिखते हैं--'गुरु नानकदेव नैसर्गिक कवि थे । उनके काव्य में रूपकों के प्रयोग का बाहुल्य है । इन रूपकों के प्रयोग में वे अत्यधिक सफल और सचेष्ट रहे । गुरु नानक की वाणी में प्रयुक्त रूपकत्व से युक्त हैं । उन्होंने जीवन के साधारण व्यापारों से रूपकों को चुनकर अपूर्व आध्यात्मिकता, सांकेतिकता और गम्भीरता भर दी है । रूपकों के माध्यम से उन्होंने अध्यात्म के गूढ़ातिगूढ़ एवं सूक्ष्मातिसूक्ष्म रहस्यों को सुलझाने का प्रयत्न किया है । इन रूपकों में उनके पाण्डित्य, अनुभव कल्पना की त्रिवेणी प्रवाहित हुई है[1] ।' उदाहरणस्वरूप कुछ रूपक लिए जा सकते हैं--

---

1 डा० जयराम मिश्र : 'नानकवाणी', (भूमिका), पृ०७२ ।

जतु पाहारा धीरजु सुनिआरु । अहरणि मति वेदु हथीआरु ॥
भउ खला अगनि तपताउ । भांडा भाउ अंमृत तितु ढालि ॥
घड़ीऐ सबदु सची टकसाल । जिन कउ नदरि करमु तिन कार ॥

(नानक वाणी,जपुजी,पउड़ी ३८

गुरु का शब्द अथवा नाम रूपी सिक्का किस प्रकार ढालना चाहिए ? इसके लिए गुरु नानक जी निम्नलिखित विधि बताते हैं, 'संयम अथवा इन्द्रिय-दमन भट्ठी हो और धैर्य सोनार हो । बुद्धि निहाई तथा गुरु द्वारा प्राप्त ज्ञान-वेद हथौड़ी हो । गुरु अथवा परमात्मा का भय धौंकनी हो और तपश्चर्या ही अग्नि हो । प्रेम ही पात्र हो और नाम रूपी अमृत गलाया हुआ सोना हो । इस प्रकार सच्ची टकसाल-शुद्ध आत्मा में गुरु के शब्द रूपी सिक्के ढालने चाहिए ।'

दूध जमाने एवं दही मथने के रूपक द्वारा गुरु नानक ने आध्यात्मिक साधनों का बड़ा ही सुन्दर निरूपण किया है । उनका कथन है--' बरतन धोकर बैठकर (उसमें) धूप दो, तब फिर दूध लेने के लिए जाओ । (भावार्थ यह कि मन को पवित्र करके रोकने से ही शुभ कर्मों का सम्पादन हो सकता है) । शुभ कर्म ही दूध है, फिर सुरति (दूध जमाने के लिए) जामन है, (संसार से) निष्काम होकर दूध जमाओ ।..... इस मन की (नेती में बांधने की) गुल्ली बनाकर (उसे) हाथ में पकड़ो । (अविद्या में) नींद न आना ही (मथानी की) नेती हो, जिह्वा से नाम जपना ही, (दही) मथना हो । इस विधि से मक्खन रूपी अमृत प्राप्त करो' --

भांडा धोइ बैसि धूपु देवहु, तउ दूधै कउ जावहु ।
दूधु करम फुनि सुरति समाइणु होइ निरास जमावहु ॥१॥

....

इहु मनु ईटी हाथि करहु, फुनि नेत्रउ नींद न आवै ।
रसना नामु जपहु तब मथीऐ इन बिधि अंमृत पावहु ॥२॥

--नानकवाणी,सूही राग,शबद १

गुरु नानकदेव ने 'आरती' के रूपक द्वारा सगुण ब्रह्म के विराट स्वरूप का बड़ा ही मनोहारी चित्रण किया है --

गगनमैं थालु, रवि चंदु दीपक बने, तारिका मंडल जनक मोती ।
धूपु मलआनलो, पवणु चवरो करे, सगल बनराइ फूलंत जोती ॥१॥
कैसी आरती होइ भवखंडना तेरी आरती ।
अनहता सबद वाजंत भेरी ॥१॥ रहाउ ॥

--नानकवाणी, धनासरी, सबद ६

अर्थात् '(हे प्रभु, तेरी विराट् आरती के निमित्त) आकाश रूपी थाल में सूर्य और चन्द्रमा दीपक बने हुए हैं और तारामण्डल (उस थाल में) मोती के रूप में जड़े हैं। मलय चन्दन की सुगन्धि उस आरती की धूप है। वायु चँवर कर रहा है। हे ज्योतिस्वरूप (परमात्मा) वनों के खिले हुए समस्त पुष्प (तेरी आरती के निमित्त) पुष्प बने हैं। तेरी (सीमित) आरती कैसे हो सकती है? हे भवखण्डन तेरी आरती कैसे हो सकती है? (तेरी आरती में) अनाहत शब्द नगाड़े के रूप में बज रहा है।'

नानकदेव कृषि का रूपक प्रस्तुत करते हुए कहते हैं--

मनु हाली किरसाणी करणी सरमु पाणी तनु खेतु ।
नामु बीजु संतोखु सुहागा रखु गरीबी वेसु ॥
भाउ करम करि जंमसी से घर भागठ देखु ॥१॥

--नानक-वाणी : सोरठि, सबद २

'मन को हलवाहा (कृषक) करनी को कृषि (खेती का व्यवसाय) उद्यम अथवा श्रम को पानी तथा शरीर को खेत बनाओ, नाम को बीज तथा संतोष को अपना मान्य (बनाओ)। नम्रता (गरीबी वेश) की ही रक्षा करने वाली (बाड़) बना। भावपूर्ण कार्य करने से (वह बीज) जमेगा; (जो लोग इस प्रकार की खेती करते हैं) उनके घरों को भाग्यशाली देखोगे।'

एक स्थान पर नानकदेव कहते हैं--

सूहटु पिंजरि प्रेम कै बोलै बोलण हारु ।
सचु चुगै अंम्रितु पीवै उडै त एका वार ॥
गुरि मिलिऐ खसमु पछाणीऐ कहु नानक मोख दुआरु ॥

--नानक वाणी: राग मारू असटपदीआ २

'(हरी के) प्रेम के पिंजड़े में (पड़कर) (जीवात्मा रूपी) तोता प्रेम के बोल बोलता है । (वह प्रेम रूपी पिंजड़े) में सत्य रूपी (चारा) चुगता है और (परमात्मा के प्रेम रसरूपी) अमृत (काजल) पीता है और वह यहाँ से एक बार भी नहीं उड़ता, (तात्पर्य यह कि जीवात्मा रूपी तोते का जन्म-मरण समाप्त हो जाता है) । नानक कहते हैं कि गुरु से मिलकर पति (परमात्मा) को पहचानो, वही (गुरु ही) मोक्ष का द्वार है ।'

इस प्रकार हम देखते हैं कि सभी सन्तकवियों की रचनाओं में रूपक अलंकार के अनेक सुन्दर उदाहरण मिल जाते हैं ।

रूपकातिशयोक्ति

जब उपमेय और उपमान में अभेद स्थापित किया जाता है कि उपमेय का अस्तित्व ही लुप्त हो जाता है और केवल उपमान द्वारा उसका बोध होता है, तब रूपकातिशयोक्ति अलंकार होता है । इसमें उपमेय का उपमान में पूर्णतया अध्यवसान हो जाता है । रूपक के समान ही यह अलंकार भी सन्तकाव्य में अनेक स्थानों में प्रयुक्त हुआ है ।

उदाहरणस्वरूप कबीर-ग्रन्थावली का ७२ वां पद लिया जा सकता है --

> हरि नाम न जपहि गंवारा ।
> क्या सोचहि बारंबारा ।।टेक।।
> पंच चोर गढ़ मंझा । गढ़ लूटहिं दिवस अ संझा ।।.....

कबीर कहते हैं हे गंवार, हरि का नाम नहीं जपता ? क्या बारंबार सोच रहा है? गढ़ (शरीर) में पांच चोर (पंचविकार अथवा पांच ज्ञानेन्द्रियां) हैं जो उसे दिन रात लूटे रहे हैं (निरंतर शरीर को शक्ति क्षीण कर रहे हैं) । इसी पद में कबीर कहते हैं, यदि गढ़पति (मन) मुस्तैद हो तो (गढ़ को) कोई भी न लूट सके । अंधकार में दीपक (ज्ञानप्रकाश) चाहिए तभी अगोचर वस्तु (परम सत्य) मिल सकती है । जब अगोचर वस्तु मिल जाती है, तब दीपक का निर्वाण हो जाता है (तब ज्ञान की आवश्यकता भी समाप्त हो जाती है) । अगर दर्शन देखा चाहते हो (आत्मस्वरूप का साक्षात्कार करना चाहते हो) तो

दर्पण को मांजते रहना (निर्मल रखना) चाहिए । जब दर्पण में काई लग जाती है (चित्त में विकार आ जाते हैं) तब मुख नहीं देखा जा सकता (अपना सच्चा स्वरूप पहचाना नहीं जा सकता) । पढ़ने गुनने से क्या और वेद पुराण सुनने से क्या ? पढ़ने गुनने से क्या होता है अगर वह (परमात्मा या ज्ञान) सहज ही न मिल गया ? कबीर कहता है, मैं तो (तत्व) जान गया । मैं जान गया-- ऐसा मेरा मन पतिया गया (आश्वस्त हो गया) । प्रतीति जिसको हो गई है यदि उसका विश्वास कोई न करे तो उस अंधे(विश्वासहीन, विवेकहीन) का क्या किया जाये ? इस पद में केवल उपमानों के द्वारा उपमेय का बोध हो रहा है, जैसे गढ़ उपमान शरीर उपमेय के लिए आया है और पंच चोर पंच विकारों या पंच ज्ञानेन्द्रियों के लिए, गढ़पति मन के लिए,दीपक ज्ञान-प्रकाश के लिए, दर्पण चित्त के लिए, गढ़पति मन के लिए, दीपक ज्ञान-प्रकाश के लिए, दर्पण चित्त के लिए,काई विकारों के लिए आदि । अत: यहां रूपकातिशयोक्ति अलंकार है ।

प्राणनाथ जी एक स्थान पर कहते हैं --

बेड़ी पुराणी भार भारी, लगे था डुबां ।
यार सुजाणी नींद के, तु उथिए न मिड़ मंझा ।।

प्राणनाथ, किरंतन,प्रकरण १३६.६

नाव(शरीर) पुरानी है, भारी बोझा(कर्म) लदा है जिससे वह डूबने लगता है । कर्णधार (परमात्मा) के अनुग्रह का आधार लो और नींद छोड़कर उठो ।

हरिदास जी की वाणी में सन्तकवि हरिदास जी कहते हैं--

मन मन बावरे । मन बाव,
जरन लागी `भरमि` मुली, रहयी कार हुमाय ।।टेक।।
एक सुवटो उलटि बैठो, `बिरह` मोतरि आई ।।....

--हरिदास जी की वाणी- पद ६०

प्रस्तुत पद में रूपकातिशयोक्ति अलंकार है । यहां सुवटो (तोता) उपमान` मन` उपमेय के लिए प्रयुक्त हुआ है, उसी प्रकार बिरह(तृष्णा)

उपमान `संसार` उपमेय के लिए आया है, बघुर मिनो (बिल्ली) उपमान है `अविद्या वासना` उपमेय का, कलश है `मानव देह`, नीर है जीवन, पणिहारि उपमान है `अस्थिर बुद्धि` उपमेय का, पहर च्यार है उपमान है बाल,किशोर, तरुण,वृद्ध चारों अवस्थाएं उपमेय हैं, बाघुर उपमान का उपमेय है जीवन, रैंणि (रात्रि) उपमान `काल` उपमेय के लिए आया है । इस प्रकार यहां उपमानों के द्वारा उपमेय का बोध हो रहा है ।

अन्य कवियों के समान दादूदयाल जी की रचनाओं में भी रूपकातिशयोक्ति अलंकार अनेक स्थलों पर आया है । उदाहरणस्वरूप दादू जी की कुछ साखियां ली जा सकती हैं --

दादू जिसका द्रपन उजला, सो दरसन देखै मांहि ।
जिसकी मैली आरसी, सो मुख देखै नांहि ॥

--दादूदयाल - साखी १०-८२

यहां द्रपन या दर्पण उपमान `मन` उपमेय के लिए आया है । जिसका दर्पण उजला हो अर्थात् जिसका मन `निर्मल पवित्र` हो, वह अपने मन में ही प्रभु के दर्शन कर सकता है और जिसके मन में विकार हों छल कपट हों उसके अपवित्र मन में प्रभु के दर्शन नहीं हो सकते ।

एक अन्य साखी में दादूदयाल कहते हैं --

बीज दूध में रमि रह्या, व्यापक सबही ठौर ।
दादू कहता बहुत हैं, मथि काढै ते और ॥

--दादूदयाल - साखी १-३१

इस साखी में बीज उपमान है और `रामरस` उपमेय है जो यहां आया नहीं है, परन्तु जिसका बोध हो रहा है । इसी प्रकार दूध उपमान आया है `गुरु` के उपदेश` उपमेय के लिए ।

`रत्नावली` में नारी बाबक कहते हैं --

हरि जन जीवता नहिं मुआ ।।टेक।।
पांच तीन पचीस पायक, बांधि डारु कुआ ।।१।।
अष्ट दल के कमल भीतर, बोलता एक सुआ ।।
तोरि पिंजर उड़न-चाहत, प्रेम परगट हुआ ।।

-- यारी साहब की रत्नावली,भजन,शबद ७

परमात्मा के भक्त(चैतन्य) होते हैं,मृतक (जड़) नहीं होते हैं । पांच (मनोविकार),तीन(गुण) और पचीस(प्रकृतियां) पायकों को बांधकर कुएं में डाल दो(विनष्ट कर दो) । अष्टदल कमल में(अष्टचक्रों के शरीर में) एक शुक (जीवात्मा) बोल रहा है । वह परमात्मा के प्रेम में ऐसा अनुरक्त हो गया है कि इस पिंजरे (शरीर) को तोड़कर बाहर उड़ जाना चाहता है । शिवशक्ति का सम्मिलन हुआ और यम(काल) जुआ खेलता है ।(दांव हार जाता है)। कल्मष (पाप कर्म)नष्ट करके ब्रह्माग्नि की भट्ठी जलाई, तब हेम(कुण्डलिनी) शक्ति(सहस्रार) में प्रविष्ट होकर अमृतरस के रूप में निर्झरित होने लगा । आकाशमण्डल(परमात्मा) में चित्तवृत्ति तल्लीन हो गई जिससे अनाहद नाद होने लगा । यारी अपने को इस स्थिति के लिए उत्सर्ग करते हैं और गुरु का आशीर्वाद चाहते हैं ।

उत्प्रेक्षा

साहित्यकोश में उत्प्रेक्षा की परिभाषा इस प्रकार दी गई है-- सादृश्यगर्भ अभेदप्रधान अध्यवसाय अलंकार जहां प्रस्तुत में अप्रस्तुत की सम्भावना होती है । इस अलंकार में उपमेय या प्रस्तुत की उपमान या अप्रस्तुत रूप में संभावना की जाती है । सन्तकाव्य में उत्प्रेक्षा अलंकार का प्रयोग अधिक स्थलों पर नहीं हुआ है । कुछ उदाहरण इस प्रकार है--

कबीर तेज अनंत का, मानों लगी सूरिज सेनि ।
पति संगि जागी सुंदरी, कौतिग दीठा तेनि ।।

--कबीर ग्रन्थावली-साखी ६-१५

परमब्रह्म के अलौकिक कान्ति का वर्णन करने के लिए कबीर एक दो नहीं, वरन् अनेक सूर्यों की कल्पना करते हैं, उस 'सूरिज सेनि' का प्रखर प्रकाश ही सम्भवतः उस अनन्त के तेज को समझा सके । इसीलिए कबीर कहते हैं कि उस परमतत्व का तेज या प्रकाश ऐसा है मानो सूर्य सेना का उदय हुआ हो, एक ही सूर्य का प्रकाश कितना प्रखर होता है तो अनेक सूर्यों का प्रकाश कैसा होगा, यह तो कल्पना का विषय है । इस प्रकार यहां प्रस्तुत में अप्रस्तुत की सम्भावना की गई है ।

विभिन्न प्रकार के वचनों का वर्णन करते हुए श्री सुन्दरदास कहते हैं कि कुछ लोगों के वचन इतने मधुर होते हैं, जिनके सुनने से अतुल सुख मिलता है, क्योंकि ऐसे सुन्दर वचन मन को भाते हैं, इसलिए ऐसा लगता है, मानों फूल बरस रहे हों । इसके विपरीत कुछ लोगों के वचन इतने तीखे, अप्रिय अन्ततः कर्णकटु होते हैं कि ऐसा लगता है मानो तलवार बरस रहे हों । ऐसे वचन मर्मस्थल पर आघात पहुंचाते हैं । इस प्रकार यहां अप्रियवचन रूप प्रस्तुत की तलवार रूप अप्रस्तुत में संभावना की गई है --

एकन के वचन सुनत, अति सुख होय;
फूल से झरत हैं, अधिक मन भावने ।।
एकनि के वचन तो, असि मानो बरषत;
श्रवन के सुनत, लगत अलखावनें ।।--सुन्दरविलास--१४.५.१

वचनों के लिए पुनः सुन्दरदास कहते हैं--

बोलत राति दिवस, बकवादी रहत ऐसे;
जैसी विधि कूप में, बकत मानो भेक है ।।--सुन्दरविलास १४-८-३

कुछ लोग रात-दिन व्यर्थ ही बोलते रहते हैं जिस प्रकार कुंएं में मानों मेंढक बोल रहा हो । कानों को अप्रिय लगने वाली मेंढक की बोली कोई नहीं सुनता, ऐसे ही निरन्तर बोलने वाले की बेकार की बातों पर कोई ध्यान नहीं देता । ऐसे लोगों के वचनों का कोई महत्व नहीं है । निरर्थक बोलने वालों के वचन मानों मेंढक की बोली है । इस प्रकार यहां प्रस्तुत की अप्रस्तुत रूप में संभावना की गई है ।

रैदास एक स्थान पर कहते हैं--

रवि प्रकाश रजनी जथा, गति जानत सब संसार।

पारस मानो तांबो छुए, कनक होत नहीं बार ।।--रैदास-३८-१२

सूर्योदय होने पर रात्रि की जो गति होती है, उसको समस्त संसार जानता है । मानों तांबा पारसमणि के स्पर्श से क्षणमात्र में सोना बन जाता है और तनिक भी देर नहीं लगती ।

भीखा साहब सांसारिक सुखों को स्वप्न-सा असत्य मानते हैं । स्वप्न में देखी गई वस्तुएं असत्य होती हैं, स्वप्नभंग होने के पश्चात् इस तथ्य का ज्ञान होता है । पुत्र, व स्त्री, धन, गृह आदि का सुख तो मानो स्वप्नवत् सत्य है अर्थात् सर्वथा असत्य है । स्वप्न के समान असत्य है , ऐसा जानकर इनपर विश्वास करना चाहिए, इन्हें सत्य या शाश्वत नहीं समझना चाहिए । सांसारिक समस्त सुख मानो स्वप्नवत् हैं--

सुत कलित्र धन धाम सुख मानों सुपना को सो सांच ।।

सुपना को सो सांच मानि ताको पछितावा ।।

--भीखा साहब की शब्दावली, कुंडलिया १७.१

उदाहरण

जहां सामान्य रूप से कहे गए अर्थ को भलीभांति समझाने के लिए उसका एक अंश दिखाकर उदाहरण दिखाया जाता है, वहां उदाहरण अलंकार होता है । ज्यों, जस आदि उदाहरण-वाचक शब्द हैं । सन्तकवियों की रचनाओं में उदाहरण अलंकार अनेक स्थानों में आए हैं, क्योंकि जनसामान्य को उपदेश देने के लिए उदाहरणों का आश्रय लेना ही पड़ता है । उदाहरणों के माध्यम से इन सन्तों ने अपने विचारों को बड़ी सुगमतापूर्वक व्यक्त कर दिया है । इसीलिए सभी सन्तकवियों की रचनाओं में यह अलंकार अनेक स्थलों पर आया है । कबीरदास जी कहते हैं --

जैसे बहु कंचन के भूषन एकहिं घालि तवावहिंगे ।
ऐसे हम लोक वेद के बिछुरें सुन्निहिं माहिं समावहिंगे ।।
जैसे जलहिं तरंग तरंगिनी ऐसे हम दिखलावहिंगे ।
कहै कबीर स्वामी सुखसागर हंसहिं हंस मिलावहिंगे ।।

कबीर-ग्रन्थावली-पद ५७-५

यहां स्वर्णाभूषण तथा जल और लहरों का उदाहरण देकर पंचमहाभूतों का विलय तथा आत्मा का परमात्मा में एकाकार होना समझाया गया है । कबीर कहते हैं-- जैसे सोने के आभूषण एक ही पात्र में डालकर तपाए जाएं तो वह सब अन्त में गलकर कंचन या सोना हो हो जायेंगे, ठीक इसी प्रकार हम लोक वेद से बिछुड़ने पर शून्य में समा जायेंगे । जैसे जल में लहर लहरियां होती हैं ऐसे ही हम भी परमात्मा में मिलकर उसी के सदृश दिखलाई पड़ेंगे । आनन्दनिधान उस परमात्मा में हम आत्मा को मिला देंगे ।

मृत्यु को वरण करने वाले असहाय मनुष्य की दशा ठीक उस जुआरी के समान है, जिसने अपना सब कुछ जुए में खो दिया हो । जुआरी का उदाहरण देते हुए कबीर बड़े ही सुन्दर ढंग से अपनी बात कह देते हैं --

आवत संग न जात संगाती । कहा भयौ दरि बांधे हाथी ।
कहै कबीर अंत की बारी । हाथ झारि जैसें चला जुवारी ।।

--कबीर-पद ६६-५

अर्थात् मनुष्य आता भी अकेले है और जाता भी अकेले ही है कोई साथी साथ नहीं देता, इसलिए दरवाजे पर यदि हाथी बांध लिया तो क्या । सांसारिक ऐश्वर्य तो सब नश्वर हैं,क्योंकि अंतकाल जब आ पहुंचता है तब उस समय उसे सब कुछ छोड़कर अकेले ही ठीक उसी प्रकार चले जाना पड़ता है, जिस प्रकार कि एक जुआरी सब कुछ हार कर अपने हाथों को झाड़कर चला जाता है । सर्वस्व खोकर जाता हुआ जुआरी जितना असहाय है, उसी प्रकार मृत्युप्राप्त मनुष्य भी असहाय और अकेला है जो जीवन की बाजी हार कर एक दिन चला जाता है ।

सन्त नामदेव एक स्थान पर कहते हैं --

नामदेव प्रीति नराइंण लागी । सहज सुभाइ भए बैरागी ।
जैसी भूखे प्रीति अनाज । तृषावंत जल सेती काज ।
मूरिख नर जैसे कुटुंब पराइण ।ऐसो नामदेव प्रीति नराइण ।।

--नामदेव- पद ८१५.१

बैरागी नामदेव को नारायण से उसी प्रकार की सच्ची प्रीति है,जिस प्रकार की प्रीति भूखे की अनाज के प्रति होती है, प्यासे की जल से और मूर्ख मनुष्य की अपने कुटुम्ब से होती है,अर्थात् भूखे,प्यासे और मूर्ख मनुष्य की जिस प्रकार अपने अपने विषयों के प्रति तीव्र आसक्ति होती है, ठीक उसी प्रकार की तीव्र भक्ति भक्त को भगवान से होती है ।

'सुन्दरविलास' में उदाहरण अलंकार बहुत अधिक स्थानों में प्रयुक्त हुआ है । सुन्दरदास किसी एक बात को समझाने के लिए अनेक उदाहरण देते हैं --

लोहको ज्यों पारस, पषानहूं पलट लेत;
कंचन छुवत होत, जग में प्रमानिये ।।
द्रुम को ज्यों चंदन, पलटटो लगाय बास ;
आपके समान ताको, शीतलता आनिये ।।
कीटको ज्यों भृंगहू, पलट के करत भृंगि, भृंगि,
सोउ ह उडिजाय ताको, अचरज मानिये ।।
सुंदर कहत यह , सगरे प्रसिद्धबात,
सद्शिष्य पलटै, सो सद्गुरु जानिये ।।

जिस प्रकार पारस पत्थर लोहे को स्पर्श करके उसे स्वर्ण में परिवर्तित कर देता है, चन्दन दूसरे वृक्ष को सुगन्धि तथा शीतलता प्रदान करता है और भृंग जिस प्रकार दूसरे कीड़ों को अपने समान ही कर देता है, ठीक उसी प्रकार सद्गुरु उसे ही समझना चाहिए जो शिष्य को बदल देता है अर्थात् सद्शिष्य बना देता है । गुरु वही है जो शिष्य को सुधारने में समर्थ है । इस प्रकार यहां उदाहरण अलंकार के द्वारा सुन्दरदास ने अपनी बात सहज ढंग से समझा दिया है ।

दूसरों की निन्दा श्रवण करने में मनुष्य को बहुत आनन्द मिलता है । विशेषकर दुष्ट प्रकृति के लोगों का तो काम ही है, पर-निन्दा करना, उन्हें अपने में कोई अवगुण दिखाई नहीं देता । इसी बात को सुन्दरदास एक उदाहरण के द्वारा समझाते हैं --

अपने न दोष देखै, परके औगुन पेखै;
दुष्टको स्वभाव, उठि निंदाही करतु है ।।
जैसे कोई महल, संवारि राख्यौ नीक करि ;
कीरी तहां जाइ छिद्र, ढूंढत फिरतु है ।।

--सुन्दरविलास १०.१.१

दुष्ट व्यक्ति को अपने में कोई अवगुण दिखाई नहीं देता वह तो दूसरों में अवगुण देखता है, जिस प्रकार कोई महल बनाकर उसे सुन्दर ढंग से सजाकर रखे, परन्तु चींटी का स्वभाव है वह वहां जाकर छिद्र ही ढूढती फिरती है । इसी प्रकार मनुष्य भी प्रत्येक व्यक्ति में दोष खोजता है किसी के गुणों की ओर उसकी दृष्टि नहीं पहुंचती है ।

दादूदयाल अग्नि धूम का उदाहरण देते हुए कहते हैं--

दादू अगनि धोम ज्यूं नीकळे, देखत सबै बिलाइ ।।
त्यूं मन बिछुट्या राम सौं, दह दिसि बीखरि जाइ ।।

-- दादूदयाल --बानी १०-६०

दादू जी कहते हैं-- जिस प्रकार धूम अग्नि से निकल कर सर्वत्र फैल जाता है और फिर अदृष्ट हो जाता है, इसी प्रकार राम से बिछुड़कर मनुष्य का मन दसों दिशाओं में बिखर जाता है, अर्थात् वह मन इधर उधर घूमने लगता है । माया मोह में फंसकर राम से अलग हो जाता है । यहां अग्निधूप का उदाहरण देकर दादू जी ने मन की गति को समझाने का प्रयत्न किया है ।

नानक-वाणी में उदाहरण अलंकार कई स्थानों पर आया है । एक स्थान पर नानकदेव कहते हैं --

ध्रिगु जीवणु दोहागणी मुठी दूजै भाइ ।
कलरकेरी कंध जिउ अहिनिसि किरि ढहि पाइ ।।
बिनु सबदै सुखु ना थीऐ पिर बिनु दूखु न जाइ ।।

— नानक वाणी, सिरी राग १३-१

उस दुहागिन (पति से बिछुड़ी हुई) के जीवन को धिक्कार है, जो द्वैतभाव के कारण नष्ट हो जाती है । जिस प्रकार लोने की दीवार रात-दिन ढह-ढह कर गिर पड़ती है, उसी प्रकार दुहागिन स्त्री घुल घुल कर नष्ट हो जाती है । बिना शब्द नाम के सुख नहीं होता और बिना प्रियतम के दुःख नहीं जाता ।

नानक तिल बुआड़ के उदाहरण द्वारा यह समझाते हैं कि जो गुरु को उचित सम्मान नहीं देते और अपने-आपको बहुत योग्य समझते हैं, उनका जीवन व्यर्थ हो जाता है, क्योंकि गुरु के पथ-प्रदर्शन बिना मानव सुमार्ग पर नहीं चल सकता है--

नानक गुरु न चेतनी मनि आपणै सुचेत ।
छुटे तिल बुआड़ जिउ सुंञे अंदरि खेत ।।--नानक वाणी-राग आसा सलोक २-२

जो मनुष्य गुरु को नहीं चेतते और अपने मन में चतुर बने हुए हैं, वे इस प्रकार हैं, जैसे खाली, झूठे तिल सूने खेत में यों ही छोड़ दिए गए हैं, यह बुआड़ खाली तिलों का ऐसा पौधा है जो तिल-खेत में उगता तो है, परन्तु उसकी फलियों में तिल नहीं होते । गुरु के बिना मनुष्य का जीवन उसी प्रकार व्यर्थ है जिस प्रकार तिल बुआड़।

एक स्थल पर नाम्दो जी कहते हैं--

जबके दीठे दुलम रखाऊंठि, डंभनं रहुया उचाऊं ।
रिम जगे ज्यों बोहु कंचा, दुनिया मया उचाउं ।

--नाम्दो जी पद १०८-१-२

सहज आचरण करते हुए मन को सहजावस्था में पहुंचाना चाहिए । सहजावस्था में पहुंचकर मन स्वतः संसार से निरासक्त हो जाता है ।

जैसे सूर्योदय होने पर उल्लू तो अन्धा हो जाता है, लेकिन सारे संसार को प्रकाश मिलता है ।

पागल लड़के का उदाहरण देते हुए प्राणनाथ कहते हैं--

जैसे बालक बावरा, लेले हंसता रोए ।
ऐसे साधु शास्त्र में, सूझ ना समझा कोए ।।

--प्राणनाथ -कलस,प्रकरण २-१०

जैसे पागल लड़का हंसते रोते खेलता है, उसी प्रकार साधु सन्त के लिए शास्त्र में कोई शब्द सूझ नहीं है, वह उसे लड़कों का खेल समझता है । सन्तकवियों ने उदाहरण अलंकार का प्रयोग अनेक स्थलों पर इसी प्रकार किया है ।

दृष्टान्त

उपमेय,उपमान और साधारण धर्म का जहां बिम्ब प्रतिबिम्ब भाव होता है,वहां दृष्टान्त अलंकार होता है । इसमें उपमेय और उपमान वाक्य में बिना वाचक शब्द के समता दिखाई जाती है । सन्तकाव्य में दृष्टान्त अलंकार भी अनेक स्थानों में आया है, कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं --

मधु मखिता अपनी बिधि जानी । धन जोबन सुत दारा ।
बालू के मंदिर बिनसि जाहिंगे । झूठे करहु पसारा रे नर ।

--नामदेव-पद ६२-६

यहां नामदेव बालू के घर का दृष्टान्त देते हुए मनुष्यों को सचेत करते हैं कि वे सांसारिक ऐश्वर्य को तथा माया-मोह को अपना समझने की भूल कभी न करें,क्योंकि यह सब नश्वर है । धन,यौवन, पुत्र तथा स्त्री सभी बालू के घर हैं । जिस प्रकार बालू का मंदिर विनष्ट हो जाता है, ठहरता नहीं, उसीप्रकार संसार की सब वस्तुएं क्षणिक हैं ,मनुष्य भ्रमवश उन्हें अपना समझता है ।

इसी प्रकार कबीरदास जी की रचनाओं में भी दृष्टान्त अलंकार अनेक स्थलों पर आया है --

मानुष जनम दुर्लभ है , होइ न बारंबार ।
पाका फल जो गिरि परा, बहुरि न लागै डार ।।
-- कबीर ग्रन्थावली,साखी १५.५

मनुष्य जन्म दुर्लभ है, बार बार प्राप्त नहीं होता । पक्का फल एक बार भूमि पर गिर कर पुन: डाल पर नहीं लग सकता । इसमें पहला उपमेय वाक्य है और दूसरा उपमान ।

एक अन्य स्थल पर कबीर कहते हैं कि कि पापी को भक्ति अच्छी नहीं लगती,इसलिए हरि की पूजा में उसकी कोई रुचि नहीं होती,जिसकी जैसी प्रवृत्ति होती है वह उसी के अनुसार कार्य करता है । मक्खी चन्दन के सुगन्ध को त्याग कर उसकी उपेक्षा कर जहां दुर्गन्ध है,वहीं जाती है । यहां मक्खी का दृष्टान्त देते हुए कबीर दुर्जनों की प्रवृत्ति को समझाते हैं--

पापी भगति न भावई,हरि पूजा न सुहाइ ।
माखी चन्दन परिहरै, जंह बिगंध तंह जाइ।।--कबीर,साखी २७-२

कबीर कर्मों को महत्व प्रदान करते हैं,क्योंकि कर्मों के अनुसार ही मनुष्य की महानता आंकी जाती है । ऊंचे कुल में जन्म लेना व्यर्थ है जब तक कर्म ऊंचा न हो । अच्छे कर्म से ही मनुष्य अच्छा कहलाता है ,केवल बड़े कुल में जन्म लेने से कोई महान नहीं बन जाता । जिस प्रकार स्वर्ण कलश मे रखे रहने पर भी साधु मदिरा की निन्दा ही करेगा । उसको स्वर्ण-पात्र में रखने के कारण वह महत्व प्रदान नहीं करेगा,क्योंकि सत्पुरुष बुरा को कभी उत्तम पेय नहीं मान सकता । बुरा तो प्रत्येक स्थिति में निन्दा योग्य ही है, स्तुत्य नहीं है--

ऊंचे कुल क्या जनमिया, जे करनी ऊंचि न होइ ।
सोवन कलस सुरै भरा, साधुन निंदा सोइ ।।--कबीर-साखी३३-७

रैदास भी कहते हैं जब तक नदी समुद्र में मिल नहीं जाती तब तक उसकी गरज या बजने की आवाज शेष रहती है, एक बार समुद्र में समा जाने के बाद नदी की गरज शान्त हो जाती है और मन जब राम रूपी सागर में मिल

मिल जाता है, तब मनुष्य परमतत्व का शब्दों द्वारा वर्णन करना छोड़ देता है, शान्त हो जाता है, क्योंकि उस अद्भुत अनुभूति का वर्णन करना असम्भव है, वर्णन करने की इच्छा भी समाप्त हो जाती है--

जब लग नदी न समुद समावै, तब लग बढ़ै हंकारा ।
जब मन मिल्यो रामसागर सौं, तब यह मिटी पुकारा ।।
-- रैदास ४६.५

सुन्दरदास जी दृष्टान्तों के द्वारा सत्संगति की महिमा का वर्णन इस प्रकार करते हैं --

जा दिनते सत संग मिल्यो तब, ता दिनते भ्रम भाजि गयो है ।
और उपाय थके सबहीं तब, संतनि अदभुत ज्ञान दयो है ।
पोत प्रबालहिं क्यों करि कूकत, एक अमोलक लाल लह्यो है ।
कौन प्रकार रहै रजनीतम, सुंदर सूर प्रकाश भयो है ।।

अर्थात् जिस दिन से साधुओं का संग मिला है उस दिन से सभी प्रकार के भ्रम भाग गए हैं, अन्य उपक्रमों से तो कुछ लाभ हुआ नहीं है, इन सन्तों ने ही मुझे अदभुत ज्ञान प्रदान किया है । एक अमूल्य लाल को प्राप्त कर कोई कांच की मोती या मूंगे को क्यों कूकना ? पोत या मूंगा भला लाल की समता कहां कर सकता है, सुन्दर उज्ज्वल सूर्य के प्रकाशित होने पर अन्धकार रात्रि कैसे रह सकती है, अर्थात् ज्ञान प्रकाश जहां वहां अज्ञानांधकार कैसे रह सकता है । इस प्रकार यहां पोत और मूंगा तथा सूर्यप्रकाश और अन्धकार रात्रि का दृष्टान्त देकर कवि ने अपने कथ्य को समझाया है ।

दादूदयाल कहते हैं कि यदि हम राम को छोड़ दें या विस्मृत कर दें तो भी राम हमको नहीं छोड़ सकता । उमको या सनेही (प्यार करने वाला) अपने मन को कभी भी मन से वियुक्त नहीं रख सकता, उसका मन सदा मन ही की वस्तुओं में ही लगा रहता है । राम सदैव दीन के साथ ही रहते हैं--

जो हम छाड़ै राम कौं तौ राम न छाड़ै ।
दादू अमली अमल थे, मन क्यौं करि काढ़ै ।।--दादू साखी२.१२५

हरिदास जी बाह्याडम्बर वेशभूषा आदि को कोई महत्व नहीं देते हैं--

> संतो भाइ भेष पण मिस्या व्यापै, भजन भेद यहु मांझो ।
> बाहरि साहूकार कहावे, गांठी छोड़ा मांझो रे ।।
>
> --हरिदास,पद २०-१

हरिदास जी के अनुसार सन्त या साधु का मन स्वच्छ होना चाहिए । साधु वेश तो धारण कर लिया, परन्तु मन में वासनायें व्याप्त हों तो वह भक्ति नहीं है । कपटवेश धारण करके मिस्यापूर्ण हृदय से किया जाने वाला भजन वास्तव में भजन नहीं है,ढोंग है । बाहर से तो कोई साहूकार कहलाये परन्तु यथार्थ में उसकी गठरी में तत्व कुछ न हो । साधुवेशधारी व्यक्ति ऐसे साहूकार के समान हैं । इस प्रकार यहां हरिदास जी ने साहूकार के दृष्टान्त द्वारा कपटवेश-धारी साधु की निन्दा की है ।

अन्योक्ति

`साहित्य कोश में अन्योक्ति के लिए कहा गया है, `वह कथन` जिसका अर्थ साधर्म्य के विचार से कथित वस्तु के अतिरिक्त अन्य वस्तुओं पर घटाया जाये, उसकी संज्ञा अन्योक्ति है ।` दूसरे शब्दों में इसमें अप्रस्तुत या प्रतीक के माध्यम से प्रस्तुत का व्यंग्यात्मक कथन किया जाता है । अन्योक्ति सदा व्यंग्य-प्रधान ही होती है । सन्त कवियों की रचनाओं में यह अलंकार बहुत अधिक पाया जाता है ।

कबीरदास की रचनाओं में अन्योक्ति अलंकार के अनेक सुन्दर उदाहरण मिल जाते हैं --

> रैणाईर बिछोड़िया, रहु रे संष संष न झूरि ।
> देवलि देवलि धाहड़ी, देसी(देसै?) उगै सूरि ।।
>
> --कबीर,साखी २-६

यहां कबीर हंस को सम्बोधित करते हुए कहते हैं--रत्नाकर (समुद्र) से बिछुड़कर अर्थात् अलग होकर रे हंस । ठहरो,इतना मत झूमो क्योंकि सूर्योदय

होने पर मन्दिर मन्दिर जाकर दहाड़ा मारोगे, अर्थात् लोग तुम्हें फूंक-फूंक कर जब जलायेंगे तब तुम्हें गला फाड़कर चिल्लाना पड़ेगा । हंस को माध्यम बनाकर कबीर की यह उक्ति वस्तुत: उन जीवों के प्रति है,जो परमात्मा की उपेक्षा करके अपने अहंकार में डूबे रहते हैं, उन्हें यह नहीं मालूम है कि एक दिन जब उन्हें अपनी कुछ पता चलेगी तब वे सांसारिक कष्टों से दुखित होकर दहाड़ा मार कर रोयेंगे और तभी राम को पुकारेंगे ।

इसी प्रकार कबीरदास जी की एक बहुत प्रसिद्ध साखी अन्योक्ति का सुन्दर उदाहरण है --

माली आवत देखिके, कलियां करें पुकार ।
फूली फूली चुनि गईं, काल्हि हमारी बार ।।

--कबीर-साखी १६-३४

यह उक्ति भी सांसारिक जीवों को उद्देश्य करके की गई है, जिससे वे सचेत हो जायें और संसार को नश्वर जानकर उसमें आसक्त न हों । यह माली काल या मृत्यु है और कलियां जब जीवात्मायें हैं । जिनका समय हो गया है जो वृद्ध हो चुके हैं, उन्हें मृत्यु आज आज अपना ग्रास बना रही है और कल उनकी बारी है जो अपने को अमर मानकर निश्चिन्त बैठे हैं । अर्थात् मृत्यु तो अवश्यम्भावी है,काल किसी को आज लेकर जा रहा है तो किसी को कल लेने आयेगा ।

एक अन्य स्थान पर कबीर कहते हैं कि पांच पक्षी थे, जिनको पाल रखा था और सब प्रकार से जिनकी रक्षा की गई थी । एक शिकारी ऐसा आया जो सब पक्षियों को उठा ले गया । यहां शिकारी तो काल का प्रतीक है और पांच पखेरुवा पंच ज्ञानेन्द्रियों के प्रतीक हैं--

कबीर पांच पखेरुवा, राखे पोष लगाय ।
एक जु आयो पारधी, ले गयो सबै उड़ाय।। --कबीर,साखी १६-३७

दादूदयाल जी कहते हैं--

पंखुवा पड़े उतावला, पटाक वनखंड मांहि ।
चरियां मार्यों ढील की, दादू बेगि चरि जाहि ।--दादू दयाल,साखी २५-२६ ।

अर्थात सन्ध्या हो जाने पर जंगल मे राही शाघ्रता से चलने लगता है, क्योंकि उस समय आलस्य का अवसर नहीं, शाघ्र ही घर पहुंचना है । संध्या जीवन का अवसान काल है और बटाऊ जीव है, वनखंड जगत है । घरि या घर आत्मबोध है । यहां दादू जी ने यह उक्ति जीवात्मा के प्रति की है । बटाऊ के बहाने जीवन को ही संकेत किया गया है ।

नानक वाणी में अन्योक्ति अलंकार के जो उदाहरण मिलते हैं, उनमें प्रस्तुत 'सबद' भी एक सुन्दर उदाहरण है --

बिमल मझारि बससि निरमल जल पदमनि जावल रे ।
पदमनि जावल जल रस संगति संग दोख नहीं रे ।।
दादर तू कबहि न जानसि रे ।
भखसि सिबालु बससि निरमल जल अमृतु न लखसि रे ।
बसु जल नित न बसत अलीअल मेर चचा गुन रे ।
चंद कुमुदिनी दूरहु निवसनि अनुभउ कारनि रे ।
अमृत खंडु दूधि मधु संचसि तू बन चातुर रे । ।
अपना आपु तू कबहु न छोडसि पिसन प्रीति जिउ रे ।।

--नानक-वाणी, सबद रागमारू ४-६

नानक देव दादुर या मेंढक से कहते हैं कि हे दादुर, तू कमल की निर्लिप्त बुधि को नहीं जानता । तू भी सरोवर में निवास करता है पर अमृतजल को विशेषता नहीं जानता, तू सदैव सिवार या सेवाल का ही भक्षण करता है । दादुर तू नित्य जल में निवास करता है और भौरे वहां नहीं बसते, फिर भी वे भौरे कमल के गुणों की चर्चा में मग्न रहते हैं । चन्द्रमा और कुमुदिनी परस्पर कितनी दूर निवास करते हैं, किन्तु कुमुदिनी चन्द्रमा को देखकर आनन्द का अनुभव कर खिल उठती है । हे दादुर, अब तो तू चतुर बन और अमृत देव खण्ड दूध और मधु आदिक सुमधुर वस्तुओं का संग्रह कर । किन्तु तू अपने स्वभाव को कभी नहीं छोड़ेगा, जिस प्रकार कुत्ता और प्रीति पाकर भी अपने स्वभाव को नहीं छोड़ सकता । इस प्रकार यहां नानकदेव मेंढक के माध्यम से सांसारिक विषयों में आसक्त मनुष्यों को कहते हैं कि वे परमात्मा की समीपता का अनुभव करके उसकी भक्ति में लीन रहे और परमानन्द की अनुभूति करें । और अपने कुप्रवृत्तियों को

त्याग कर सुन्दर सात्विकी वृत्तियों का संचय करे ।

उल्लेख

उल्लेख अलंकार में किसी वस्तु का अनेक प्रकार से वर्णन या उल्लेख किया जाता है । सन्तकाव्य में इस अलंकार के कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं --

> बहु(मह) धन मेरे हरि के नांउ ।
> गांठि न बांधउ बेचि न खाउं ।।टेक।।
> नाउ मेरे खेती नाउ मेरे बारी । भगति करउं जन सरनि तुम्हारी ।।१।।
> नाउ मेरे माया नाउ मेरे पूंजी । तुमहिं छांड़ि जानउ नहिं दूजी ।।२।।
> नाउ मेरे बंधिप नाउ मेरे भाई । अंत की बेरियां नाउ सहाई ।।३।।
> नाउ मेरे निरधन ज्यूं निधि पाई । कहे कबीर जैसें रंक मिठाई ।।४।।
>
> -- कबीर ग्रन्थावली,पद २२

प्रस्तुत पद में कबीर द्वारा हरिनाम का अनेक प्रकार से वर्णन किया गया है ।हरि का नाम भक्त का धन है,खेती बारी है, माया और पूंजी है, बंधु और भाई है तथा मिठाई और समस्त निधि है ।

इसी प्रकार एक स्थानपर कबीर मन को गोरख,गोविंद और औघड़ कहते हैं --

> मन गोरख मन गोविंद, मन ही औघड़ होइ ।
> जौ मन राखै जतन करि, तौ आपैं करता सोइ।।
>
> --कबीर,साखी २६-६

दादूदयाल नारी को नागिनी,राक्षसी और बाघिनी कहते हैं--

> नारी नागणि राकसी, बाघणि बड़ी बलाइ ।
> दादू जे नर रत भये, तिनका सरबस खाइ ।।
>
> -- दादू, साखी ८२-१५०

नानकदेव गुरु को महत्व प्रदान करते हुए कहते हैं--

> गुरु दाता गुरु हिवै घरु दीपकु तिह लोइ ।।
> अमर पदारथु नानका मनि मानिऐ सुखु होइ ।।नानकवाणी राग माझ

नानक कहते हैं सद्गुरु (नाम के दान का) दाता है, गुरु ही हिम का घर है (अर्थात् परम शान्ति का भाण्डार है)। वही तीनों लोकों का (प्रकाश करने वाला) दीपक है। हे नानक (नामरूपी) अमर पदार्थ (गुरु से ही प्राप्त होता है)। (जिसका) मन गुरु से मान जाये, उसे (महान) सुख होता है। यहां गुरु को दाता, हिमगृह तथा दीपक कहा गया है।

नानक कहते हैं कि प्रभु आप ही कुंडा है, आप ही वजन है, आप ही तराजू हैं और आप ही (सबको) तौलने वाला है। (वह) आप ही देखता है, आप ही समझता है और आप ही वनजारा है--

आपे कुंडा तोलु तराजी आपे तोलणहारा।
आपे देखै आपे बूझै आपे है वणजारा ।।

--नानक वाणी सूहा ६-७

विभावना

जहां बिना कारण ही कार्य की उत्पत्ति हो। वहां यह अलंकार होता है। विभावना का अर्थ है विशेष प्रकार की कल्पना अर्थात् कारण के अभाव में कार्य की उत्पत्ति की कल्पना करना। उदाहरणस्वरूप सन्तकवियों की रचनाओं से कुछ छन्द छन्द लिए जा सकते हैं --

अवधू सो जोगी गुर मेरा।
जो या पद का करै निवेरा ।।टेक।।
तरवर एक पेड़ बिन ठाढ़ा बिन फूलां फल लागा।
साखा पत्र कछू नहिं वाकै अष्ट गगन मुख बागा ।।१।।
पग बिनु निरति करा बिनु बाजा जिभ्या हीणा गावै।
गावणहार के रूप न रेखा सतगुर होइ लखावै ।।२।।
पंषी का खोज मीन का मारग कहै कबीर बिचारी।
अपरंपार पार परसोतम वा मूरति की बलिहारी ।।३।।

-- कबीर, पद १०८

यहां बिना जड़ या मूल के तरवर या वृक्ष खड़ा हुआ है और उसमें बिना फूल के फल लगा हुआ है। उस वृक्ष की शाखाएं भी नहीं हैं

और पत्तियां भी नहीं हैं। हाथ,पैर और नाभ के अभाव में भी विभिन्न क्रियाएं हो रही हैं और रूपरेखाहीन कोई आने वाला है। इसप्रकार हमने देखा कि यह पद विभावना अलंकार का सुन्दर उदाहरण है।

कबीर की कई साखियों में भी इस अलंकार का उदाहरण मिल जाता है। निम्नलिखित साखी में जल के बिना ही कमल का खिलना पाया गया है--

कबीर मन मधुकर भया, करै निरंतर बास ।
कंवल ज फूला नार बिनु, निरखै कोइ निज दास ॥
--कबीर,साखी ६-२६

इसी प्रकार दादूदयाल बिना हाथों के ही रात दिन माला जपने की बात कहते हैं--

दादू सतगुर माला मन दीया, पवन सुरतिसौं पोइ ।
बिन हाथों निस दिन जपै, परम जाप यौं होइ ॥
-- दादूदयाल , साखी १ ६८

एक अन्य स्थान पर दादू जी एक ऐसे फल का वर्णन करते हैं जो बीज बाकला रहित है --

ऐसा एक अनूप फल, बीज बाकला नाहिं ।
मीठा निर्मल एक रस, दादू नैनहुं माहिं ॥--दादू,साखी४-८८

यारी साहब कहते हैं--

मन मेरा सदा खेलै नट बाजी, चरन कमल चित राजी ॥
बिनु करताल पखावज बाजै, अगम पंथ चढ़ि गाजी ।
रूप बिहीन सीस बिनु गावै, बिनु चरनन गति साजी ॥१॥
-- यारी साहब की रत्नावली,[illegible] शब्द १२

यहां भी कारण बिना ही कार्य के होने की कल्पना की गई है,जैसे-- पखावज का बजना, गाना, चलना आदि ।

भ्रान्तिमान्

जहां उपमान के समान उपमेय को देखने पर उपमान का निश्चयात्मक भ्रम हो वहां यह अलंकार होता है । दादूदयाल कहते हैं --

राम बिसारयो रे जगनाथ ।
हीरा हारयो देखत हीरे, कौड़ी कीन्हो हाथ ।।
कांच कुला कंचन करि जाने भूलो रे भ्रमपास ।
साचे सौं पल प्रेम नांही, करि काचे को आस ।।१।।
विष ताकों अमृत करि जानें, सो संगि न आवे साथ ।
सेंबल के फूलन परि फूल्यो, भूलो जम की घात ।।....

— दादूदयाल,पद २०-६

यहां भ्रमपाश में जकड़े हुए मनुष्यों का वर्णन हुआ है । ऐसे मनुष्य राम को भूलकर दूसरे सांसारिक विषयों के प्रति आसक्त रहते हैं, इसलिए वे भ्रमवश नश्वर वस्तुओं को शाश्वत समझ कर उनको लेने के लिए दौड़ते हैं । अत: दादू कहते हैं कि ऐसे मनुष्यों को कौड़ी में हीरे का भ्रम हो गया है अर्थात् सांसारिक विषय जो कि कौड़ी के समान है, उसी को वे हीरा समझ बैठते हैं । इसी प्रकार कांच में स्वर्ण का भ्रम हो गया है,इसलिए वे स्वर्ण जैसे अमूल्य पदार्थ की उपेक्षा करके कांच को पाने की ओर प्रयत्नशील रहते हैं । विष को अमृत समझने की भूल करते हैं । सेंबल के फूल को भ्रमवश फल समझकर धोखा खा जाते हैं उनको पाकर भी मनुष्य की तृष्णा समाप्त नहीं होती । व्यर्थ की वस्तुओं के पीछे भागने वाला व्यक्ति परम तत्त्व को खो देता है ।

इसी प्रकार माया मोह में फंसा हुआ मनुष्य भ्रमवश चिंतामणि जैसे अलौकिक रत्न को छोड़कर कंकड़ हाथ में लेकर प्रसन्न होता है लेकिन कंकड़ से कुछ मांगने पर वह देने में असमर्थ है, यह गुण तो केवल चिंतामणि में ही है । इसलिए दादू कहते हैं,हरि रूपी चिंतामणि को प्राप्त करने का प्रयत्न करो, माया रूपी कंकड़ का त्याग करो । यहां कंकड़ में चिंतामणि का भ्रम हो गया है --

चिंतामणि कंकर कीया, मांगे कछू न देइ ।
दादू कंकर डारि दे चिंतामणि कर लेइ ।। --दादू,साखी१२-९४०

सन्देह

किसी वस्तु को देखकर जब संशय उत्पन्न हो जाए और उसका सही ज्ञान न हो तो वहां सन्देह अलंकार होता है, इसमें किसी वस्तु को देखकर उसी के समान अन्य वस्तुओं की प्रतीति होने लगती है । धौं,किधौं,कैधौं, की, यो, अथवा आदि इसके वाचक शब्द हैं । उदाहरण के लिए सुन्दरदास जी का एक पद लिया जा सकता है --

हाथी को सो कान कीधौं, पीपर को पान कीधौं,
ध्वजको उड़ान कहूं, थिर न रहतु है ।।
पानीको सो घेर कीधौं, पौन उरफेर कीधौं;
चक्र कैसो फेर कोऊ, कैसे के गहतु है ।।
रहट को माल कीधौं, चरखा को ख्याल कीधौं;
फेरि तातौं बालक, ह सुधि न लहतु है ।।
धूम कैसो धाम तामो, रातभै को धाम देखो;
मनको स्वभाव यो, सो सुंदर कहतु है ।।--सुन्दरविलास,अंग ११-२०

यहां पर चंचल मन के लिए सुन्दरदास ने हाथी के कान, पीपल के पत्ते, फहराती हुई पताका, पानी के भंवर, हवा के बवंडर,पहिये का फेरा, रहट की माल, चरखा का ख्याल, चक्कर लगाता हुआ बालक, धुएं के धौह आदि चंचल उपमानों का सादृश्य किया है । यहां सन्देह अलंकार है, वाचक शब्द 'कीधौं' प्रयुक्त हुआ है ।

अर्थान्तरन्यास

अर्थान्तरन्यास अलंकार में सामान्य का विशेष से और विशेष का सामान्य से उदाहरणवत् समर्थन होता है । इसमें जब,ज्यों, जैसे वाचक शब्द नहीं प्रयुक्त होते हैं --

कबीर्षिणी बाहरि बहै, गंगा बहे अलाधि ।
जो है चाकर भावता, सो साथी के पासि ।। --कबीर ग्रन्थावली,साखी
२-२६

यहाँ सामान्य का समर्थन विशेष बात से किया गया है।
जो जिसको प्रिय है वह उसके पास है चाहे उससे कितनी दूर क्यों न हो,कुमुदिनी तो सरोवर में रहती है,लेकिन उसका प्रेम आकाश के चन्द्रमा से है ।

एक अन्य स्थान पर कबीर कहते हैं कि जो जिस तरह का संग करता है उसको वैसी प्रकार का फल मिलता है --

कबीर मनु पंषी भया, उड़ि उड़ि दह दिसि जाइ ।
जो जैसी संगति करै, सो तैसा फल खाइ ॥

--कबीर,साखी २४-३

यहाँ भी सामान्य का समर्थन विशेष से किया गया है ।

विशेषोक्ति

'साहित्यदर्पण' में कहा गया है -- जहाँ अविकल कारण के होते हुए भी कार्य का न होना वर्णित हो, वहाँ विशेषोक्ति अलंकार होता है । उदाहरणार्थ कबीरदास जी की यह साखी ली जा सकती है --

हिरदै भीतरि दौ बलै, धुवां न परगट होइ ।
जाकै लागी सो लखै, कै जिहि लाई सोइ ॥

--कबीर,साखी २-७

यहाँ अग्नि के रहते हुए भी धुआँ का अभाव दिखाया गया है । अग्नि के प्रज्ज्वलित होने पर धुआँ अवश्य उठेगा और लोगों को दिखाई भी देगा । यहाँ अग्नि से धुआँ उठ नहीं रहा है और वह अग्नि दो जनों के अतिरिक्त और किसी को दिखाई भी नहीं देगा । कारण के रहते हुए भी कार्य की अनुत्पत्ति कही गई है,अत: यहाँ विशेषोक्ति अलंकार है ।

विरोधाभास

वस्तुत: विरोध न रहने पर भी जहाँ विरोध का आभास हो,वहाँ विरोधाभास अलंकार होता है । सन्तकवियों की रचनाओं में इस अलंकार के अनेक उदाहरण मिल जाते हैं ।

कबीरदास की निम्नलिखित साखियां विरोधाभास अलंकार के सुन्दर उदाहरण हैं --

आगैं आगैं दौं जरै, पाछै हरियर होइ ।
बलिहारी तेहि बिरिछ की, जरि काटैं फल होइ ।।
जो काटौं तौ डहडही, सींचौं तौ कुम्हिलाइ ।
इस गुनवंती बेलिका, कछु गुन बरनि न जाइ ।।

--कबीरदास,साखी १३-१,२

दावाग्नि लगने के पश्चात् वृक्षों का झुलस जाना स्वाभाविक है,परन्तु यहां तो वे वृक्ष और हरे हो रहे हैं । यह काटने पर सूखने के बदले यह वृक्ष फल उत्पन्न कर रहा है । अतः यहां विरोधाभास अलंकार है । यहां विरोध का आभास हो रहा है,वस्तुतः है नहीं,क्योंकि इसका अर्थ कुछ दूसरा ही है-- दौं या दावाग्नि प्रेमविरहाग्नि की अग्नि है,जिसके प्रकट होने पर भक्तिलता हरी भरी होती है । यह सांसारिकता है,जिसका उच्छेद करने पर भक्तिलता फलवती होती है ।

इसी प्रकार दूसरी साखी में भी विरोध दिखाई दे रहा है,क्योंकि अन्य साधारण बेलियों के समान यह बेलि काटने पर सूखती नहीं, अपितु लहलहा उठती है और सींचने पर कुम्हला जाती है लहलहाती नहीं । इस विचित्र गुणवती बेलि के गुणों का वर्णन करना कठिन है । यहां भी विरोध का आभास हो रहा है,परन्तु विरोध है नहीं । प्रस्तुत साखी में कबीरदास जी के कहने का तात्पर्य यह है कि लौकिकता से सम्बन्धविच्छेद करने पर भक्ति की बेलि हरी भरी हो जाती है । विषय वासनाओं से सींचने पर यह मुरझा जाती है । इस प्रकार इस भक्ति बेलि के गुणों का वर्णन नहीं किया जा सकता है ।

दादूदयाल एक स्थान पर कहते हैं--

वा कहु मिलै न मैं सुखी, कहु क्यूं जीवनि होइ ।
जिनि मुझ कूं घायल किया, मेरी दारू सोइ ।।

--दादू,साखी ३-११

यहां कवि कहते हैं कि वे इसी का प्राप्त करके सुखी हो सकते हैं जिसने उन्हें घायल

किया है, क्योंकि वही उनकी औषधि है, अन्यथा वे सुखी नहीं हो सकते हैं। यहां विरोध का आभास हो रहा है, जिसने चोट पहुंचाई और मुझे घायल किया वही औषधि का कार्य कर सकता है, दूसरे किसी ढंग से मेरा चिकित्सा नहीं हो सकती है। परन्तु वस्तुत: विरोध है नहीं क्योंकि दादू जी के कहने का तात्पर्य यहां यह है कि उस परब्रह्म के विरह में मैं जल रहा हूं इसलिए इस विरह ज्वाला की समाप्ति तभी होगी जब ब्रह्म को मैं प्राप्त कर लूं। इसप्रकार यहां भी विरोधाभास अलंकार है।

यारी साहब कहते हैं--

बांबी उलटि सर्प को खाइ, ससि में मीन नहाई।
यारीनाथ सोहगुरु मेरा, जिन यह जुगति बताई।।

--यारी साहब, भजन,शब्द १०.५

यहां बांबी का सर्पको खाना तथा मछली का चन्द्रमा में स्नान करना, ये विरोधी बातें बताई गई हैं, किन्तु यहां वस्तुत: `बांबी` माया है, `सर्प` मन है, `मीन` कुण्डलिनी है, `चन्द्रमा` सहस्रार में स्थित शिव तत्त्व है, जिन्हें योगसाधना द्वारा मिलाया जाता है।

भी प्राणनाथ जी एक स्थान पर कहते हैं--

चींटी हस्ती को बैठी निगल, ताकी काहूं ना परी कल।
सनकादिक ब्रह्मा जो कहे, सोच मन चौक भये रहे ।।

-- प्राणनाथ प्रकाश प्रकरण ३२.४

यहां चींटी से तात्पर्य साधक मन से है और हस्ती से तात्पर्य कुबुद्धि या अज्ञान से है। साधक या ज्ञानी मन ने कुबुद्धि या अज्ञान के ऊपर विजय प्राप्त कर लिया है। यहां भी विरोध का आभास हो रहा है, अत: विरोधाभास अलंकार है।

विरोधाभास समन्वित उलटबांसियोक्ति

सन्तकवियों ने अपनी गुप्त साधना-पद्धति के प्रति जिज्ञासा जाग्रत करने के लिए तथा आध्यात्मिक तथ्यों को गोपनीय शैली में ही बताने की कामना से प्रेरित होकर जिस शैली का आश्रय ग्रहण किया, उसे हम विरोधाभास

से समन्वित रूपकातिशयोक्ति अलंकार के अन्तर्गत रख सकते हैं । ऐसी वाणियों को ही उलटवांसी कहा जाता है, जिनकी रचना सन्तकवियों ने प्रचुर परिमाण में की । कुछ उलटवांसियों को समझने के लिए बहुत अधिक माथापच्ची की आवश्यकता पड़ती है, किन्तु कुछ अत्यन्त सरस भी है और उनमें निहित आध्यात्मिक लक्ष्य सुग्राह्य हैं । कबीरदास जी की रचनाओं में विरोधाभास समन्वित रूपकातिशयोक्ति अलंकार के कुछ उत्कृष्ट उदाहरण इस प्रकार हैं--

मैं कातौं हजारी क सूत ।
चरखुला जिनि जरै ।।टेक।।
जल जाई थल ऊपनी आई नगर मैं आप ।
एक अचंभा देखिया बिटिया ब्याही बाप ।।१।।
बाबुल मेरा ब्याह करि बर उत्तिम ले चाह ।
जब लग बर पावै नहीं तब लग तूंही ब्याहि ।।२।।
समधी कै घरि लमधी आए आए बहु कै भाइ ।
चूल्है अगिनि बताइ करि चरखा दियौ दिढाइ।।३।।
सब जगही मरि जाइयौ एक बढइया जिनि मरै ।।
सब रांडनि को साथ चरखा, (चरखुला?) को धरै ।।४।।
कहै कबीर सो पंडित ग्यानी जो इ या पदहिं बिचारै ।।
पहिलै परचै गुर मिलै तौ पाछैं सतगुर तारै ।।५।।

--कबीर ग्रन्थावली, पद ११०

प्रस्तुत पद में हजारी सूत कातने का अर्थ है उत्कृष्ट भक्ति करना, चरखुला चित्त है जिसके एकाग्र होने की कामना कबीर की है । जीवात्मा का निर्माण जल (रजोवीर्य) से होता है, थल (मातृगर्भ) में उसका विकास होता है और फिर नगर या संसार में उसका प्राकट्य होता है । बिटिया जीवात्मा है जो बाप (ब्रह्म या शरीर) से परिणय करती है--यह अवश्य ही आश्चर्यचकित कर देने वाली घटना है । बाबुल गुरु हैं, उत्तम वर परमात्मा है, साधक गुरु से निवेदन करता है कि मुझे परमात्मा से मिला दो और जब तक वह न मिले तब तक तू ही मेरा मार्ग प्रदर्शन कर । समधी सुबुद्धि या

ज्ञान है और उसको भक्तिभाव है, बहु बक का माई अनुभव है, बुलका चित है और अग्नि वासना की अग्नि है, जिसको बुझा देने पर चित रूपी बत्ती में बुझता आ जाती है । कवि का कहना है कि चाहे सारा संसार मर जाए पर बढ़ई रूपी गुरु न मरे जो सभी विषमताओं या अज्ञानी जीवात्माओं के बदले या चित की देखभाल करता रहता है । इस प्रकार यहां कबीर अनेक विरोधी बातों के द्वारा अपने विचारों को व्यक्त करते हैं, वस्तुत: विरोध है नहीं उसका आभासमात्र हो रहा है । यहां रूपकातिशयोक्ति अलंकार भी है, अत: विरोधाभास समन्वित रूपकातिशयोक्ति अलंकार है ।

कबीर ग्रन्थावली का १३७ वां पद भी इसी अलंकार का उदाहरण है--

> है कोई ग्यानी जगत महिं उलटि बेद बूझै ।
> पनिया महि पावक बरै अंधे आंखिन सूझै ।।टेक।।
> गाइ नाहर खाय्यौ हरिनि खायौ चीता ।
> काग लंगर फांदिया बटेरै बाज जीता ।।१।।
> मूस तौ मंजार खायौ स्यालि खायौ स्वाना ।
> आदि कौ उदेस जानै तासु बेस बाना ।।२।।
> एक ही दादुर खायौ पांच हूं भुवंगा ।
> कहै कबीर पुकारि कै हं दोऊ एक संगा ।।३।।

प्रस्तुत पद में अनेक विरोधी बातों का वर्णन है, जैसे--पानी में अग्नि, अंधे की आंखों से दिखाई देना, गाय का नाहर को खाना, हरिण का उलटे चीता को खाना, कौए का लंगर फांदना, बटेर का बाज को जीतना, चूहे का बिल्ली को खाना, सियार का कुत्ते को खाना तथा मेंढक का पांच सर्पों को खाना आदि । यहां जल में अग्नि प्रज्ज्वलित होने का तात्पर्य है--अन्त:करण में ज्ञानविरह की अग्नि का प्रज्ज्वलित होना । अन्धा वस्तुत: अन्तर्मुखी साधना करने वाला है, गाय तथा सिंह, हिरण तथा चीता, काक काग तथा लंगर, बटेर तथा बाज, चूहा तथा मार्जार, श्वान तथा सियार क्रमश: मन तथा काल के द्योतक हैं अर्थात् अन्त:करण में ज्ञान विरह की अग्नि प्रज्ज्वलित होने पर मन कालजयी हो जाता है । अंतिम पंक्तियों में दादुर मन है और पांच भुजंग पंच

मनोविकार हैं, जिनका निवास एक ही मानव शरीर में रहता है,किन्तु स्थितप्रज्ञ मन पंच मनोविकारों को नष्ट कर देता है ।

कबीर ग्रन्थावली की निम्नलिखित साखियां भी विरोधाभास समन्वित रूपकातिशयोक्ति अलंकार का सुन्दर उदाहरण हैं --

समुंदर लागी आगि, नदियां जलि कोइला भई ।
देखि कबीरा जागि, मंछी रूषां चढ़ि गई ।।

--कबीर,साखी २-५४

इस साखी में समुद्र में आग का लगना और नदी का जलकर कोयला होना तथा मछली का वृक्ष पर चढ़ जाना आदि विरोधी बातों का वर्णन हुआ है । यहां भी समुद्र में आग लगने का तात्पर्य है अन्त:करण में प्रेम-विरह की अग्नि प्रज्ज्वलित होना । नदी चंचल मनोवृत्ति है उसका जलकर कोयला हो जाना चंचलता विनष्ट हो जाना है । मछली चित्तवृत्ति या सुरति है और वृक्ष परमात्मा की ओर उन्मुख होने की स्थिति है ।

इसी प्रकार एक अन्य साखी में कबीरदास जी कहते हैं --

आकासे मुखि औंधा कुवां, पाताले पनिहारि ।
ताका जल कोई हंसा पीवै, बिरला आदि बिचारि ।।

--कबीर,साखी ६-३८

प्रस्तुत साखी में आकाश में उल्टे मुख वाले कुएं का वर्णन है,कुआं तो आकाश में उल्टा लटका है और जल भरने के लिए पनिहारी पाताल में है,इस कुएं का जल कोई हंस ही पी सकता है । इस प्रकार यहां भी सर्वथा विरोधी बातों का वर्णन किया गया है, किन्तु इसका सांकेतिक अर्थ यह है कि मस्तक में सहस्रार के नीचे ब्रह्मरन्ध्र है और वहां के अमृतरस का पान करने वाली कुण्डलिनी नीचे मूलाधार चक्र में है,जो योगसाधना द्वारा कुण्डलिनी को जाग्रत कर ऊपर सहस्रार तक ले जाने की युक्ति जानता है वही उसे अमृतपान करा सकता है ।

सन्त नामदेव जी कहते हैं :--

देव तेरा नीसाण बाज्या हो ।

....

सिंघ भागा पूठि फेरी बाण लागो छेरिया ।

बाहरि जाता भीतरि पेख्या नामे मनातिनि बैरिया ॥२॥

—नामदेव,पद ६८

यहां सिंह संशय है जो पीठ फेरकर दूर भाग गया है और बकरी जीवात्मा है जो ज्ञान प्राप्त करने पर संशय रूपी सिंह को समाप्त कर देती है । नामदेव कहते हैं कि ऐसा तब घटित होता है, जब मन की बहिर्मुखी वृत्तियां अन्तर्मुखी हो जाती हैं । यहां भी विरोधाभास समन्वित रूपकातिशयोक्ति अलंकार है ।

निष्कर्ष

इसप्रकार हमने देखा कि सन्तकाव्य में अप्रस्तुतों के सन्दर्भ में अनेक अलंकार प्रयुक्त हुए हैं,सादृश्यमूलक अलंकारों का प्रयोग अधिक हुआ है । विरोधमूलक अलंकारों का प्रयोग भी कहीं-कहीं हुआ है । सन्तकवियों की रचनाओं में आए हुए अलंकार उनके भावों की अभिव्यक्ति में सर्वत्र सहायक हुए हैं । ये अलंकार अत्यन्त स्वाभाविक रूपमें प्रयुक्त हुए हैं, इनमें दुरूहता कहीं भी नहीं आ पाई है । रूपक और रूपकातिशयोक्ति अलंकार का प्रयोग सबसे अधिक हुआ है, इसके पश्चात् उपमा,उदाहरण,दृष्टान्त का भी प्रयोग अनेक स्थलों पर हुआ है । अन्योक्ति, श्लेष तथा विभावना अलंकार भी कई स्थानों पर आए हैं । इनके अतिरिक्त उत्प्रेक्षा, सन्देह,भ्रान्तिमान्,अर्थान्तरन्यास,विशेषोक्ति आदि अलंकार भी कहीं-कहीं आ गए हैं । सन्तकवियों को विरोधाभास अलंकार का आश्रय कई स्थानों पर लेना पड़ा है, जहां उनको अपनी साधना -पद्धति का वर्णन करने की आवश्यकता हुई है,वहां इन कवियों के कथनों को विरोधाभास समन्वित रूपकातिशयोक्ति अलंकार के अन्तर्गत रखा जा सकता है ।

'हिन्दी साहित्य' में सन्तकवियों के अलंकारों के विषय में कहा गया है--'इन संत कवियों में काव्योत्कर्ष तो नहीं था तो अलंकारों का साभिप्राय प्रयोग उनकी रचनाओं में आ ही नहीं सकता । किन्तु उन्होंने अलंकारों का प्रयोग अपने विचार-निरूपण में अवश्य किया है । जिस विचार को वे जनता के सामने रखना चाहते थे अथवा किसी वस्तुस्थिति से उसका साम्य उपस्थित करते थे, तो उनके इस प्रयोग में उपमा, रूपक, यमक, दृष्टान्त, अर्थान्तरन्यास आदि अलंकार सहज ही आ जाते थे, किन्तु वे इन अलंकारों में काव्य-सौन्दर्य देखने की अपेक्षा अपने भावों का स्पष्टीकरण ही देखते थे।'[1]

--0--

---

1. सम्पादक धीरेन्द्र वर्मा, ब्रजेश्वर वर्मा 'हिन्दी साहित्य', पृ०२३४ ।

अध्याय -- ७

-0-

सन्तकाव्य में प्रयुक्त उपमानों का सांस्कृतिक मूल्यांकन

संस्कृति और उसका अर्थ

'संस्कृति' शब्द सम् उपसर्ग के साथ संस्कृत की(डु) कृ(ञ्) धातु से बनता है, जिसका मूल अर्थ साफ या परिष्कृत करना है।[1] 'प्रामाणिक हिन्दी कोश' में संस्कृति के अर्थ को समझाते हुए कहा गया है-- मन, रुचि, आचार-विचार, कला-कौशल और सभ्यता के क्षेत्र में बौद्धिक विकास का होना ही संस्कृति है।[2] आप्टे के 'संस्कृतकोश' में 'संस्कृ' धातु के विभिन्न अर्थ बताए गए हैं, जैसे-- सजाना, संवारना, परिष्कृत करना आदि।[3] 'किसी देश या समाज के विभिन्न जीवन-व्यापारों में या सामाजिक सम्बन्धों में मानवता की दृष्टि से प्रेरणा प्रदान करने वाले उन आदर्शों की समष्टि को ही संस्कृति समझना चाहिए। समस्त सामाजिक जीवन की समाप्ति संस्कृति में होती है। विभिन्न सम्प्रदायों का उत्कर्ष तथा अपकर्ष

---

1 'हिन्दी साहित्य कोश', पृ०७४८।

2 श्री रामचन्द्र वर्मा : 'प्रामाणिक हिन्दी कोश', पृ०११५६।

3 आप्टे : 'संस्कृत कोश', पृ०२७।

संस्कृति द्वारा ही जाना जाता है । उसके द्वारा ही लोगों को संघटित किया जाता है । इसीलिए संस्कृति के आधार पर ही विभिन्न धर्मों, सम्प्रदायों एवं आचारों का समन्वय किया जाता है[1] । वाजसनेयि संहिता में संस्कृति का अर्थ- सम्पूर्णता और तैयार होना है, ऐतरेय ब्राह्मण में निर्माण तथा भागवतपुराण में पवित्रता अर्थ किया गया है[2] । साहित्यकोश में कहा गया है-- आज की हिन्दी में यह अंग्रेजी शब्द `कल्चर` का पर्याय माना जाता है, `संस्कृति` शब्द का प्रयोग कम-से-कम दो अर्थों में होता है-- एक व्यापक और एक संकीर्ण अर्थ में । व्यापक अर्थ में उक्त शब्द का प्रयोग नर-विज्ञान में किया जाता है । उक्त विज्ञान के अनुसार संस्कृति समस्त सीखे हुए व्यवहार अथवा उस व्यवहार का नाम है, जो सामाजिक परम्परा से प्राप्त होता है । इस अर्थ में संस्कृति को `सामाजिक प्रथा` (कस्टम) का पर्याय भी कहा जाता है । संकीर्ण अर्थ में संस्कृति एक वांछनीय वस्तु मानी जाती है और संस्कृत व्यक्ति एक श्लाघ्य व्यक्ति समझा जाता है । इस अर्थ में संस्कृति प्रायः उन गुणों का समुदाय समझी जाती है, जो व्यक्तित्व को परिष्कृत एवं समृद्ध बनाते हैं[3] ।

डा० वासुदेवशरण अग्रवाल जागरूकता एवं पूर्व और नवीन के मेल को संस्कृति के लिए आवश्यक मानते हुए कहते हैं--`धर्म और सत्य के मूर्तिमान रूप को संस्कृति कहते हैं । ऋग्वेद में यह `धर्म` शब्द सबसे पहले मिलता है । `धर्म` शब्द संस्कृत की `धृ` धातु से बना है, जिसका अर्थ है धारण करना या संभालना । अथर्ववेद में पृथ्वी को `धर्मणा धृता` अर्थात् धर्म से धारण की हुई कहा गया है । लेकिन इसी युग में धार्मिक विश्वासों एवं मान्यताओं के लिए भी इस्तेमाल किया गया है । व्यास जी के अनुसार न केवल अर्थ बल्कि काम भी धर्म पर आश्रित है और राज्य या स्टेट भी धर्ममूलक हैं । वाल्मीकि चरित्र को ही धर्म मानते हैं ।

---

१ विद्याधर : `मानवी-साहित्य में [illegible]`,पृ०३४३ ।
२`संस्कृत इंगलिश डिक्शनरी`, पृ० ११२१ ।
३`हिन्दी साहित्य कोश`,पृ०८५८ ।

वाल्मीकि के लिए चरित्र और[1] धर्म पर्यायवाची हैं । वे कहते हैं कि 'धर्म को साक्षात् देखना चाहो तो राम को देखो ।' इस प्रकार कहा जा सकता है कि संस्कृति का अर्थ पहले धर्ममूलक था । फिर राष्ट्रमूलक हुआ ।[2] किन्तु कालान्तर में उसका अर्थगत विकास समाजमूलक प्रवृत्ति की ओर अग्रसर होता गया । डा० श्यामसुन्दरदास संस्कृति को रहन-सहन की रुढ़ि कहते हैं । डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी इस विषय पर अपना मत प्रकट करते हुए कहते हैं --'नाना प्रकार की धार्मिक साधनाओं, कलात्मक प्रयत्नों और सेवा, भक्ति तथा योगमूलक अनुभूतियों के भीतर से मनुष्य उस महान सत्य के व्यापक और परिपूर्ण रूप को क्रमशः प्राप्त करता जा रहा है, जिसे हम 'संस्कृति' शब्द द्वारा व्यक्त करते हैं । यह 'संस्कृति' शब्द बहुत अधिक प्रचलित है तथापि यह अस्पष्ट रूप में ही समझा जाता है । इसकी सर्वसम्मत कोई परिभाषा नहीं बन सकी है । प्रत्येक व्यक्ति अपनी रुचि और संस्कारों के अनुसार इसका अर्थ समझ लेता है । परन्तु इसको एकदम अस्पष्ट भी नहीं कह सकते, क्योंकि प्रत्येक मनुष्य जानता है कि मनुष्य की श्रेष्ठ साधनाएं ही संस्कृति हैं ।[3] 'दिनकर' भी कहते हैं--' संस्कृति शारीरिक या मानसिक शक्तियों का प्रशिक्षण , दृढ़ीकरण या विकास अथवा उससे उत्पन्न अवस्था है । यह 'मन' आचार एवं रुचियों की परिष्कृति या शुद्धि है ।.... यह सभ्यता का भीतर से प्रकाशित हो उठना है । इस अर्थ में[4] संस्कृति कुछ ऐसी चीज का नाम हो जाता है, जो बुनियादी और अन्तर्राष्ट्रीय है । श्री हिरेन्द्रनाथदत्त कहते हैं[5] कि जातिविशेष के आन्तरिक भावों की अभिव्यंजना को ही संस्कृति कहा जाता है ।'

संस्कृति के सम्बन्ध में उपर्युक्त विचारों के आधार पर निष्कर्षरूप में कहा जा सकता है कि युगानुरूप संस्कृति का अर्थविस्तार और अर्थ-संकुचन हुआ है । यही कारण है कि संस्कृति, विवेचकों की दृष्टि में अपने बाह्य और

---

१ डा० वासुदेवशरण अग्रवाल : 'कला और संस्कृति', पृ०१७६-१८१ ।

२ विद्याधर : 'जायसी साहित्य में अप्रस्तुतयोजना', पृ०२४५ ।

३ आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी: 'अशोक के फूल', पृ०६३ ।

४ डा० रामधारी सिंह दिनकर: 'संस्कृति के चार अध्याय', प्रस्तावना, पृ०५ ।

५ हिरेन्द्रनाथ दत्त : 'इण्डियन कल्चर', पृ०४ ।

आन्तरिक दोनों रूपों में मान्य रहो है । जहां तक बुद्धि-पक्ष का प्रश्न है, उसके सांस्कृतिक तत्व के चिन्तन एवं दार्शनिक पक्ष का रूप मुखर होता है । दूसरी ओर उसके भावपक्ष के अन्तर्गत काव्य,संगीत, नृत्य,नाट्य,चित्रमूर्ति आदि कलाओं का सांस्कृतिक सम्पन्नता के लिए महत्वपूर्ण स्थान है । संस्कृति की इसी व्यापक परिधि के अन्तर्गत धार्मिक विश्वास एवं मान्यताएं, रीति-रिवाज,कला-कौशल, नैतिकता, नियम, आचार-विचार, खान-पान आदि मान्यताओं का अध्ययन किया जाता है । आचार-विचार और खान-पान के कारण ही समस्त देश की संस्कृति में भिन्नता पाई जाती है ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि संस्कृति के सम्बन्ध में विभिन्न लोगों ने अनेक विचार व्यक्त किए हैं । मानव जाति के विकास को,चिन्तन एवं कलात्मक सर्जन की क्रियाओं को संस्कृति समझा जाता है, यह संस्कृति मानव जीवन को सुन्दर एवं समृद्ध बनाती है । "इस दृष्टि से हम विभिन्न शास्त्रों, दर्शन आदि में होने वाले चिन्तन,साहित्य,चित्रांकन आदि कलाओं एवं परहितसाधक आदि नैतिक आदर्शों तथा व्यापारों को संस्कृति की संज्ञा देंगे । मोक्ष धर्म अथवा पूर्णत्व की खोज भी संस्कृति का अंग मानी जायगी । थोड़े शब्दों में और व्यापक अर्थ में किसी देश की संस्कृति से हम मानव-जीवन तथा व्यक्तित्व के उन रूपों को समझ सकते हैं,जिन्हें देश-विशेष में महत्वपूर्ण अर्थात् मूल्यों का अधिष्ठान समझा जाता है ।"[1]

संस्कृति और सभ्यता

सभ्यता से तात्पर्य उन आविष्कारों, उत्पादन के साधनों एवं सामाजिक-राजनीतिक संस्थाओं से समझना चाहिए, जिनके द्वारा मनुष्य की जीवन-यात्रा सरल एवं स्वतन्त्रता का मार्ग प्रशस्त होता है । इसके विपरीत संस्कृति का अर्थ चिन्तन तथा कलात्मक सर्जन की वे क्रियाएं समझनी चाहिए,जो मानव व्यक्तित्व और जीवन के लिए साक्षात् उपयोगी न होते हुए उसे समृद्ध बनाने वाली है ।[2]

---

१. 'हिन्दी साहित्य कोश',पृ०८१२ ।
२. वही पृ०८१८ ।

इसलिए सभ्यता और संस्कृति में अन्तर किया जाना चाहिए । परन्तु ये दोनों परस्पर विरोधी नहीं हैं,अपितु एक-दूसरे के पूरक हैं, सभ्यता और संस्कृति में घनिष्ठ सम्बन्ध ह । उच्च संस्कृति-सम्पन्न जाति ही सभ्य कहलाती है । संस्कृत व्यक्ति को सभ्य माना जाता है और जो सभ्य है वह संस्कृत होगा ।बाहर से देखने पर ये सभ्यता संस्कृति पृथक् दिखाई देते हैं,परन्तु अपने आन्तरिक रूप में ये घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित हैं । संस्कृति मनुष्य के जीवन में कलात्मकता लाती है और सभ्यता उसको शिष्ट एवं विवेकयुक्त बनाती है । अत: सभ्यता एवं संस्कृति का मानव जीवन में समान महत्व है, एक को प्रमुख मानकर दूसरे की उपेक्षा करना अनुचित है । डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने संस्कृति और सभ्यता पर अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा है--' स्वयं `कल्चर` शब्द भी बहुत पुराना नहीं है । कहते हैं कि अंग्रेजी के प्रसिद्ध प्रबन्ध लेखक बेकन ने इस शब्द को मानसिक खेती के अर्थ में प्रथम बार प्रयोग किया था । `सिविलिजेशन` के सम्बन्ध में भी उन्होंने कहा है कि `सिविलिजेशन` से सामाजिक व्यवस्था के चार उपादानों का ज्ञान होता है-- (१) आर्थिक व्यवस्था, (२) राजनीतिक संगठन, (३) नैतिक परम्परा और (४) ज्ञान और कला का अनुशीलन । अस्तव्यस्तता, आशंका और अरक्षणीयता का जहां अन्त होता है, `सिविलिजेशन` या सभ्यता वहीं से शुरू होती है... । सभ्यता का आन्तरिक प्रभाव संस्कृति है । सभ्यता समाज की बाह्य व्यवस्थाओं का नाम है, संस्कृति व्यक्ति के अन्तर के विकास का । सभ्यता की दृष्टि वर्तमान की सुविधा-असुविधाओं पर रहती है, संस्कृति की भविष्य या अतीत के आदर्श पर, सभ्यता नजदीक की ओर और संस्कृति दूर की ओर दृष्टि रखती है, सभ्यता का ध्यान व्यवस्था पर रहता है, संस्कृति का व्यवस्था के अतीत पर, सभ्यता के निकट कानून मनुष्य से बड़ी चीज है, लेकिन संस्कृति की दृष्टि में मनुष्य कानून के परे है, सभ्यता बाह्य होने के कारण चंचल है, संस्कृति आन्तरिक होने के कारण स्थायी । सभ्यता समाज को सुरक्षित रखकर उसके व्यक्तियों को इस बात की सुविधा देती है कि वे अपना आन्तरिक विकास करें,इसीलिए देश की सभ्यता जितनी ही पूर्ण होगी, अर्थात् उसकी व्यवस्था जितनी ही सख्त होगी, राजनीतिक संगठन जितना ही पूर्ण होगा, नैतिक परम्परा जितनी ही विशुद्ध होगी और ज्ञानानुशीलन की भावना

जितनी ही प्रबल होगी, उस देश के वासी उसी परिमाण में सुसंस्कृत होंगे । इसीलिए सभ्यता और संस्कृति में बड़ा घनिष्ठ सम्बन्ध है । परन्तु ऊपर जो कुछ कहा गया है, उसका यह अर्थ नहीं कि सभ्यता और संस्कृति दो परस्पर विरोधी चीजें हैं । जिस प्रकार पुस्तक के पन्ने के दो पृष्ठ आपाततः एक दूसरे के विरुद्ध दीखते हुए भी वस्तुतः एक दूसरे के पूरक हैं, उसी प्रकार सभ्यता और संस्कृति भी एक दूसरे के पूरक हैं । इन दोनों का पारस्परिक सम्बन्ध इतना घनिष्ठ है कि कभी-कभी एक के अर्थ में दूसरे का प्रयोग पण्डित जन तक कर दिया करते हैं। ..... इस प्रकार मूल में भारतीय संस्कृति कई बलवती सभ्यताओं के योग से बनी । आर्य-द्राविड़ और शबर-नाग सभ्यता की त्रिवेणी से इस महाधारा का आरम्भ हुआ । बाद में अन्य अनेक सभ्य,अर्धसभ्य और असभ्य जातियों की संस्कृतियां, धर्ममत आचार परम्परा ए और विश्वास इसमें घुलते आ गए ।[१] इस प्रकार हम देखते हैं कि सभ्यता और संस्कृति परस्पर सम्बन्धित होते हुए भी कुछ भेद या अन्तर रखते हैं,वे दोनों एक-दूसरे के पूरक हैं । विश्व के सभी जातियों की अपनी एक संस्कृति होती है,परन्तु सभी जातियां सभ्य नहीं होतीं । सभ्यता तो सदा सुन्दर ही होती है, परन्तु संस्कृति सुन्दर भी हो सकती है और बुरी भी होती है । सभ्यता के मध्य संस्कृति एक धारा के रूप में निरन्तर प्रवाहित होती रहती है ।

संस्कृति का उद्देश्य

संस्कृति का सम्बन्ध मनुष्य के जीवन की आन्तरिक आवश्यकताओं से है । संस्कृति मनुष्य की शारीरिक एवं मानसिक शक्तियों का विकास करती है,इसके द्वारा किसी जाति की सभी चीजों जैसे आध्यात्मिक, धार्मिक एवं साहित्यिक में उन्नति होती है । संस्कृति व्यक्ति के व्यक्तित्व का चरम विकास करती हुई मनुष्य जीवन को परिष्कृत रूप प्रदान करती है । संस्कृति ही लोगों को कलात्मक ढंग से जीवनयापन करना सिखाती है ।

---

१ डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी : `विचार और वितर्क`,पृ०१२३-२८ ।

संस्कृति और कला

कला के द्वारा मनुष्य परोक्ष भावों को प्रत्यक्ष करता है तथा अमूर्त भावों या विचारों को मूर्त रूप प्रदान करता है । 'कला मानव-संस्कृति की उपज है । निसर्ग से युद्ध करते हुए मानव ने श्रेष्ठ संस्कार के रूप में जो कुछ सौन्दर्य-बोध प्राप्त किया है, 'कला' शब्द में उसका अन्तर्भाव है । परिस्थितियों को इष्ट आकार देकर ही मनुष्य ने मानव-संस्कृति को जन्म दिया और उसे विकास के पथ पर आरूढ़ किया ।[1]' विद्वानों ने सुन्दर के बोध को कला का मूल स्रोत कहा है, सौन्दर्य कला का बाह्य स्वरूप है । रसानुभूति द्वारा परमानन्द की प्राप्ति कराना ही कला का उद्देश्य है । कला दो प्रकार की होती है— उपयोगी कला तथा ललित कला, व्यावहारिक जीवन में उपयोगी सिद्ध होने वाली कला उपयोगी कला कहलाती है और मानसिक सन्तोष प्रदान कर उच्चकोटि के आनन्द की प्राप्ति कराने वाली कला ललित कला कहलाती है । कला के लिए कहा गया है कि 'कर्म-कुशलता ही कला है । कला और मनुष्य का सम्बन्ध अविभाज्य है । मानव के द्वारा कला की प्रतिष्ठा हुई और ह कला के द्वारा मानव ने आत्मचैतन्य एवं आत्मगौरव प्राप्त किया । पाशविक विकारों की तीव्रता कम करने में 'साहित्य, संगीत, कला' का योगदान अप्रतिम रहा है । कला के द्वारा ही मानव जीवन में माधुर्य और सौन्दर्यशीलता का जन्म हुआ और कर्तव्य-कर्म सुन्दर एवं मधुर बना ।

कला और संस्कृति का परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध है । जिस देश की कला सुन्दर या उच्चकोटि की होगी उस देश की संस्कृति भी उच्चकोटि की एवं विकसित मानी जायगी । किसी देश या जाति की कलाओं के आधार पर उनकी संस्कृति का मूल्यांकन किया जाता है । संस्कृति मानव जीवन में कलात्मकता लाती है अर्थात् मनुष्य को कलात्मक ढंग से रहना सिखाती है । कला मानव जीवन के लिए उपयोगी व वस्तुओं में सौन्दर्यवृद्धि करती है और अमूर्त भावों एवं विचारों को मूर्त रूप प्रदान करती है । सौन्दर्य को मूर्त रूप प्रदान करने की शक्ति कला में ही है ।

---

१ 'हिन्दी साहित्य कोश', पृ०२२० ।

'कला का सम्बन्ध जीवन के मूर्त रूप से माना गया है । संस्कृति समष्टिगत समान अनुभवों से उत्पन्न होती है । स्थूल जीवन में संस्कृति की अभिव्यक्ति कला को जन्म देती है । कला का सम्बन्ध जीवन के मूर्त रूप से है । संस्कृति को मन और प्राण कहा जाये तो कला उसका शरीर है । कला मानवीय जीवन की अनिवार्य आवश्यकता है । संस्कृति इसलिए आवश्यक है कि भविष्य में विकारों की दासता से मानव की रक्षा करे । मनुष्य के मन को स स्फूर्ति और तदनुसार कर्मों की सृजन-शक्ति कला की उपासना पर निर्भर है । कला कुछ व्यक्तियों के विलास साधन के लिए नहीं होती । सांची और भरहुत के स्तूपों,अजन्ता के भित्तिचित्रों, वेरूल के एकाश्मक कैलाश मन्दिर की भांति कला लोक के शिक्षण, आनन्द और अध्यात्म साधना के उद्देश्य से आगे बढ़ती है । उपर्युक्त निष्कर्ष के आधार पर यह कहा जा सकता है कि कला और संस्कृति का अभिन्न सम्बन्ध है । यही कारण है कि जिस देश की कला जितनी ही अधिक विकसित होती है उस देश की संस्कृति भी उतनी ही अधिक समृद्ध होती है ।'[1]

संस्कृति और साहित्य

साहित्य मनुष्य के भावों एवं विचारों की समष्टि है । साहित्य में ही मानव की ज्ञान राशि सुरक्षित रहती है । साहित्य के माध्यम से कवि या लेखक अपने मनोगत भावों तथा विचारों को अभिव्यक्त करता है । साहित्यकार साहित्य की रचना द्वारा एक ऐसे आनन्द की सृष्टि करता है,जिसमें डूबकर मनुष्य अपने जीवन की कटुता को भुलाता है । जीवन-संग्राम में व्यस्त मानव एक अद्भुत मानसिक शान्ति की अनुभूति करता है, उसे कुछ विश्राम मिल जाता है । अत: मानव जीवन में साहित्य को एक महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है । संस्कृति और साहित्य का भी परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध है । साहित्य के माध्यम से हमें किसी देश की सभ्यता एवं संस्कृति का परिचय मिल जाता है,क्योंकि साहित्यकार जिस देश में रहता है, जिस समाज में विचरण करता है, उसकी उपेक्षा करके किसी रचना में प्रवृत्त नहीं हो सकता है । वह अपने युगचेतना का प्रतिनिधित्व करता है, तत्कालीन

---

१ विद्याधर : 'जायसी-साहित्य में अप्रस्तुतयोजना',पृ०२५६ ।

राजनैतिक,सामाजिक,आर्थिक परिस्थितियों से प्रभावित होकर ही साहित्यकार साहित्य-सृजन करता है । प्रत्येक देश या जाति का साहित्य वहां की संस्कृति और संस्कारों से पूर्णरूपेण प्रभावित रहता है । साहित्यकार संस्कृति से शोधित ज्ञान, विज्ञान और संस्कारों को अर्जित करता है, उन्हें साहित्य के माध्यम से पाठकों तक पहुंचाता है । साहित्य में संस्कृति के लौकिक एवं आध्यात्मिक दोनों ही पक्षों का विवेचन किया जाता है । इस प्रकार हम देखते हैं कि संस्कृति का प्रभाव साहित्य पर अवश्य ही पड़ता है और किसी देश के साहित्य के द्वारा उस देश की संस्कृति का परिचय प्राप्त होता है । अतः संस्कृति और साहित्य परस्पर घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित हैं ।

साहित्य का सम्बन्ध उपयोगी कला से नहीं, ललित कला से है । डा० वासुदेवशरण अग्रवाल के अनुसार भारतवर्ष में साहित्य ने कला के रूप को समृद्ध किया है और कला ने साहित्य की व्याख्या की है । इनका पारस्परिक सम्बन्ध हमारी संस्कृति का एक अत्यन्त विशिष्ट और रमणीय पक्ष है । कला के उदाहरण में जो अर्थ मूकरूप से उपस्थित है, वह साहित्य की भाषा और शब्दावली से सजीव होकर अपना परिचय देगा । यह कहना अत्युक्ति न होगा कि भारतीय कला एक प्रकार से साहित्य की ही मार्मिक व्याख्या है । यदि हम कथावस्तु,भावभाव-चित्रण, नाट्य और अभिनय के करण और मुद्राएं, आभूषण और वस्त्र ,उपकरण और अलंकरण इनके विषय और पारिभाषिक शब्दों का संग्रह करने के लिए कला की दृष्टि से प्राचीन वाङ्मय का मंथन करें तो हमें बहुत ही विलक्षण सामग्री प्राप्त हो सकती है । इस सामग्री की सहायता से जब हम कला को समझने का प्रयत्न करेंगे तो कला में एक नई अर्थवत्ता और रस की उपलब्धि होगी । कला की आंख से साहित्य और साहित्य की आंख से कला को देखना हमारे नवीन सांस्कृतिक युग की एक बड़ी आवश्यकता है[1] ।

अतः हम देखते हैं कि संस्कृति और साहित्य परस्पर घनिष्ठरूप से सम्बन्धित हैं ।

---

1. वासुदेवशरण अग्रवाल : 'कला और संस्कृति', पृ०२४३-२४५ ।

सन्त साहित्य में प्रयुक्त उपमानों का सांस्कृतिक महत्व

सन्तकवियों ने मुक्तक शैली में भावप्रधान रचनाएं की हैं। उनका प्रत्येक पद, साखी या रमैणी अपने में पूर्ण स्वतन्त्र है। सन्तकवियों ने तत्कालीन परिस्थितियों के उपयुक्त ही वर्ण्य विषय का चयन किया था, इन कवियों की रचनाएं सदुपदेशों तथा धार्मिक,दार्शनिक विचारों से परिपूर्ण हैं। सन्तों ने सामाजिक बुराइयों, बाह्याचार, पाखण्ड आदि को दूर करने का उपदेश देते हुए एक नवीन जीवन-दर्शन को अपनाने का सुझाव भी दिया। अपने भावों तथा विचारों को अभिव्यक्त करने के लिए सन्तकवियों ने जिन अप्रस्तुतों का चयन किया है, वे अधिकतर भारतीय संस्कृति से ही प्रभावित हैं, परम्परा से चले आते हुए उपमानों के अतिरिक्त अनेक स्थानों पर व्यावहारिक जीवन से लिए गए नवीन उपमानों का प्रयोग भी हुआ है। कहीं-कहीं मुस्लिम संस्कृति से प्रभावित उपमान भी आए हैं। युगीन परिस्थितियों से प्रभावित सन्तकवियों की रचनाओं में तत्कालीन समाज में प्रचलित कुप्रथाओं,अन्धविश्वासों तथा जनजीवन का यथार्थ चित्रण मिलता है। प्राचीन भारतीय संस्कृति के अनुकूल उज्ज्वल रूप को विस्मृत कर सरल जनों को पथभ्रष्ट करने वाले पाखण्डी धर्माधिकारियों की कटु आलोचना करते हुए इन सन्तों ने सामाजिक अवस्था को सुधारने का प्रयत्न किया। सन्तसाहित्य पर वैष्णव भक्तकवियों,नाथसिद्धों तथा महाराष्ट्री सन्तों का प्रभाव स्पष्ट ही परिलक्षित होता है। किसी विदेशी संस्कृति या धर्म से प्रभावित न होकर सन्तकवियों ने हिन्दू धर्म और दर्शन के तत्वों को ही अपनाया है,इसीलिए सन्तसाहित्य में अधिकतर अप्रस्तुत भारतीय संस्कृति से ही लिए गए हैं।

सांस्कृतिक दृष्टि से अप्रस्तुतों को आठ वर्गों में रखा जा सकता है— प्रकृति वर्ग, मानवेतर वर्ग, काल्पनिक वर्ग,मानववर्ग, कथाएं,पर्वोत्सव, मनोविनोद सम्बन्धी उपकरण तथा परम्परागत प्रचलित मान्यताएं।

१- प्रकृति वर्ग

प्रकृति वर्ग के अन्तर्गत प्रयुक्त अप्रस्तुत निम्नलिखित हैं :--

१. अकास -- आकाश का अर्थ है शून्य । यह पंचतत्वों में से एक तत्व है ।गोरखनाथ जी के अनुसार देहस्थ छः चक्रों, सोलह आधारों, दो लक्ष्यों के साथ ही पांच आकाशों की जानकारी के बिना योगी सिद्धि पा ही नहीं सकता, इन आकाशों के नाम हैं-- आकाश,[१] प्रकाश, महाकाश, तत्वाकाश और सूर्याकाश । `आकाश` श्वेतवर्णी ज्योतिरूप है । यह उपमान सन्तकवियों ने भारतीय संस्कृति से ही लिया है, सन्तकाव्य में आकाश कई रूपों में प्रयुक्त हुआ है, जैसे -- अकास,अकासां, अकासि, अकासहिं, अरध, आम, गिगन, गगन, आकासै आदि । ब्रह्म,ब्रह्मरन्ध्र, शून्य आदि उपमेयों के लिए ।

२. सूरज -- सन्तकवियों ने जिन रूपों में सूरज का प्रयोग किया है, वह इस प्रकार हैं-- भानु, सूर, सूरिज, रवि, सूरज,अरक । सूर्य ब एक अत्यन्त विशाल और अनन्त प्रकाशमान् नक्षत्र है,जो अन्य ग्रहों के अन्धकार का नाश करके उन्हें प्रकाशित करता है,अतः यह तेज का प्रतीक माना जाता है । हिन्दू जाति के लोग सूर्यदेव की उपासना करते हैं । ज्योतिष विज्ञान में भी सूर्य की स्थिति का बहुत अधिक महत्व है । संतकवियोंपिंगला को सूर्यनाड़ी कहते हैं और उसमें सूर्य का वास मानते हैं । ब्रह्म के अनन्त तेज का वर्णन करने के लिए सन्तों ने देदीप्यमान् सूर्य को उपमान रूप में ग्रहण किया है ।

३. चंदा -- सन्तों ने ससिहर,चंद, चंदा, ससी आदि रूपों में चन्द्र का प्रयोग किया है । भारतीय तथा मुस्लिम दोनों ही संस्कृतियों में चन्द्रमा को बहुत अधिक महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है । इसीलिए समस्त कवियों का यह अत्यन्त प्रिय उपमान रहा है । यह शीतलता का प्रतीक है, सुन्दर मुख को चन्द्रमुख कहने की प्रथा बहुत पहले से चली आ रही है । चन्द्रमा के सौन्दर्य से सभी प्रभावित हैं, सरोवर में रहने वाली कुमुदिनी चन्द्रदर्शन से ही विकसित होती है और चकोर निरन्तर

---

१ `हिन्दी साहित्य कोश`,पृ०८५ ।

चन्द्रमा को निहारता रहता है । सन्तकवियों ने जीवात्मा को कुमुदिनी और चकोर कहा है तथा परमात्मा को चन्द्रमा । इन सन्तों ने श्रद्धा को चन्द्रनाड़ी कहा है और उसमें चन्द्र का वास माना है, अतः श्रद्धा के लिए भी चंद्र उपमान का प्रयोग किया है । चौदह रत्नों में से चन्द्रमा को एक रत्न माना जाता है । वैद्यकशास्त्र तथा ज्योतिष विज्ञान में भी चन्द्रमा का बहुत अधिक महत्व है । भारतीय संस्कृति में चन्द्रमा का महत्वपूर्ण स्थान है ।

४. नवग्रह -- ज्योतिष शास्त्र में सूर्य,चन्द्र,मंगल,बुध, गुरु, शुक्र, शनि,राहु और केतु नौ ग्रह माने गए हैं, भारतीय संस्कृति में इन ग्रहों को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है । इन ग्रहों की स्थिति के अनुसार ही मनुष्यों की अच्छी या बुरी अवस्था होती है । सन्तों ने नवद्वार या शरीर के लिए इस उपमान का प्रयोग किया है ।

५. तारा -- चन्द्र सूर्य के समान ही नक्षत्र या सितारे भी कवियों के प्रिय उपमान हैं । ज्योतिषशास्त्र में भी तारों को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है । मानव-जीवन की नश्वरता का ज्ञान कराने के लिए सन्तकवियों ने प्रभात में विलीन हो जाने वाले तारों को उपमान रूप में प्रस्तुत किया है ।

६. मेघ -- सन्तकाव्य में जिन रूपों में मेघ प्रयुक्त हुआ है, वह इस प्रकार है-- घन, मेहा, मेघ, बादर, अभ्र, जलद, बादल, घटा आदि । भारत एक कृषिप्रधान देश है, अतः यहां मेघ को बहुत अधिक महत्व दिया गया है, कृषक अपने कृषि कार्य के लिए मेघ पर बहुत अधिक निर्भर करता है । वर्षा ऋतु के घनघोर घटाओं ने भी समस्त कवियों को बहुत अधिक प्रेरणा प्रदान किया है । परमात्मा,माया, काम, अनाहद नाद, देह, प्रेम आदि उपमेयों के लिए इस उपमान का प्रयोग किया गया है ।

७. दामणि -- बीज,दामणि, जोति आदिरूपों में विद्युत का प्रयोग हुआ है । मेघों के मध्य प्रकाशित होने वाली दामिनी या बिजली प्रकाश या ज्योति की प्रतीक है । सन्तकवियों ने भी ज्ञान के प्रकाश या ज्योति के लिए इस उपमान का प्रयोग किया है ।

८. स्वांती जल -- फलित ज्योतिष में सत्ताईस नक्षत्रों में से स्वाति नक्षत्र को पन्द्रहवां माना गया है । कवि प्रसिद्धि है कि इस नक्षत्र का जल सीप में गिर-कर मोती बन जाता है और चातक केवल स्वाति जल ही पीता है । संतकाव्य में जीव को चातक कहा गया है और उसे यह उपदेश दिया गया है कि वह केवल ब्रह्मरूपी स्वाति जल के प्रति निष्ठा रखे ।

९. अग्नि -- भारतीय संस्कृति में अग्नि को बहुत अधिक महत्व प्रदान किया गया है । हिन्दुओं का कोई भी संस्कार अग्नि के बिना सम्पन्न नहीं हो सकता है । दैनिक जीवन में भी यह बहुत अधिक उपयोगी है । पंच भौतिक तत्वों में यह एक प्रमुख तत्व है । वैदिक देवताओं में अग्नि बहुत प्रसिद्ध देवता है । भारतीय और अभारतीय संस्कृतियों में अग्नि को पवित्र माना गया है । सन्तकवियों ने कई रूपों में अग्नि का प्रयोग किया है,जैसे -- आगि, आगिनि, अग्नि, पावक, दौं, झाल, अंगार, अनल आदि । 'अग्नि' उपमान का प्रयोग सन्तों ने भारतीय संस्कृति से प्रभावित होकर किया है । ब्रह्म,आत्मा, सुंदरी या नारी, विरह, अहंकार, विषय, ज्ञानादि उपमेय के लिए ।

१०. समुद्र -- सन्त कवियों ने इस उपमान का प्रयोग जिन रूपों में किया है, वह इस प्रकार है -- समंद, सागर, समद, समुद्र, सायर, जलधर, सिंधु, समुंदर, जलनिधि, रैनाईर । समुद्र वह विशाल जलराशि है, जिसने पृथ्वी को चारों ओर से घेर रखा है । इसका जल खारा होता है । समुद्र के गर्भ में अनन्त रत्न छिपे रहते हैं, इसलिए बहुगुण सम्पन्न व्यक्ति की तुलना समुद्र से की जाती है । समुद्र विशालता एवं गहनता का प्रतीक है, उसका तल खोजना असम्भव है, साहित्यकार किसी मनुष्य के उदार मन, गंभीर प्रकृति एवं महानता का वर्णन करने के लिए इस उपमान का प्रयोग करते हैं । समुद्र में मिलकर सभी नदी नाले अपना अस्तित्व उसी में विलीन कर देते हैं, जीव रूपी नदी नाले ब्रह्म रूपी समुद्र में मिलकर उसके साथ एकाकार हो जाते हैं । सन्तकवियों ने इन सब अर्थों में समुद्र उपमान का अनेक स्थलों में प्रयोग किया है । इस उपमान का प्रयोग भी इन कवियों ने भारतीय संस्कृति से प्रभावित होकर किया है ।

११. नदी -- शब्दकोशों के अनुसार नदी जल का वह प्राकृतिक प्रवाह है जो किसी पर्वत, स्रोत या जलाशय से निकलकर किसी निश्चित मार्ग से निरन्तर बहता रहता है । नदियां किसी समुद्र या दूसरी नदियों में जाकर गिरती हैं । किसी देश की उन्नति में नदियां बहुत अधिक सहायक होती हैं । नदियों से नहरें निकाल कर खेतों की सिंचाई की जाती है और इनका जल पीने के काम में लाया जाता है । भारत में अनेक नदियां हैं,जिनमें सदा जल रहता है, ऐसी नदियां हमारे लिए बहुत उपयोगी हैं । इन नदियों के तटों पर बहुत बड़े बड़े नगर बस गए हैं । कवियों ने इस उपमान का प्रयोग बहुत अधिक किया है । सन्तकाव्य में नदी उपमान कई रूपों में प्रयुक्त हुआ है,जैसे -- सरिता, सलिता, तरंगिनी, नदिया आदि ।

१२. गंगा -- गंगा हमारे देश की एक बहुत ही प्रसिद्ध नदी है, यह हिमालय से निकल कर उत्तरप्रदेश, बिहार और बंगाल से बहती हुई गंगासागर में समुद्र में मिल जाती है । ऋग्वेद मे जिन सात नदियों का नाम आया है,उनमें गंगा नदी का भी उल्लेख हुआ है । प्राचीनकाल से ही गंगा भारतीयों का अभिन्न अंग है,भारतीय संस्कृति में गंगा को बहुत महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है । गंगा को पवित्र नदी मानकर उसकी पूजा की जाती है । अनेक नदियां आकर गंगा में मिल जाती हैं, इस विशाल नदी से नहरें निकाल कर विस्तृत भू-भाग की सिंचाई की जाती है । गंगा ने उत्तरभारत की भूमि को बहुत अधिक उपजाऊ बना दिया है । इस नदी का निर्मल जल स्वास्थ्यवर्धक तथा रोगनाशक है, गंगाजल में कभी कीड़े नहीं पड़ते । हिन्दू जाति के लोगों के लिए पवित्र गंगाजल जन्म से लेकर मृत्युपर्यन्त अपार महत्व रखता है । गंगास्नान करके लोग पुण्य अर्जन करते हैं । इस नदी को भागीरथी, मन्दाकिनी, जाह्नवी, सुरनदी आदि नामों से भी पुकारा जाता है । यह गंगा नदी पवित्रता का प्रतीक है । सन्तकवियों ने भी हिन्दू संस्कृति से प्रभावित होकर गंगा नदी का उपमान रूप में प्रयोग किया है । इड़ा नाड़ी को कहीं- कहीं गंगा कहा गया है ।

१३. यमुना -- उत्तरभारत की एक प्रसिद्ध नदी है । गंगा के पश्चात् यमुना नदी को भी भारतीय संस्कृति में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है । यमुना नदी कलिंद पर्वत से निकलती है, इसलिए कालिंदी कहलाती है । इसका जल श्यामवर्ण का होता है ।

कार्तिक के महीने में यमुनास्नान करने से पुण्यलाभ होता है । अनेक कृष्णभक्त कवियों ने यमुना नदी को अत्यन्त पवित्र मानकर उसका वर्णन किया है, क्योंकि यमुना-तट पर ही श्रीकृष्ण ने विभिन्न लीलाएं की थीं, उनके चरण-स्पर्श से यमुना का ह जल भी पवित्र हो गया है । यमुना प्रयाग में आकर गंगा से मिल जाती है । सन्तकवियों ने पिंगला नाड़ी को यमुन या जमन कहा है । यमुना का भी उपमान रूप में प्रयोग हुआ है ।

१४. त्रिवेणी -- प्रयाग में आकर गंगा, यमुना तथा सरस्वती नदियां मिल जाती हैं । इनके संगम-स्थल को त्रिवेणी कहा जाता है । त्रिवेणी के कारण प्रयाग तीर्थराज माना जाता है । सन्तकवियों ने ब्रह्मरन्ध्र में गंगा यमुना सरस्वती अर्थात् इड़ा, पिंगला, सुषुम्ना नाड़ियों के संगम को त्रिवेणी कहा है, ब्रह्मरन्ध्र में आकर तीनों नाड़ियां मिलती हैं ।

१५. सरोवर -- नदियों से छोटे जलाशय सरोवर कहलाते हैं । यह उपमान संतकाव्य में कई रूपों में प्रयुक्त हुआ है -- सरवर, सर, सरवरु, सरोवर तथा सरि ।

१६. पर्वत -- भूमि के सतह से ऊंचे उठे हुए उस प्राकृतिक भाग को पर्वत कहते हैं, जो मिट्टी मिश्रित या शुद्ध प्रस्तर होता है । ये पर्वत ऊंचाई या महानता का प्रतीक है । पर्वत जिन रूपों में सन्तकाव्य में प्रयुक्त हुआ है, वह इस प्रकार हैं-- परबत, शैल, शिखर, सुमेरु, मेरु आदि । हरि, ब्रह्मरन्ध्र, पाप आदि उपमेयों के लिए यह उपमान प्रयुक्त हुआ है ।

१७. गुफा -- पर्वत या भूमि में बने लम्बे गड्ढे को गुफा कहते हैं, इसे खोह या कन्दरा भी कहते हैं । सन्तकवियों ने शरीर या पिण्ड, सहस्रार, हृदय, ज्ञान आदि उपमेयों के लिए इस उपमान का प्रयोग किया है ।

१८. घाटी -- पर्वतों के मध्य के संकरे मार्ग या दर्रे को घाटी कहते हैं । सन्तों ने सुषुम्ना को अवघट घाटी कहा है ।

१९. पाहन -- पाहन या प्रस्तर पत्थर को कहते हैं । सन्तकाव्य में इस उपमान का प्रयोग पषाण, पथर, पाहन आदि रूपों में हुआ है । निर्गुणी प्राणी, जगत, माया आदि उपमेयों के लिए सन्तों ने इस उपमान का प्रयोग किया है ।

२०. चकमक -- एक प्रकार का कड़ा पत्थर, जिस पर चोट पड़ने से शीघ्र ही आग निकलने लगती है । यह तुर्की शब्द है । सन्तकवियों ने चित्त उपमेय के लिए चकमक उपमान का प्रयोग किया है ।

२१. जगत -- स्वर्ग,पृथ्वी और पाताल को मिलाकर जगत कहा जाता है । कुछ लोग सात जगत मानते हैं -- भू,भुव, स्व, मह, जन, तप, सत्य । ये सात और ये दो सात वायुमण्डल के यों १४ जगत हैं । ये १४ सात पातालों के साथ २१ जगत हैं[1] । सन्तकाव्य में जग और जगत रूप में ही इसका उल्लेख हुआ है ।

२२. धरती -- धरती या पृथ्वी पंच भौतिक तत्वों में से एक प्रमुख तत्व है । इसका प्रधान गुण गंध है । हमारी पृथ्वी सौर जगत का एक ग्रह है, मिट्टी और पत्थर से युक्त इसके ठोस ऊपरी भाग पर हम सब चलते फिरते हैं । संतकाव्य में यह धरती,भूमि, धरनि, भोमि, भोमि और भुई आदि रूपों में प्रयुक्त हुआ है ।

२३. बन -- बन को जंगल, अरण्य, कानन भी कहते हैं । अनेक पेड़-पौधों, लताओं से युक्त निर्जन स्थान को बन कहते हैं । भारतीय संस्कृति में बनों क को बहुत अधिक महत्व प्राप्त है । ऋषि-मुनियों के वासस्थान इन बनों के वातावरण को बहुत पवित्र माना जाता था, यहीं रहकर ब्रह्मचारी विभिन्न विद्याओं को प्राप्त करते थे । बनों के पवित्र वातावरण में रहकर भारतीय मनीषियों ने हिन्दू धर्म, दर्शन एवं संस्कृति को विकास के चरमावस्था तक पहुंचाया । भारतीय कवियों ने इन बनों का वर्णन अवश्य किया है । सन्त कवियों ने बन, बन, बनराइ, बनखण्ड, कुंज आदि रूपों में इस उपमान का प्रयोग शरीर,जल-स्थिति, संसार, अंग आदि उपमेयों के लिए किया है ।

२४. नगर -- ग्रामों से बड़े मनुष्यों की बस्ती को नगर कहते हैं,जहां विभिन्न जाति एवं व्यवसाय के लोग निवास करते हैं । सन्तों ने अंखियां, शरीर आदि उपमेयों के लिए नगर उपमान का प्रयोग कई रूपों में किया है,जैसे-- नगरियां,नगर, नगरी, नग्र ।

---

१ दिवाकर : 'जायसी साहित्य में अप्रस्तुतयोजना',पृ०३६९ ।

२५.गांव -- खेतों पर अवलम्बित लोगों की बस्ती को गांव कहते हैं । यहां अधिकतर कृषक रहते हैं । भारत कृषिप्रधान देश है, इसलिए यहां बहुत लोग रहते हैं । ग्रामों का यहां बहुत अधिक महत्व है । गांउ, गांवा आदि रूपों में सन्तकवियों ने इस उपमान का प्रयोग अधिकतर शरीर के लिए किया है ।

२६.तीर्थ -- उस पवित्र स्थल को तीर्थ कहते हैं, जहां लोग धर्मभाव से पूजा या स्नान करके पुण्य अर्जन करते हैं । जैसे हिन्दुओं के लिए काशी,हरिद्वार, प्रयाग आदि तीर्थ स्थान हैं और मुसलमानों के लिए मक्का,मदीना आदि । इसका प्रयोग भी उपमान रूप में कहीं-कहीं हुआ है ।

२७.मथुरा -- ब्रज में यमुना-तट पर मथुरा नगर बसा हुआ है । यहां श्रीकृष्ण के अनेक मन्दिर हैं । हिन्दुओं के लिए यह एक पवित्र नगर है । मन, ब्रह्मरन्ध्र, उपमेय के लिए सन्तकाव्य में मथुरा उपमान आया है ।

२८.काशी -- काशी या बनारस हिन्दुओं का पवित्र तीर्थस्थान है । काशी-वास करने से मनुष्य के सब पाप नष्ट हो जाते हैं और यहां मृत्यु होने पर मोक्ष की प्राप्ति होती है । यहां विश्वनाथ जी का अत्यन्त प्रसिद्ध मन्दिर है, देश के कोने-कोने से लोग यहां आते हैं । हृदय उपमेय के लिए यह उपमान सन्तकाव्य में आया है ।

२९.द्वारिका -- यह गुजरात प्रदेश की प्राचीन नगरी थी । यहां द्वारिकाधीश श्रीकृष्ण की सुन्दर मूर्ति है,क्योंकि श्रीकृष्ण यहां के राजा थे, इसलिए यह नगरी भी बहुत पवित्र मानी जाती है । सन्तों ने हृदय या पिंड उपमेय के लिए इस उपमान का प्रयोग किया है ।

३०.गोकुल -- मथुरा से दक्षिण-पूर्व की ओर स्थित गोकुल एक प्राचीन ग्राम है । यमुना तट पर बसा हुआ यह स्थान कृष्ण भगवान की लीला-भूमि थी,इसीलिए सभी कृष्ण-भक्तकवियों ने इस स्थान को पवित्र मानकर इसका वर्णन किया है । शरीर या देह के लिए इस उपमान का प्रयोग सन्तकवियों ने किया है ।

३१.मका -- यह मुसलमानों का तीर्थस्थान है, यहां वे लोग हज करने जाते हैं । अरब देश का यह एक प्रसिद्ध नगर है । मक्का का मकाव रूप में सन्तों ने प्रयोग किया है । मन उपमेय के लिए यह उपमान आया है ।

३२. काबा -- अरब में मक्का शहर का एक स्थान काबा कहलाता है । यहाँ मुसलमान हज करने जाते हैं । सन्तकाव्य ने करणी को काबा कहा है ।

वनस्पति वर्ग

इसके अन्तर्गत फल,फूल,पेड़-पौधे तथा लताएं आदि आती हैं :--

३३. बाग -- वृक्ष लताओं से ढके हुए स्थान को बाग,बगीचा, उपवन,फुलवारी आदि कहते हैं । सन्तकवियों ने इस उपमान का प्रयोग वाड़ी,बाड़ी,बारी, बाग आदि रूपों में किया है । रामनाम, शरीर, साधना आदि के लिए इस उपमान का प्रयोग किया गया है ।

३४. फल -- कई प्रकार के फलों का उल्लेख सन्तकवियों ने किया है । फल उपमान का प्रयोग सन्तों ने अनेक स्थलों पर किया, जिन उपमेयों के लिए इसका प्रयोग किया है, वे इस प्रकार हैं -- ब्रह्म,रामनाम, आत्मबोध,प्रेमाभक्ति,सतनाम, विषय,केवल अधिष्ठान, ज्ञान ।

३५. गुठीया -- एक प्रकार का मीठा फल होता है । रैदास जी ने इस उपमान का प्रयोग भाव उपमेय के लिए किया है ।

३६. निबोलि -- कि नीम के फल को निबोली कहते हैं । कड़ुआ होने के कारण इसे कोई नहीं खाता । जिसका कर्म नष्ट हो गया हो ऐसे व्यक्ति के लिए सन्तकवियों ने निबोलि उपमान का प्रयोग किया है ।

३७. कांवच फली -- सेम की तरह का एक फल होता है । इसको कैंवाच या कपि-कछा भी कहते हैं, इसके छू जाने से शरीर में खाज हो जाती है और ददोरे पड़ जाते हैं । रैदास जी ने अपने को ही कांवच फली कहा है ।

३८. डोडा -- मदार वृक्ष के फल को डोडा कहते हैं । इसका फल भी खाने के काम नहीं आता । सन्तकवियों ने व्यर्थ जन्म या जीवन के लिए इस उपमान का प्रयोग किया है ।

३९. फूल -- भारत में फूल केवल सजाने के काम में नहीं आते, वह सौन्दर्य के प्रतीकमात्र ही नहीं हैं,अपितु पवित्रता के प्रतीक हैं । फूल शुभ माने जाते हैं । भारतीय संस्कृति में फूलों को बहुत अधिक महत्त्व प्रदान किया गया है, इनके अभाव में कोई भी धार्मिक कृत्य सम्पन्न नहीं हो सकता । मन्दिरों में तो फूल चढ़ाया

की जाता है, हिन्दू लोग प्रतिदिन प्रात:काल अपने घरों में भी अपने इष्टदेव को फूल चढ़ाकर ही दिन आरम्भ करते हैं । प्राचीनकाल से ही यहां कन्याएं एवं स्त्रियां पुष्पों से ही अपना शृंगार करती हैं । हिन्दू संस्कृति में फूलों का इतना अधिक महत्त्व होने के कारण यहां कवियों ने फूलों का उपमान रूप में बहुत अधिक प्रयोग किया है । सन्तकाव्य में जिन रूपों में इसका प्रयोग हुआ है, वे इस प्रकार हैं -- फूल,पुहप, पहोप,पोहप, कुसुम । प्रेम प्राप्ति,प्राण, पंच ज्ञानेन्द्रियां, वाद- विवाद , विषय-वासना, धर्म,गुण, आत्मा,शरीर आदि उपमेयों के लिए फूल उपमान का प्रयोग किया है ।

५०. कमल -- कमल के पुष्प को भारत में बहुत अधिक महत्त्व प्रदान किया गया है । यह अपने सौन्दर्य के लिए सभी का प्रिय है । सौन्दर्य का प्रतीक होने के कारण भारतीय कवियों ने इस उपमान का बहुत अधिक प्रयोग किया है । किसी के मुख, नेत्र,हाथ,पैर आदि को सुन्दर बताने के लिए कमल और कमलदल को उपमान रूप में लाना तो कवियों के लिए आवश्यक- सा हो गया है । कमल का पुष्प पवित्र माना जाता है । जल में उत्पन्न होने वाले कमल का इन दोनों से ही निर्लिप्त रहना भी कवियों को प्रेरणा प्रदान करता है, इसीलिए वे संसार में रहते हुए संसार की सभी वस्तुओं से निर्लिप्त रहने वाले साधु-सन्तों की तुलना कमल से करते हैं । सन्तकवियों ने कमल के उपमान का बहुत अधिक प्रयोग किया है -- कमल, कंवल, कंवला, कंवलि,नलिनी, कमंल, पद्म आदि कई रूपों में यह उपमान आया है । जिन उपमेयों के लिए कमल उपमान प्रयुक्त हुआ है, वे इस प्रकार हैं -- नारी मुख, ब्रह्म, जीव, प्राण, गुरुमुख, हृदय, सहस्रार, आत्मा, चरण,साधु, शरीर आदि ।

५१. पांडल(गुलाब) -- इस उपमान का प्रयोग कम हुआ है । भंवर या शरीर के लिए कबीरदास ने पांडल उपमान का प्रयोग किया है । कंटीली झाड़ियों में खिलने वाला गुलाब बहुत सुन्दर फूल है, इसका भी कवियों ने उपमान रूप में प्रयोग किया है ।

५२. कमोदिनी -- कुमुदिनी कमल के समान ही जल में खिलती है । यह चन्द्रमा के प्रकाश में विकसित होकर दिन में मुरझा जाती है, चन्द्रमा से इतनी दूर जल में रहने वाली कुमुदिनी का चन्द्रमा से यह प्रेम एक आदर्श प्रेम माना जाता है । सन्तकवियों ने जीवात्मा के लिए इस उपमान का प्रयोग करके परमात्मा को

चन्द्रमा कहा है और लोगों को यह उपदेश दिया है कि वे भी इस आदर्श प्रेम को अपनाएं ।

४३. केवड़ा -- केतकी से कुछ बड़ा सफेद पौधों वाला केवड़े का पुष्प बहुत प्रसिद्ध है । इस फूल का रंग हल्का पीला और हरा मिला हुआ सफेद होता है, इसका सुगन्धित केवड़ा-जल लोगों को बहुत प्रिय है । शरीर के लिए कबीरदास जी ने इस उपमान का प्रयोग किया है ।

४४. केतकी -- लम्बे कांटेदार पत्तों से युक्त एक छोटे से पौधे में कोश में बंद मंजरी के रूप में केतकी के सुगन्धित फूल खिलते हैं । इन फूलों का रंग सफेद है । केतकी पुष्प वर्षा ऋतु में खिलते हैं और भारत में पाए जाते हैं । सन्तकवियों ने इस उपमान का प्रयोग किया है । कबीरदास अपने को ही या भक्तजनों को केतकी कहते हैं ।

४५. टेसू -- टेसू के वृक्ष छोटे-छोटे होते हैं, वनों में कहीं-कहीं इसके अनेक वृक्ष दिखाई देते हैं । इसका फूल लाल रंग का होता है और देखने में बहुत सुन्दर लगता है । यौवन के लिए सन्तों ने इस उपमान का प्रयोग किया है ।

४६. कनीर -- इसे कनेल कहते हैं । कनेल के फूल पीले रंग के होते हैं । कनेल के पेड़ स्थान-स्थान पर मिल जाते हैं । कबीरदास ने व्यक्ति के लिए कली कनीर उपमान का प्रयोग किया है ।

४७. कदली पुहुप -- भारतीय संस्कृति में केले के पेड़ तथा फल दोनों को महत्व प्रदान किया गया है, इन्हें धार्मिक कृत्यों में शुभ माना जाता है । कदली पुष्प का प्रयोग आत्मकमल के लिए सन्तकवियों ने किया है ।

४८. सेंबल फूल -- सेमल या सेंबल के वृक्ष में लाल रंग के सुन्दर फूल लगते हैं । सेमल के फूल बाहर से तो आकर्षक लगते हैं, पर किसी काम में नहीं आते । इसलिए सन्तकवियों ने संसार या माया के लिए इस उपमान का प्रयोग किया है ।

४९. बेलि लता -- बेलि का उपमान रूप में प्रयोग-- बेलि, [बेल्हि] बेली, लता आदि रूपों में सन्त कवियों ने अनेक स्थानों पर किया है । जिन उपमेयों के लिए इस उपमान का प्रयोग किया है, वे इस प्रकार हैं -- काया, आत्मा, प्राण, हृदय, इन्द्रियाँ, माया और भक्ति ।

५०. नगबेली -- इसे अमरबेल या आकाशबेलि भी कहते हैं । यह जिस वृक्ष पर चढ़ती है, उसे सुखा डालती है, इस बेलि का रंग पीला होता है । यह बबूल के वृक्ष पर अधिक चढ़ती है । सन्तों ने पिंगला नाड़ी के लिए इस उपमान का प्रयोग किया है ।

५१. वृक्ष -- वृक्ष जिन विभिन्न रूपों में सन्तकाव्य में आया है, वे इस प्रकार हैं-- तरवर, बिरख, बिटंब, पेड़, बिरछ, वृक्ष, रूख, बिरछ, द्रुम, तरु, बिटप, पेड़ । भारत में प्राचीनकाल से ही इतने अधिक वन थे और उनमें असंख्य वृक्ष । वृक्षों को बहुत अधिक महत्त्व प्रदान किया जाता था, लोग नित्य ही इनको जल से सींचना अपना अनिवार्य कर्तव्य समझते थे । पीपलवृक्ष की तो पूजा की जाती है । इन वृक्षों के फल-फूलों को खाकर वनवासी अपना जीवन व्यतीत करते थे । वृक्षों के फल, फूल तथा लकड़ियां मानव जीवन के लिए बहुत उपयोगी हैं । सन्तकवियों ने भी अनेक स्थानों पर वृक्ष का उपमान रूप में प्रयोग किया है । ईश्वर, संसार, गुण, शरीर, साधना मार्ग, भक्ति मार्ग, माया, अहंकार, कर्म, नाम, राम आदि के लिए इस उपमान का प्रयोग हुआ है । सन्तकवियों ने जिन वृक्षों का उल्लेख किया है, वे इस प्रकार हैं -- आंब, अंबली, सिंभलरूख, बबूल, चंदन, पीपर, करील, नीम, ढाक, पलाश, केरा, बेरि, खजुरि, पाखाखा का रूख, ईख आदि ।

५२. आंब -- आम के वृक्ष के लिए आंब रूप का प्रयोग सन्तकवियों ने सन्तकाव्य में हुआ है । भारत के विभिन्न फलों में आम अत्यन्त प्रिय फल है, विदेशों में भी इस सुस्वादु फल की बहुत अधिक मांग है । यहां तो कच्चे और पक्के दोनों ही प्रकार के आमों को उपयोग में लाया जाता है । बसन्त ऋतु में आम्र वृक्षों में मंजरी आने लगती है और इसके बाद से आम फलने लगते हैं, श्रावण मास तक आम फलते हैं । मेरुदण्ड, इड़ा नाड़ी के लिए सन्तों ने इस उपमान का प्रयोग किया है ।

५३. अंबली -- इमली के वृक्ष के लिए अंबली शब्द का प्रयोग सन्तों ने किया है ।यह उपमान मंजनाल या इड़ा के लिए प्रयुक्त हुआ है । इमली का वृक्ष भी बहुत बड़ा होता है, इसकी पत्तियां छोटी-छोटी होती हैं । इस वृक्ष के फल को इमली कहते हैं । यह खटमिट्ठा फल होता है । भारत में सभी स्थानों में यह वृक्ष पाए जाते हैं ।

५४. सिंमल रूख -- सेमल का वृक्ष भी बहुत बड़ा होता है । इसमें लाल रंग के सुन्दर फूल और फल लगते हैं । इसके फल देखने में बहुत सुन्दर लगते हैं, परन्तु खाने के काम में नहीं आते । इसमें रुई भरा रहता है । तोता धोखे में आकर सेमल के फल पर चोंच मारता है और कुछ न पाकर निराश लौट जाता है,इसीलिए इसके व्यर्थ सौन्दर्य को देखकर सन्तकवि संसार या माया को तथा शरीर, तीर्थ व्रतादि बाह्याचारों को सेमल का वृक्ष कहते हैं जो कि केवल ऊपर से देखने में आकर्षक लगते हैं ।

५५. बंबूल -- बंबूल,बूबर आदि रूपों में बबूल के वृक्ष का प्रयोग सन्तों ने किया है । बबूल का वृक्ष बहुत लम्बा होता है और इसमें सर्वत्र काटे ही काटे होते हैं । यह पेड़ किसी काम का नहीं होता, केवल इसकी लकड़ियां ही काम में लायी जाती हैं । वपु या शरीर, पिंगला नाड़ी और तन मन आदि उपमेयों के लिए इस उपमान का प्रयोग सन्तकाव्य में हुआ है ।

५६. चंदन -- चन्दन का वृक्ष भी बहुत प्रसिद्ध वृक्ष है । इसकी सुगन्धित लकड़ी को घिसकर जो चन्दन निकलता है, उससे देवताओं की पूजा की जाती है, चन्दन का लेप करने से शरीर को शीतलता मिलती है । चन्दन पवित्रता एवं शीतलता का प्रतीक है । भारत में चन्दन की लकड़ी को बहुत महत्व प्रदान किया जाता है । यह एक बहुमूल्य पदार्थ है । चन्दन के लिए प्रसिद्ध है कि वह अपना स्वभाव नहीं बदलता, चन्दन के वृक्ष पर उसकी सुगन्धि से प्रभावित होकर सर्प आकर लिपटे रहते हैं,परन्तु चन्दन तब भी अपनी शीतलता को नहीं छोड़ता है । इसीलिए सन्तकवियों ने साधु सज्जनों को चन्दन के समान कहा है, जो कि कुसंग में पड़कर भी अपने निर्मल स्वभाव को नहीं छोड़ते, वे प्रत्येक परिस्थिति में सज्जन ही बने रहते हैं । अतः साधुजन, साधना, प्रीति राम आदि उपमेयों के लिए इस उपमान का प्रयोग किया गया है ।

५७. एरंड -- एरंड या रेंड एक प्रकार का पौधा होता है,जिसके बीजों से तेल निकलता है । सन्तकवि रैदास विनम्रतावश अपने को अर्थात् भक्त को एरंड का वृक्ष कहते हैं ।

५८. पीपर -- बरगद की जाति का एक प्रसिद्ध वृक्ष जिसे पीपल वृक्ष कहते हैं, यह वृक्ष बहुत पवित्र माना जाता है,इसलिए हिन्दू जाति के लोग पीपल वृक्ष को पूजा करते हैं । मन के लिए इस उपमान का प्रयोग सन्तकवियों ने किया है ।

५९. नीम -- नीम का वृक्ष बहुत ऊंचा और बड़ा होता है । नीम के फल से तेल निकाला जाता है । नीम की कड़वी पत्तियों का रस औषधि के रूप में काम में लाया जाता है । यह चर्मरोगों के लिए बहुत लाभदायक है । नीम का वृक्ष हमारे देश के सभी स्थानों में पाया जाता है । सन्तकाव्य में यह उपमान मित्र के लिए तथा दुर्जनों के लिए आया है ।

६०. ढाकपलास -- पलास के वृक्ष के लिए सन्तों ने ढाक पलास का प्रयोग किया है, पलास को ही ढाक भी कहते हैं । यह वृक्ष कुछ छोटे आकार का होता है । यह भारत का एक बहुत प्रसिद्ध वृक्ष है । इसके पत्ते सींकों में निकलते हैं और एक में तीन-तीन होते हैं । पलास जब फूल चुकता है, तब इसे छांट देते हैं और यह ईंधन बन जाता है । पलास के फूलों को टेसू कहते हैं । यह छोटा-छोटा अर्द्ध-चन्द्राकार और लाल रंग का बहुत सुन्दर पुष्प होता है । सन्तकवियों ने शरीर तथा निकृष्ट लोगों के लिए इस उपमान का प्रयोग किया है । पाखण्डी के लिए भी यह उपमान प्रयुक्त हुआ है ।

६१. खजूरि -- खजूर का पेड़ बहुत ही लम्बा होता है, इसलिए इससे किसी को छाया नहीं मिलती है । इसका फल पकने पर बहुत मीठा होता है,परन्तु इतनी ऊंचाई पर लगता है कि वह भी सब की पहुंच से बाहर है । इसलिए सन्तकवियों ने खजूर के पेड़ से व्यर्थ के बड़प्पन की तुलना करते हुए कहा है कि ऐसे बड़प्पन से क्या लाभ जो किसी के काम न आए ।

६२. बेरि -- बेर का वृक्ष बहुत बड़ा नहीं होता है । यह छोटे आकार का ही होता है, कंटीली झाड़ियों के आकार का होता है, लेकिन इसके कांटे छोटे-छोटे होते हैं । बेर का फल स्वादिष्ट होता है । बेर भी कष्टदायी वृक्ष होता है, अपने कांटों से यह दूसरे पास के वृक्षों के पत्तों को चीर देता है । सन्तकवियों ने भी बेर उपमान का प्रयोग किया है । कुसंग या दुर्जनों के संग को बेरवृक्ष के समान कष्टदायी कहकर उनके संग से बचने के लिए कहा गया है ।

६३. केरा -- केले का वृक्ष सम्पूर्ण भारतवर्ष में पाया जाता है । क गर्म जलवायु वाले स्थानों में तो यह बहुत अधिक पाया जाता है । लोग घरों में भी केले के वृक्ष लगाते हैं, यह शुभ माना जाता है । इसकी पूजा की जाती है । पूजा, विवाहोत्सव आदि अवसरों पर केले का पत्ता बहुत उपयोगी होता है । केले

का फल बहुत ही मीठा होता है । सन्तकाव्य में सुजन या वैष्णवों के लिए इस उपमान का प्रयोग हुआ है ।

६४. जवासा -- छोटी कंटीली झाड़ी को जवासा कहते हैं । यह झाड़ी वर्षा में सूख जाती है । कबीरदास ने 'जिह्वा' या तृष्णा उपमेय के लिए इस उपमान का प्रयोग किया है ।

६५. ईख -- इसे गन्ना, ऊख आदि कहते हैं ।भारत में यह बहुत होता है । ईख के डण्ठल में मीठा रस भरा रहता है, इस रस से गुड़, चीनी और शक्कर आदि बनाई जाती है । बांस के समान इसका तना चूसने के काम में आता है । यहाँ ईख की खेती बहुत अधिक होती है । पहले ईख के कंठ होते थे, जिन्हें हनुमन कहते थे । सन्तकाव्य में भी यह उपमान रूप में प्रयुक्त हुआ है । देह या शरीर के लिए यह उपमान आया है ।

६६. बांस -- तृण जाति की एक वनस्पति को बांस कहते हैं, इसमें थोड़ी-थोड़ी दूर पर गांठें होती हैं और गांठों के बीच का भाग कुछ पोला होता है । बांस के कंठ होते हैं । सन्तकवियों ने निर्गुणी व्यक्ति के लिए इसका प्रयोग किया है ।

६७. झाड़ -- उस छोटे पेड़ या पौधे को कहते हैं, जिसकी डालियां या जड़ ज़मीन के पास से निकल कर चारों ओर छितराई हुई हैं । ये झाड़ियां किसी काम की नहीं होतीं, व्यर्थ ही उगती हैं और कष्टदायी होती हैं । सन्तकाव्य में अहंकार, मद-मोह, लोभादि के लिए झाड़ उपमान का प्रयोग हुआ है ।

६८. कांटा -- पेड़ पौधों और झाड़ियों की डालियों में निकले हुए सूई की तरह नुकीले और कड़े ये कांटे लोगों को कष्ट देने वाले होते हैं । हरिदास जी ने काम उपमेय के लिए इसका प्रयोग किया है ।

६९. तिन, तृन या तिनका -- सूखी घास या डांठी के टुकड़े को तृण या तिनका कहते हैं। यह इतना हल्का होता है कि हवा के एक झोंके से उड़ जाता है । सन्तकाव्य में भी इसका उपमान रूप में प्रयोग हुआ है, देह, अकिंचन, भक्त, उदास आदि उपमेयों के लिए ।

७०. शाखा, डाल, डारी, डार -- वृक्ष के निकले हुए उस भाग को डाल या शाखा कहते हैं, जिसमें पत्तियां और फल्ले निकलते हैं । सन्तकवियों ने जिन विभिन्न

उपमेयों के लिए इस उपमान का प्रयोग किया है, वे इस प्रकार हैं-- जगत,प्रकृतियां, शिराजाल, निरंजन, तिरवेणी, जन्मधारण, विषय संताप, हरि आदि ।

७१. पत्र या पत्ता -- सन्त कवियों ने उपमान रूप में इसका प्रयोग जिन रूपों में किया है, वे हैं-- पत्र, पत्ता,पात और पाती । पत्ते बहुत हल्के होते हैं । ये सदा वृक्ष पर नहीं रहते, अपने आप ही झड़ कर नीचे गिर जाते हैं । कमल तथा चक्र, मेरुदण्ड, इन्द्रिय, कर्मकाण्ड,विकार,प्रकृति, संसार,माखन, प्रापति,जीव,देह, आत्मा, पंच ज्ञानेन्द्रियां,प्राण, वायु आदि उपमेयों के लिए यह उपमान आया है ।

७२. मूल,जड़ या जरि -- पेड़ पौधों के जड़ या मूल का भी उपमान रूप में प्रयोग सन्तों ने किया है । यह उपमान भक्ति, प्राण, मूलाधार चक्र, विषयासक्ति, सांसारिक ऐश्वर्य, सुरति, कारण, राम, अनादिकाल आदि उपमेयों के लिए आया है ।

७३. बीज -- बीज उपमान का प्रयोग बीज,बीया,बीजु रूपों में सन्तों ने किया है । भारतीय कवियों ने बीज उपमान का प्रयोग अनेक स्थानों में किया है । संतकाव्य में जिन उपमेयों के लिए यह उपमान आया है, वे हैं-- सत्यनाम, कर्म,संचित पुण्य, ज्ञान ज्योति, पुण्य,पाप, जीव, वासना आदि ।

७४. तुलसी का बिरवा -- तुलसी का पौधा भी यहां बहुत पवित्र माना जाता है । इसकी पूजा की जाती है । तुलसी के पत्तों का उपयोग औषधि रूप में होता है । हिन्दू जाति के लोग अपने घर के आंगन में तुलसी का पौधा अवश्य लगाते हैं । भक्ति के तत्त्व, पंच तत्त्व या कुलकमल आदि के लिए यह उपमान आया है ।

प्रकृति वर्ग के अन्य तत्त्व या पदार्थ

७५. जल -- भारतीय संस्कृति एवं मुस्लिम संस्कृति दोनों में ही जल को प्रमुख तत्त्व माना गया है । पंच भौतिक तत्त्वों में जल एक प्रमुख तत्त्व है , जल तरल एवं शीतल होता है । यह हमारे जीवन का एक अभिन्न अंग है । जल के अभाव में कोई भी प्राणी जीवन धारण कर सकने में सर्वथा असमर्थ है । जल में कई ऐसे रसायन होते हैं जो हमारे जीवन के लिए अत्यावश्यक हैं । वर्षाजल और गंगाजल को सबसे अच्छा माना जाता है । जल अशुद्धियों को दूर कर पवित्रता लाता है । वैदिककाल से ही जल को बहुत महत्त्व प्रदान किया गया है,वरुण

एवं इन्द्र जल के देवता के रूप में पूज्य रहे हैं । सन्तकाव्य में भी जल उपमान रूप में प्रयुक्त हुआ है, जैसे-- जल,नीर,नीरा,पानी,पाणियां,नीरि,नीरू, जलु, आब, सलिल आदि । जिन उपमेयों के लिए जल उपमान आया है, वे इस प्रकार हैं -- सबदजल, कमल से निःसृत रस, अन्तःकरण, मन, काया,संसार, प्राण, हृदय, गुरू, उपदेश, हरिनाम, सद्गुरु, भक्ति, हरि, ब्रह्म, भक्त, माया, सत्यनिष्ठा, चेतन, जीव, जीवन,मोह, भरम, साधन, प्रीति,परमगति आदि । इस प्रकार हम देखते हैं कि जल का उपमान रूप में प्रयोग सन्तकवियों ने बहुत अधिक किया है ।

७६.<u>पंक</u> -- पंक,कीचड़ या कीच पानी के साथ मिले हुए मिट्टी,धूल आदि को कहते हैं । सन्तकवियों ने कांदो,काई, पंक आदि रूप में इस उपमान का प्रयोग किया है । पंच विकार या मनोविकार, प्रेम तथा विषय वासनाओं एवं विकारों आदि उपमेयों के लिए पंक उपमान कुल ८० आया है ।

७७.<u>ओला</u> -- मेघों से गिरने वाले बर्फ के टुकड़ों को ओला कहते हैं । ओला फसलों को नष्ट कर देता है, हानिकारक होने के कारण इसे कष्टदायी कहा जाता है । सन्तकवियों ने बहुजीवों के लिए तथा भक्तों के लिए इस उपमान का प्रयोग किया है ।

७८.<u>ओस</u> -- वायु मण्डल में मिली हुई उस भाप० को ओस कहते हैं, जो रात्रि में ठण्डी होकर जल-बिन्दु के रूप में गिरती है, देखते ही देखते यह प्रातःकाल विलीन हो जाती है । सन्तकवियों ने इस नश्वर संसार या जगत् को तथा व्यर्थ के वाह्याचारों को ओस कहा है ।

७९.<u>पवन</u> -- पवन या वायु ने पृथ्वी को चारों ओर से घेर रखा है, इसी में सांस लेकर प्राणी जीवित रहते हैं । वायु पंच भौतिक तत्वों में से एक महत्वपूर्ण तत्व है । सन्तकवियों ने उपमान रूप में इसका प्रयोग श्वास-प्रश्वास तथा काल के लिए किया है ।

८०.<u>बासुर</u> -- दिवस या दिन का भी सन्तों ने उपमान रूप में प्रयोग किया है । दिन नित्य ही हमारे लिए कर्म और जीवन का सन्देश लेकर आते हैं,मोहमयी रात्रि के पश्चात् दिन पुनः मानव को सचेत करके कर्तव्य रत करता है । जीवन तथा ज्ञान के लिए सन्तों ने इस उपमान का प्रयोग किया है ।

८१. निशि -- रैनि -- तिमिर -- का प्रयोग सन्तकाव्य में अज्ञान तथा भ्रम उपमेयों के लिए हुआ है, क्योंकि दिन भर के परिश्रम के उपरान्त मनुष्य या जीव रात्रि में निश्चिंत होकर निद्रामग्न रहते हैं। रात्रि जीव को मोहाच्छन्न रखती है, इसीलिए सन्तों ने इसे अज्ञान या भ्रम के प्रतीक रूप में माना है।

८२. बसंत ऋतु -- भारत मे षड् ऋतुओं में बसन्त ऋतु को विशेष महत्व प्राप्त है। इसे ऋतुराज की संज्ञा दी गई है। इस ऋतु में प्रकृति अपने अनुपम सौन्दर्य से समस्त जीवों को मोह लेती है। बसन्त ऋतु बरबस मानवों में नवीन जीवन का संचार करती है। सन्तकवियों ने यौवन के लिए इसउपमान का प्रयोग किया है।

ख३.
२- मानवेतर वर्ग

इस वर्ग में पशु-पक्षी एवं जीव-जन्तु और कीट आदि आ जाते हैं। भारतीय संस्कृति में पशुपक्षियों को भी महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। हमारे देवी-देवताओं के वाहन ये पशु पक्षी ही होते थे। इन वाहनों को भी पर्याप्त श्रद्धा प्राप्त है। प्राचीनकाल से ही पशु-पक्षियों का शिकार करने का चलन था। जिन पशु-पक्षियों का उपमान रूप में प्रयोग सन्तकाव्य में हुआ है, वे निम्नलिखि हैं :--

१. पशु -- सन्तकाव्य में अनेक पशुओं का उपमान रूप में प्रयोग हुआ है। पशु विवेकहीन जीव हैं, अपने कुछ प्रवृत्तियों से प्रेरित होकर अपनी इच्छानुसार आचरण करते हैं। अत: कुमत या मूर्ख मनुष्यों के लिए सन्तों ने इस उपमान का प्रयोग किया है।

२. सुरह या गऊ -- यह गऊ या गाय एक पालतू पशु है। भारतीय संस्कृति मे गाय को बहुत महत्व प्रदान किया है। किसी और पशु को इतना महत्व नहीं मिला है। गाय को माता कहकर हिन्दू उसकी पूजा करते हैं। गौ-वध को महापाप माना जाता है। प्राचीनकाल से ही ऋषि-मुनि गाय के दूध तथा उससे बनी वस्तुओं का सेवन करके दिन व्यतीत करते थे। दूध, दही, घी आदि को पवित्र मान कर हिन्दू लोग व्रत या उपवास के इ दिनों में इन्हीं का सेवन करते हैं। गौ पवित्रता एवं सात्विकता का प्रतीक है। सन्तकाव्य में भी इसका उपमान रूप में

प्रयोग सिद्धि,सज्जन,ज्ञान, सिष या शिष्य, साधक, रामनाम, जिज्ञासा,काया, इन्द्रिय, गुण, आत्मा , मुक्त, मन आदि उपमेयों के लिए हुआ है । जिन रूपों में गाय उपमान प्रयुक्त हुआ है, वे इस प्रकार हैं -- सुरह, गऊ,गाई,गाय, गोरू आदि ।

३. बैल -- बैल भी एक पालतू पशु है । भारत में अधिकतर बैलों से खेतों में हल चलवाया जाता है । बैलगाड़ियां आने-जाने और बोझा ढोने के साधन भी हैं । शंकर भगवान का वाहन नंदी बैलही है । सन्तकाव्य में बैल उपमान रूप में कई स्थानों में आया है । कर्मेन्द्रिय, देह या शरीर, कर्मकाण्ड आदि उपमेयों के लिए यह उपमान बनकर आया है ।

४. हस्ती,कुंजर,गज -- आदिकुछके रूपों में हाथी का उपमान रूप में प्रयोग संतकाव्य में हुआ है । यह भी भारत का एक प्रसिद्ध पशु है । पहले सवारी के लिए हाथियों का उपयोग किया जाता था, हाथियों पर चढ़कर लोग युद्ध करते थे । यह एक समझदार जानवर है । पहले सम्पन्न लोग हाथी अवश्य पालते थे, धनी लोग इसे अपनी शान समझते थे । हाथी के दांत बहुत मूल्यवान होते हैं,क्योंकि इससे बहुत तरह की वस्तुएं बनती हैं । हाथी की चाल बहुत प्रसिद्ध है । कवियों ने उपमान रूप में इसका प्रयोग किया है । हाथी मस्त जानवर है, किसी से डरता नहीं है । सन्तकवियों ने कई स्थानों पर इस उपमान का प्रयोग किया है । जिन उपमेयों के लिए यह उपमान बनकर आया है, वे इस प्रकार हैं --अहंकार, मति,मन,दुर्ष्ट मनुष्य, परमात्मा, माया, काम,कर्मकाण्ड,ज्ञान आदि ।

५. घोड़ा -- यह भी एक पालतू पशु है, भारत में ही नहीं,अन्य अनेक देशों में भी घोड़े को बहुत महत्व प्रदान किया जाता है । यह सवारी के काम में आता है । पहले युद्धक्षेत्र में घुड़सवारों की एक सेना होती थी, अश्व या घोड़े ही रथों में जाते थे । आज भी घोड़ों को अनेक कामों में लाया जाता है । यह पशु बहुत तेज से दौड़ता है । यह एक स्वामिभक्त जीव है । सन्तकाव्य में भी घोड़ा उपमान रूप में कई स्थलों पर आया है । ध्यान या ज्ञान,मन,आत्मा, प्रेम,मान, चित,पवन, तन आदि उपमेयों के लिए घोड़ा उपमान कई रूपों में प्रयुक्त हुआ है, जैसे-- अश्व, घोरै, घोड़ा,तुरंग,बाजि,बाजी आदि ।

६. करहा (ऊंट) --यह एक ऊंचा लम्बा, कूबड़ वाला जानवर है, जो सवारी और बोझ ढोने के काम में आता है । इसे मरुभूमि का जहाज कहते हैं, क्योंकि रेगिस्तान के बालू पर यही जानवर बहुत तेज चल सकता है । वहां यह अनेक कामों में आता है । कबीरदास ने केवल मन के लिए इस उपमान का प्रयोग किया है ।

७. मृग -- यह एक प्रसिद्ध पशु है । यह जंगलों में रहते हैं । मृग की आंखें बहुत सुन्दर होती हैं । यह बहुत चंचल जीव है । किसी-किसी मृग की नाभि में कस्तूरी होती है, लेकिन उन्हें इसका ज्ञान नहीं रहता । वे कस्तूरी को इधर-उधर खोजते फिरते हैं । मृग संगीतप्रेमी होता है। इसीलिए संगीत के कारण वह अपने को बन्दी बना लेता है । यह एक सीधा-सादा जानवर है । यह किसी को हानि नहीं पहुंचाता है । भारत के कवियों ने मृग का उपमान रूप में प्रयोग बहुत अधिक किया है । सन्तकाव्य में यह मृग, मिरग, मृगा, मिरगनि, मिरगा, हरिनि, मिरिग आदि रूपों में प्रयुक्त हुआ है, जिन उपमेयों के लिए यह मृग उपमान बनकर आया है, वे इस प्रकार हैं-- मन, जीव, भक्त, पंचज्ञानेन्द्रियां, जीवात्मा, पंचविकार, अनंग, रामभक्त, अज्ञानी जीव ।

८. केहरि -- इसे सिंह या शेर कहते हैं । यह वनों में रहने वाला हिंसक पशु है । सिंह को जंगल का राजा कहते हैं, क्योंकि यह बहुत भयानक पशु है, मांसभक्षी है । कवियों ने सिंह का उपमान रूप में अनेक बार प्रयोग किया है । सन्तकाव्य में अहंकार, संशय, ज्ञानेन्द्रिय, ज्ञान, काल, हठयोगी, पंचविकार, गुरु, अज्ञानी मनुष्य आदि उपमेयों के लिए केहरि या सिंह उपमान आया है ।

९. व्याघ्र -- व्याघ्र या बाघ भी एक वन्यपशु है और भयानक, मांसभक्षी जानवर है । सन्तकवियों ने व्याघ्र और बाघनि का उपमान रूप में प्रयोग दुष्टजनों तथा स्त्री, वासना आदि उपमेयों के लिए किया है ।

१०. जंबुक -- शृगाल या गीदड़ को जंबुक कहते हैं । यह भी एक मांसभक्षी पशु है । सन्तकाव्य में इसका उपमान रूप में प्रयोग कबीरदास ने जीवात्मा के लिए किया है । काल के लिए भी यह उपमान आया है ।

११. कपि -- कपि या बन्दर भी एक प्रसिद्ध पशु है । ये वनों में भी रहते हैं और नगरों और ग्रामों में भी । कुछ लोग बन्दर पालते भी हैं । ये पशु धृष्टता के लिए प्रसिद्ध हैं । बन्दर बहुत ही चालाक होते हैं, अधिकतर फल खाते हैं । बड़ी चालाकी से यह लोग दूसरों के हाथों से खाने की सामग्री छीन लेते हैं । भारत में बन्दरों को मारना पाप समझा जाता है, क्योंकि राम-रावण-युद्ध में वानर सेना ने राम की सहायता की थी, रामभक्त हनुमान वानर ही थे, जिनकी आज भी पूजा होती है । मूर्ख मनुष्यों, शठ, मनुष्य तथा मटणी आदि के लिए सन्तकाव्य में कपि उपमान आया है ।

१२. ससा -- ससा या खरगोश एक छोटा -सा पशु है जो सफेद और हल्के भूरे रंग रंग का सुन्दर जीव है । खरगोश बहुत चंचल और डरपोक प्राणी है । सन्त-कवियों ने इस उपमान का प्रयोग चंचलमन, सबद या जीव, श्वास तथा समस्त संसार आदिउपमेयों के लिए किया है ।

१३. मंजारी -- मंजारी या बिल्ली एक पालतू पशु है । यह घर-घर में पाई जाती जाती है । वैदिक साहित्य में भी इसका उल्लेख है । सन्तकाव्य में कई रूपों में इसका उल्लेख हुआ है, जैसे--मिनकी, मिनी, मंजारी, मंजार, बिलाई, बिलइया आदि । जिन उपमेयों के लिए यह उपमान रूप में आई है, वे इस प्रकार हैं -- मति, मृत्यु, शरीर या काल, मनोविकार, दुर्मति, यम या यम आदि ।

१४. श्वान -- श्वान या कुत्ता भी एक पालतू जानवर है । यह सड़कों पर भी इधर-उधर घूमते हुए पाए जाते हैं । काटना इनका स्वभाव है, पागल कुत्ते से तो सभी डरते हैं । कुत्ते का विष बड़ा भयानक होता है, बच्चों बालभी असर करता है । यह बड़ा स्वामीभक्त जानवर है । चोरों से यह घर की रक्षा करता है । संतकाव्य में कई रूपों में इसका प्रयोग हुआ है जैसे-- कूता, स्वाना, श्वान आदि । इस उपमान का प्रयोग अज्ञानी मनुष्य, काल, अज्ञान, शरीर और संशय आदि उपमेयों के लिए हुआ है । इन पशुओं के अतिरिक्त स्थान स्थलों पर सियार, गधा, भैंस, बंदरी, ऊंट, सुआ, नाहर, रोझ(नील गाय), चीता, ब्याघ्र, सिंह आदि पशुओं का भी उपमान रूप में प्रयोग हुआ है ।

१५. पक्षी -- भारत में साहित्यकारों ने पक्षियों का उपमान रूप में बहुत अधिक प्रयोग किया है । अपने रूप रंग और सुमधुर बोलियों के कारण इन पक्षियों ने सबको अपनी ओर आकर्षित कर लिया है । सन्तकवियों ने जिन रूपों में इस उपमान का प्रयोग किया है, वे इस प्रकार हैं -- पंखि, पंखी, चिड़ियें, पखेरुवा, पक्षी, पंछी, पंछीया, विहंगम । मन, जन, चित, प्राण, भक्त, आत्मा, ज्ञानी, विहंगम मार्गों, विषय वासनाएं तथा पंच ज्ञानेन्द्रियों के लिए पक्षी उपमान का प्रयोग सन्तों किया है ।

१६. हंस -- यह बतख के आकार का जलपक्षी है, बड़े झीलों या जलाशयों में रहता रहता है । हंस एक बहुत प्रसिद्ध पक्षी है, यह सरस्वती देवी का वाहन है । हंस की गति को बहुत सुन्दर माना गया है, इसीलिए कवि अपनी नायिकाओं को हंसगामिनी कहते हैं । ऐसा विश्वास किया जाता है कि हंस नीर-क्षीर विवेकी होता है । सन्तकवियों ने भी इसका उपमान रूप में प्रयोग किया है, जिन रूपों में हंस उपमान आया है वे हैं -- हंसा, हंसहिं, हंस । जिन उपमेयों के लिए यह उपमान आया है, वे इस प्रकार हैं -- परमात्मा या ब्रह्म, जीवात्मा, मन, प्राण, भक्त, साधक, विवेक, साधु-सन्त, जीव आदि ।

१७. बगुला -- यह एक सफेद रंग का पक्षी है, इसकी टांगें, चोंच और गला लम्बा होता है और पूंछ छोटी होती है । यह पक्षी जलाशयों के तट पर बैठकर एकटक पानी में देखता रहता है और मछलियों को देखते ही पकड़ लेता है । सन्तों ने बग या बगुली का उपमान रूप में प्रयोग माया, असन्त, मूर्ख या पाखण्डी मनुष्य, श्वेतकेश तथा काल आदि उपमेयों के लिए किया है ।

१८. मुरगी -- यह जल में रहने वाला एक पक्षी है । विशेषतया यह है कि जल में रहते हुए भी इसके पंख जल से असम्पृक्त रहते हैं । इसलिए प्राय: सन्तकाव्य में निर्लिप्त व्यक्ति के लिए यह उपमान प्रयुक्त हुआ है ।

१९. चकोर -- यह एक प्रकार का बड़ा पहाड़ी तीतर है जो चन्द्रमा का अनन्य प्रेमी है । चकोर के लिए यह प्रसिद्ध है कि यह चन्द्रमा से इतना अधिक प्रेम करता है कि एकटक उसी को निहारता रहता है । यह कविप्रसिद्धि है कि चकोर अंगार भक्षण करता है । चकोर के चन्द्रमा के प्रति अनन्य प्रेम ने कवियों को बहुत अधिक प्रभावित किया है, इसीलिए उन लोगों ने चकोर का

उपमान रूप में बहुत अधिक प्रयोग किया है। सन्तकाव्य में भी चकोर उपमान रूप में कई स्थलों में प्रयुक्त हुआ है । जिन उपमेयों के लिए यह उपमान आया है, वे हैं -- भक्त, जीवात्मा, नैन,सेवक ।

२०. चकवा -- एक प्रकार का पक्षी जो जल में या उसके किनारे रहता है । चकवा पक्षी के लिए यह प्रसिद्ध है कि वह रात्रि में अपने चकई या चकवी से बिछुड़ जाता है । इस प्रकार रात भर ये पक्षी एक-दूसरे के वियोग में घूमते रहते हैं । इस पक्षी का भी उपमान रूप में प्रयोग हुआ है । सन्तकाव्य में चित के लिए चकवा उपमान का प्रयोग किया गया है ।

२१. चात्रिग या चातक पक्षी -- यह बहुत लोकप्रिय पक्षी है । यह बड़े मधुर स्वर में बोलता है । चातक का स्वाती जल के प्रति एकनिष्ठ प्रेम बहुत प्रसिद्ध है । ऐसा विश्वास किया जाता है कि ये पक्षी केवल स्वाती नक्षत्र के जल को पीता है, चाहे कितना प्यासा हो, अन्य नक्षत्र का जल नहीं पीता । सभी कवियों ने इस पक्षी का उल्लेख किया है । सन्तकाव्य में भक्त,विरहिणि,जीव, मन या चित तथा जीवात्मा के लिए चातक,चात्रिग या चातक उपमान का प्रयोग किया गया है ।

२२. क्रौंच या कुंज -- जल के किनारे रहने वाली एक बड़ी चिड़िया को क्रौंच,कुंज या करांकुल कहते हैं । इस पक्षी का उल्लेख रामायणकार वाल्मीकि ने भी किया है । सन्तकवियों ने भी उपमान रूप में क्रौंच पक्षी का उल्लेख किया है । जीवात्मा के लिए इस उपमान का प्रयोग किया गया है ।

२३. मोर -- मोर या मयूर एक सुन्दर पक्षी है, जो अपने सुन्दर पंखों के कारण प्रसिद्ध है । इसकी ग्रीवा भी सुन्दर मानी जाती है । वर्षाऋतु में मेघों को देखकर ये पक्षी बहुत प्रसन्न होकर नृत्य करने लगते हैं । भक्त तथा मन अन्तःकरण आदि उपमेयों के लिए इस उपमान का प्रयोग सन्तकवियों ने किया है ।

२४. तीतर -- यह एक बहुत प्रसिद्ध पक्षी है जो बहुत चंचल है तथा तेज बोलता है । इन पक्षियों को लोग आपस में लड़ाते भी हैं । कुछ लोग तीतर पालते भी हैं । सन्त कवियों ने इसका उपमान रूप में उल्लेख किया है,मनुष्यों या जीवों के लिए ।

२५. गरुड़ -- पुराणों में गरुड़ को कश्यप और विनता का पुत्र कहा गया है । गरुड़ को पक्षिराज माना जाता है । यह भगवान विष्णु का वाहन है । यह पक्षी सर्पों को खाता है । सन्तकवि ने हरि के लिए गरुड़ उपमान का प्रयोग किया है ।

२६. सुक -- शुक या तोता एक पालतू पक्षी है । यह हरे रंग का होता है और इसकी चोंच लाल रंग की होती है, तोता देखने में बहुत सुन्दर होता है । तोता अधिकतर फल खाता है, इसकी एक विशेषता यह भी है कि यह मनुष्यों की बोली सीख लेता है, जो सुनता है, उसे सीख कर दुहराता है । अपने इन सब गुणों के कारण शुकपक्षी बहुत लोकप्रिय पक्षी है । लोग अपने घरों में इसे पालते हैं । सन्तकाव्य में भी यह पक्षी कई रूपों में उपमान बनकर आया है, जैसे सुवटा, सुवे, सुक, सुवटा, सुवा, सुवटां आदि । जिन उपमेयों के लिए यह उपमान आया है, वे हैं -- मन,प्राण, मनुष्य, जन, जीवात्मा ।

२७. चिड़ा -- इस पक्षी को गौरैया कहते हैं । यह एक काले रंग का पक्षी है । सन्तकाव्य में नर या मनुष्य के लिए यह उपमान आया है, जिसका जीवन क्षणिक होता है ।

२८. कउवा -- इसे काग या कौवा कहते हैं । यह अपने काले रंग के कारण कुरूप पक्षी माना जाता है । इसकी बोली भी बहुत कर्कश होती है । कौए को कोई पसन्द नहीं करता है । यह सदा से तिरस्कृत है । इसकी दृष्टि बड़ी तीक्ष्ण होती है । सन्तकाव्य में उपमानरूप में जिन उपमेयों के लिए इस पक्षी का उल्लेख हुआ है, वे इस प्रकार हैं -- मन,आत्मा,कर्मेन्द्रिय,बुद्धि आदि ।

२९. बाज -- एक प्रसिद्ध शिकारी पक्षी को बाज कहते हैं । इसे श्येन या बैयान भी कहते हैं । बाज पक्षी अपनी ही जाति की छोटी पक्षियों का शिकार करता है । सन्तकाव्य में कई स्थानों पर इस पक्षी का उपमान रूप में उल्लेख हुआ है । व काल,सुरति, लौ या लगन, शरीर, विहुल, मन आदि उपमेयों के लिए इस उपमान का प्रयोग हुआ है ।

३०. बटेर -- लवा की तरह एक छोटी चिड़िया को बटेर कहते हैं । इसका भी उपमान रूप में उल्लेख सन्तकाव्य में शरीर या आत्मा के लिए हुआ है ।

३१. पोत -- एक प्रकार का सफेद पक्षी । इसका प्रयोग सन्तकवि ने कर्मेन्द्रिय के लिए किया है ।

जीव जन्तु कीट पतंग वर्ग

इस वर्ग में कच्छप, दादुर, मीन, चींटी, कीट, सर्प, बिच्छू, पतंग, मक्षिका, भ्रमर आदि आ जाते हैं ।

३२. कछुवा -- यह जल में रहने वाला जीव है, इसके ऊपर कड़ी कड़ी ढाल की तरह खोपड़ी होती है । हमारे पुराणों में कच्छप को बहुत महत्व प्रदान किया गया है । यह कहा गया है कि कच्छप की पीठ पर पृथ्वी टिकी हुई है । विष्णु भगवान के विभिन्न अवतारों में से कच्छपावतार भी एक है । इस उपमान का प्रयोग सन्तकवियों ने ज्ञानेन्द्रिय के लिए किया है ।

३३. दादुर या मेंढक -- यह भी जल में रहने वाला जीव है । मेंढक कीड़े-मकोड़े खाता है । वर्षा ऋतु में यह कर्कश स्वर में टर्र-टर्र करता है । यह सभी स्थानों में पाया जाता है । सन्तकाव्य में उपमान रूप में इसका उल्लेख हुआ है । जिन उपमेयों के लिए यह उपमान आया है वे हैं-- मन, आत्मा, मूर्ख व्यक्ति, वचन । यह उपमान विभिन्न रूपों में प्रयुक्त हुआ है, जैसे-- दादुल, दादुर, मींडका, मेंक, दादिरा आदि ।

३४. मीन -- यह उपमान जिन विभिन्न रूपों में सन्तकाव्य में आया है, वे हैं -- मीनु, मीन, मछरी, मंछ, मछली, मच्छ, मंछा, मंछी, मछली, माछला । मीन जल के बिना जीवित नहीं रह सकती । यह सदा जल में ही रहती है, विष्णु ने मत्स्यावतार भी लिया था । सन्तकवियों ने उपमान रूप में मीन या मछली का उल्लेख अनेक स्थानों पर किया है । जिन उपमेयों के लिए यह उपमान आया है, वे इस प्रकार हैं-- जीवात्मा, जीव, वायु, पवन या प्राण, मनसा, सुरति, मनुष्य, अज्ञानी जीव, मानसिक वृत्ति, भक्त आदि ।

३५. कीट या कीड़ा -- कीड़ा मकोड़ा रेंगने या उड़ने वाले क्षुद्र जीव को कहते हैं । यह क्षुद्रता का प्रतीक है । सभी इसका तिरस्कार करते हैं । इन जीवों का

संसार में कोई महत्व नहीं है, जैसे आते हैं, वैसे ही चले जाते हैं । सन्तकाव्य में इन क्षुद्र कीटों का भी उपमान रूप में उल्लेख हुआ है, विभिन्न रूपों में, जैसे -- कीरा, कीड़ा, कीर, कीरी, कीड़िये, कीटक, कीट, गोमकाट, विषकीड़ा आदि । सन्तकवि संसार से विरक्त हो चुके थे, अत: यहां की नश्वरता या क्षणभंगुरता, अज्ञानी जीवों की मूर्खता आदि का वर्णन करने के लिए उन्होंने इन सब उपमानों का आश्रय लिया है । जीव, शिष्य, गंवार या मूर्ख नर, सूक्ष्म-बुद्धि, दुष्टजन, भक्त, भक्तिहीन मनुष्य, काल आदि उपमेयों के लिए इस उपमान का प्रयोग किया गया है ।

३६. चींटी -- चींटी या पिपीलिका एक छोटे कीड़े को कहते हैं जो भूमि के पर रेंगते या झुंड के झुंड चलते हैं, इनको मीठा बहुत प्रिय है । चींटी बहुत तेज काटती है । ये हाथी जैसे बड़े जन्तु को भी काटकर पीड़ा पहुंचाती है । स सन्तकवियों ने हठयोगी के लिए तथा जीवात्मा के लिए इस उपमान का प्रयोग किया है ।

३७. नाग या सर्प -- सन्तकाव्य में जिन विभिन्न रूपों में यह उपमान प्रयुक्त हुआ है, वे हैं -- नाग, नागिनी, भुजंग, भुजंगा, सर्प, भुवंगा, भुजंगम, सरप, अध सर्पिनी, विषधर, सांपणि, शेषनाग, सांप, अहि, अय आदि । नाग या सर्प एक प्रसिद्ध रेंगने वाला लम्बा जीव या कीड़ा है, इसकी अनेक जातियां होती हैं । कुछ सर्प तो विषैले नहीं होते और कुछ बहुत विषैले होते हैं, ऐसे सर्प तो काटकर प्राण ही ले लेते हैं । भारत में अनेक जातियों के सर्प पाए जाते हैं । ये पेड़ों पर, जलाशयों में या उनके किनारे तथा भूमि के अन्दर बिल बनाकर रहते हैं । सर्प संगीत प्रेमी होते हैं, इसीलिए सपेरा बीन बजाकर इन्हें अपने वश में कर लेता है । यह जीव पुष्पों की सुगंधि का भी प्रेमी होता है । ऐसा विश्वास किया जाता है कि कुछ सर्पों के फन में मणि होती है । नागपंचमी के दिन लोग नागों को दूध पिलाते हैं । भारतीय संस्कृति में इनको बहुत महत्व प्रदान किया गया है, शंकर जी के गले में भी सर्प को स्थान मिला हुआ है । सन्तकवियों ने ब जिन उपमेयों के लिए सर्प या नाग उपमान का अप्रयोग किया है वे इस प्रकार हैं-- पंचमनोविकार, अशीव प्रवृत्तियां, भामिनी, कुंडलिनी, संसार, इन्द्रियां, पंचतत्व,

विरह,दुष्टजन,मनुष्य, विषय-वासनाएं,निर्गुणी,कामिनी, काल,वैनी, भक्त, आशा तृष्णा, सम्मान,परमात्मा, मदन, चिन्ता, पंचप्राण,संसया (संशय) मन,माया,तन ।

३८. बिच्छू -- बिच्छू एक प्रसिद्ध छोटा सा जहरीला कीड़ा है, इसके जहरीले डंक होते हैं । यह कीड़ा बहुत पीड़ादायक होता है । सन्तकाव्य में यह उपमान बड़ाई के लिए आया है ।

३९. पतंग -- उड़ने वाले छोटे-छोटे कीड़े मकोड़े को पतंग या पतिंगा कहते हैं । ये दीपक की लौ से आकर्षित होकर उसी में अपने आपको जला देते हैं । कवियों ने उपमान रूप में इसका प्रयोग बहुत व अधिक किया है । सन्तकवियों ने कुगम या मूर्ख नरों, मनोविकारों, भक्तों,चोरों,शूरवीर,मनसा,मैल आदि उपमेयों के लिए इस उपमान का प्रयोग किया है ।

४०. भृंग -- भृंगी एक उड़ने वाला प्रसिद्ध कीड़ा है । इसकी यह विशेषता है कि यह अपने सम्पर्क में आने वाले अन्य कीड़ों को अपने ही समान कर लेता है । सन्तकवियों ने इस उपमान का उल्लेख अनेक स्थलों पर किया ह । जिन उपमेयों के लिए भृंगी उपमान आया है, वे हैं -- ब्रह्म, सद्गुरू, साधु,राम ।

४१. मक्षिका -- मक्खी या माखी एक प्रसिद्ध छोटा सा उड़ने वाला कीड़ा है । यह सर्वथा त्याज्य ह । मक्खी गन्दगी फैलाती है, इससे बहुत से रोग फैलते हैं । सन्तकाव्य में भी मक्खी का उपमान रूप में प्रयोग कृपण,जीव,पापी,मन,मनुष्य आदि के लिए हुआ है । मधुमाखी या शहद की मक्खी का भी उपमान रूप में उल्लेख हुआ है मन तथा लालची के लिए ।

४२. मकरी -- आठ पैरों वाला एक प्रसिद्ध कीड़ा जिसकी अनेक जातियां होती हैं । यह जाल बुनकर उसी में रहती है और अपने शिकार को उसी जाल में फंसाकर मार डालती है । सन्तकवि ने जाल उपमेय के लिए इस उपमान का उल्लेख किया है ।

४३. भ्रमर -- सन्तकवियों ने कई रूपों में इस उपमान का उल्लेख किया है-- भंवर,भंवरी, भंवरा,मधुकर, अलिकुल, भ्रमर आदि । भ्रमर का उपमान रूप में उल्लेख अनेक कवियों ने किया है, यह एक प्रसिद्ध कीट है । भ्रमर या भौंरा रस का लोभी है ,इसलिए फूलों पर मंडराता रहता है । कमल से वह बहुत प्रेम करता है, ऐसा कहा जाता है

कि रात्रि में ये कमल के अन्दर ही बन्द हो जाता है । भारतीय साहित्य में भ्रमर चंचलता, लंपटता तथा लोलुपता का प्रतीक है, यह एक अतिप्रसिद्ध उपमान है । सन्तकवियों ने जिन उपमेयों के लिए इस उपमान का प्रयोग किया है, वे हैं -- काले केश, अन्तरात्मा, दास,मन, सन्तजन, जीवात्मा, शुद्ध हृदय, जाव, प्राणी(दुष्टजन) आदि ।

३- काल्पनिक वर्ग

कुछ वस्तुएं या स्थान ऐसे हैं जो इस लोक से परे है, किन्तु पुराणों में जिनका उल्लेख कियागया है, पुराणों से मान्यता प्राप्त इन वस्तुओं को साहित्यकारों ने अपनाया है । सन्तकाव्य में भी कुछ ऐसे उपमान आए हैं ।

१, अमृत -- पौराणिक मान्यता है कि समुद्रमन्थन के फलस्वरूप जो चौदह रत्न निकले थे उनमें से यह अमृत नामक बहुमूल्य रत्न भी एक था । ऐसा विश्वास किया जाता है कि अमृतपान करने से अमर हो जाते हैं, काल का भय समाप्त हो जाता है । यह जीवों में शक्ति का संचार कर सकने में पूर्ण समर्थ है । सन्त कवियों ने इस उपमान का प्रयोग भक्तिरस, नाम, भजन, धुनि,हरिनाम, आत्मानुभूति, सद्गुरु, सन्त, राम आदि के लिए किया है । इसी प्रकार इन सन्तों ने देवलोक या परमधाम के लिए अमृत घना तथा परमानन्द के लिए अमरफल उपमानों का प्रयोग किया है ।

२, संजीवन बूटी -- रामनाम के लिए संजीवन बूटी उपमान का प्रयोग सन्तकवियों ने किया है । संजीवनी बूटी या जड़ी एक प्रकार की कल्पित औषधि है,जो जीवों को पुनरुज्जीवित करने में समर्थ है । लक्ष्मण के शक्ति लगने पर हनुमान जी इसी बूटी को ले आए थे, जिसके द्वारा मूर्छित लक्ष्मण को जीवन मिला ।

३, चिंतामणि -- एक प्रकार का कल्पित रत्न जिसको प्राप्त करके लोगों की समस्त इच्छाएं या अभिलाषाएं पूर्ण हो जाती हैं । सन्तकाव्य में यह उपमान इन में प्रयुक्त हुआ है, हरि,परमात्मा,सुमति(सुबुद्धि) आदि उपमेयों के लिए ।

४, कल्पतरु(कल्पद्रुम) -- पुराणों के अनुसार समुद्र मन्थन के समय निकला हुआ एक रत्न कल्पवृक्ष भी है । यह वृक्ष देवलोक में है और अविनश्वर है । कहते हैं

कि कल्पवृक्ष सब कुछ देने वाला है । जिस वस्तु की मांग की जाए उस वस्तु को यह वृक्ष दे देता है । सन्तकाव्य में ज्ञान और भाव के लिए कल्पद्रुम उपमान आया है और भक्तिभाव के लिए कल्पद्रुम आया ।

५. कामधेनु -- पुराणों में एक गाय का वर्णन हुआ है जो सभी इच्छित वस्तुओं को देने वाली है सभी मनोकामनाओं को पूर्ण करती है इसी गाय को कामधेनु कहते हैं । सन्तकवियों ने परमेश्वर और मनस के लिए इस उपमान का प्रयोग किया है ।

६. मानसरोवर -- हिमालय पर्वत की एक ऊंची चोटी को कैलाश कहते हैं, यहां शिवा जी का निवास है । इसी स्थान पर मानसरोवर नामक एक बड़ी झील है, जिसके लिए कहा गया है कि बहुत सुन्दर है । मानसरोवर में राजहंस रहते हैं जो केवल मोतियों को चुन-चुनकर खाते हैं । सन्तकाव्य में हृदय या मन के लिए यह उपमान प्रयुक्त हुआ है । सहस्रारचक्र या शून्यमण्डल को कैलाश भी कहा गया है, यहीं पर मानसरोवर की कल्पना की गई है, जिसमें चित्तरूपी हंस निर्लिप्त होकर निवास करता है ।

७. कंचनमेर -- यह सुमेरु पर्वत पुराणों के अनुसार सभी पर्वतों का राजा है और पूरा पर्वत ही सोने का है, इसीलिए इसे स्वर्णपर्वत कहते हैं । सन्तकाव्य में राम के लिए यह उपमान आया है ।

८. कंचनमिरग -- रामायण में स्वर्णमृग का उल्लेख हुआ है, रामवनवास व के समय मारीच नामक राक्षस स्वर्णमृग बनकर रामसीता को आकर्षित करने के लिए आया था । रामकथा के लिए सन्तकवि ने इस उपमान का प्रयोग किया है ।

९. बेगमपुरा -- सन्तों ने बेगमपुर नामक एक ऐसे नगर की कल्पना की है, जहां दुःख कष्ट न हो केवल परमानन्द की प्राप्ति हो । सहज स्थिति के लिए बेगमपुरा उपमान प्रयुक्त हुआ है ।

१०. शैतान -- मनुष्यों को सन्मार्ग या धर्ममार्ग से हटाकर भ्रम में डालने वाले को इस्लाम धर्म में शैतान कहा गया है । शैतान का काम ही यह है कि पथभ्रष्ट करके बहकाकर जीवात्मा को परमात्मा से विमुख कर देना । इसीलिए धर्मानुसार आचरण करते हुए मनुष्यों को शैतान से बचना चाहिए । सन्तकवियों ने मन के लिए शैतान तथा प्रेत-पिशाच आदि उपमानों का प्रयोग किया है । इसके अतिरिक्त सन्तकवियों ने राक्षसी, डायन, डाकिनी आदि उपमानों का प्रयोग

तृष्णा,बदन,नारी,माया,मनोविकार आदि उपमेयों के लिए किया है ।

४- मानव वर्ग

मानव वर्ग के अन्तर्गत सर्वप्रथम 'व्यक्ति-विशेष' का उपमान रूप में उल्लेख किया गया है । कुछ व्यक्ति तो पौराणिक हैं और कुछ सामान्य । इनमें भी दो वर्ग के व्यक्ति हैं, एक तो वे जिन्हें पुरुष वर्ग में रखा गया है और दूसरे वे जिन्हें स्त्री वर्ग में रखा गया है ।

पुरुषवर्ग -- पौराणिक व्यक्ति

१. कान्ह -- कृष्ण या कान्ह देवकी वसुदेव के पुत्र माने गए हैं । महाभारत में द्वारिकाधीश के रूप में श्रीकृष्ण का उल्लेख हुआ है, ये अर्जुन के मित्र थे । कुरुक्षेत्र में श्रीकृष्ण ने अर्जुन को जो उपदेश दिए थे, वे भगवद्गीता के रूप में प्रसिद्ध हैं ये हिन्दुओं का पवित्र धार्मिक पुस्तक है, श्रीकृष्ण को योगिराज कृष्ण भी कहा गया है । गोपाल एवं गोविन्द रूप में भी इनका उल्लेख हुआ है । विष्णु के विभिन्न अवतारों में कृष्णावतार भी एक है । सन्तकाव्य में कान्ह,वासुदेव, कान्ह अहीरा, गोविंद आदि रूपों में इस उपमान का उल्लेख मन,शिवतत्व, जीव,साधक, योगी,पीव आदि उपमेयों के लिए हुआ है ।

२. शिव -- शिव या शंकर जगदीश या जग के पिता कहे जाते हैं । ये हिन्दुओं के बहुत प्रसिद्ध देवता हैं, सम्पूर्ण भारत में शिवाजी की पूजा होती है । वेदों में भी रुद्र रूप में ये पूज्य थे । सृष्टि का विनाश या प्रलय भी शंकर ही करते हैं और उनके मंगल करने वाले भी शिव ही हैं । कैलाश पर्वत पर इनका निवास माना गया है । सन्तकवियों ने भी उपमान रूप में शिव का उल्लेख किया है ।

३. ब्रह्मा -- इन्हें विधाता या सृष्टिकर्ता भी कहते हैं । ब्रह्म के तीन सगुण रूप ब्रह्मा, विष्णु और महेश हैं, इनमें सृष्टि की रचना ब्रह्म,ब्रह्मा मैं करते हैं । सन्तकाव्य में काया व या शरीर केलिए यह उपमान आया है ।

४. नारद -- एक मन्त्रद्रष्टा ऋषि हैं । इन्हें देवर्षि नारद कहते हैं । ये देवताओं और मनुष्यों के मध्य दूतरूप में प्रसिद्ध हैं । नारद ब्रह्मा के मानसपुत्र माने जाते हैं । ये बहुत बड़े हरिभक्त माने गए हैं । इनके हाथ में वीणा सदा रहता है । लोग नारद को कलहप्रिय और झगड़ा कराने वाला कहते हैं । सन्तकवि ने मन के लिए

नारद उपमान का उल्लेख किया है ।

सामान्य वर्ग

सन्तकवियों ने सामान्य वर्ग के व्यक्तियों का भी उपमान रूप में उल्लेख किया है, जैसे --बैरागी, मुल्ला, कुटवाल, पातुरा, गारुड़ी, फकीर, आसिक, वैद, हाकिम, राजा, शहजादा, अमीर, प्रधान, दरबानी, गढ़पति, सूरा, साहेब, बाबा, दुलहा, बराती, बनेड़ी, बनमाली, नट , सौदागर, कसौटीदार, जौहरी, मरजीवा, केवट, पीलवान, सिकलीगर, लुहार, कुम्हार, धोबी, बेड़ो, कुठारा, बणजारा, किरसाना, भिखारा, बटपाड़ा, चोर, जुवारी, रंक, अंधा, गूंगा, पंगुल, सारथी, सतिगुरु, चेला, जोगी, नाह या पति, देवर, जेठ, ससुर, बालक, पिता, कमीवर आदि ।

१. सद्गुरु -- प्राचीनकाल से ही हिन्दू संस्कृति में गुरु को बहुत अधिक महत्व प्रदान किया गया है । भारत में जो स्थान गुरु को मिला है, या मिलता है वह संसार के के अन्य किसी देश में नहीं मिलता । गुरु केवल पुस्तकीय ज्ञान वितरण करने वाला मात्र शिक्षक ही नहीं है, अपितु विद्यार्थी या शिष्य के इहलोक और परलोक दोनों लोकों को बनाने वाला है, शिष्य को सद्गति प्रदान कराने वाला गुरु ही है । अज्ञानान्धकार को दूर हटाकर शिष्य को ज्ञानालोक प्रदान करना गुरु का ही कार्य है । गुरु निस्वार्थ भाव से शिष्य को विद्यादान करता है और उसके हित कल्याण में लगा रहता है । शिष्य गुरु में ही भगवान के दर्शन करता है। हिन्दी सन्तकवि भी हिन्दू संस्कृति से प्रभावित हैं । इन कवियों ने भी गुरु को बहुत अधिक महत्व प्रदान किया है । पाखण्डी गुरु की निन्दा करते हुए सन्तों ने सद्गुरु को बहुत ऊंचा स्थान दिया है । कबीर के लिए तो गोविन्द तक पहुंचाने वाले सद्गुरु अधिक पूज्य हैं ,सभी सन्तकवियों ने सर्वप्रथम गुरु की ही वन्दना की है । गोव्यंद(गोविन्द),परमात्मा, अविनाश आदि के लिए सन्तकाव्य में गुरु उपमान का उल्लेख हुआ है ।

गुरु के साथ ही चेला या शिष्य के उपमान जीव, चित्त, शब्द भाव, पंचौं(विकार) आदि के लिए आया है ।

२. जोगी-- योग करने वालों को जोगी या योगी कहते हैं । योगाभ्यास करके सिद्धि प्राप्त करने वाले तथा आत्मज्ञानी को योगी कहते हैं । संसार से विरक्त होकर

कुछ लोग सारंगी बजाकर भगवद् भजन करते फिरते हैं और इसप्रकार भिक्षा लेकर जीवनयापन करते हैं, ऐसे लोगों कोभी जोगी कहते हैं । सन्तकवियों ने जोगी उपमान का प्रयोग आत्मा,परमेश्वर,मन तथा साधक के लिए किया है ।

३. फकीर -- ऐसे मुसलमान भिक्षुकों को फकीर कहते हैं,जो संसार से विरक्त होकर निर्जन स्थानों में रहते हैं । ऐसे व्यक्ति निर्धन होते हैं और निरासक्त होकर घूमते र हैं । मन के लिए सन्तकवि ने इस उपमान का उल्लेख किया है ।

४. बटाऊ या बटोही -- राह चलने वाले पथिक को बटाऊ कहते हैं । इनका उद्देश्य अपने स गन्तव्यस्थल तक पहुंचना है, राह में पड़ने वाले स्थानों,वस्तुओं या लोगों के प्रति ये उदासीन रहते हैं । मनुष्यों को संसारपथ के पथिक मानकर उनका उद्देश्य परमपद की प्राप्ति बताया गया है । कवियों ने पथिक या बटोही उपमान का प्रयोग बहुत अधिक किया है । सन्तकवियों ने भी इस उपमान का प्रयोग किया है । जिन उपमेयों के लिए यह स उपमान प्रयुक्त हुआ है वे हैं-- मानव,जीवात्मा,साधक आदि ।

५. अहेरी -- शिकार खेलने वाले शिकारी या आखेटक को अहेरी कहते हैं । वन्यपशुओं का शिकार करने की प्रथा प्राचीनकाल से ही चली आ रही है । राजा राजकुमार लोग तो अपना मनोरंजन करने के लिए शिकार अवश्य करते थे । सन्तकाव्य में अहेरी उपमान का प्रयोग काल के लिए किया गया है ।

६. बटपारा,ठग, चोर -- राह चलते लोगों को मार कर उनका सामान लूट लेना ही ठग,बटमारों का काम है । ये मनुष्यों को धोखादेकर भी उनका सामान ले लेते हैं, इन लोगों की यही जीविका है । चोर भी लोगों के घरों के में घुसकर धन या अन्य सामग्री चुरा लेते हैं । इन सब का सन्तकवियों ने उपमान रूप में अनेक स्थलों पर उल्लेख किया है । बटमार या बटपारा अर्थ ठग आदि उपमानों का प्रयोग जिन उपमेयों के लिए हुआ है, वे इसप्रकार हैं -- पंचविकार,काल, पंचेन्द्रियां,परमात्मा या हरि, काम,क्रोध,ज्ञानी आदि । चोर या पंच चोर उपमान आया है, वासना, मदन या काम, पंच ज्ञानेन्द्रियां, पंचविकार आदि के लिए ।

७. मरजीवा -- समुद्र में डूबकर उसके भीतर से मोती आदि बहुमूल्य रत्नों को जो निकालता है, उसे मरजिया कहते हैं । अपने प्राणों की आशंका को त्याग कर वे लोग समुद्र के गर्भ में चले जाते हैं और अथक परिश्रम के परिणामस्वरूप रत्नों को

प्राप्त करते हैं । मरजिया उपमान का अनेक कवियों ने उल्लेख किया है । संसार-सागर में रहते हुए जो साधक अपनी कठोर साधना द्वारा परमतत्व क रूपी दिव्यरत्न प्राप्त करता है, उसे मरजिया कहा गया है । अत: सन्तकवियों ने इस उपमान का प्रयोग साधक,जीवनमुक्त तथा मन के लिए किया है ।

८. जुलाहा -- वस्त्र बुनने वाले तंतुवायों को जुलाहा कहते हैं । सूत कातना और उससे कपड़ा बुनना यही जुलाहों का काम है । जुलाहों का आरम्भ से ही यहां बहुत महत्व है । जब कल-कारखाने नहीं थे तब ये तंतुवाय या वयन जीवी ऐसे सुन्दर वस्त्र बुनते थे कि विदेशी तक प्रभावित हो जाते थे । यह व्यवसाय बहुत उन्नत व्यवसाय माना जाता था । प्रसिद्ध सन्त कवि कबीर भी जुलाहा थे । सन्तकवियों ने इस उपमान का अनेक स्थलों पर प्रयोग किया है । ब्रह्म या परमात्मा जीव तथा मन के लिए जुलाहा उपमान प्रयुक्त हुआ है ।

९. नाह,पति, प्रीतम या पिव -- सन्तकाव्य में इन सबका उपमान रूप में प्रयोग किया गया है । भारत में ब्रह्म या ईश्वर का स्वामी या पति रूप में वर्णन किया गया है । अनेक कवियों ने अपने इष्टदेव या ब्रह्म को पति रूप में माना है और स्वयं को विरहिन नारी । सन्तकवियों ने भी ब्रह्म को पति,प्रीतम या पिव कहकर सम्बोधित किया है और उपमान रूप में जिन उपमेयों के लिए इनका उल्लेख किया है, वे हैं -- हरि, शरीर,जीव,राम या परमेश्वर आदि ।

स्त्रियाँ

इस वर्ग के अन्तर्गत भी पौराणिक तथा सामान्य दो प्रकार की स्त्रियाँ आती हैं ।

पौराणिक--

१. सकति(शक्ति) -- भगवती दुर्गा को शक्ति कहा गया है, वे बल शक्ति का प्रतीक हैं । शाक्त लोग शक्ति की ही पूजा या उपासना करते हैं । शिव और शक्ति की उपासना बहुत लोग करते हैं, शक्ति को जगन्माता माना गया है । मां दुर्गा भगवती या काली रूप में समस्त भारत में ही इनकी पूजा होती है । सन्तकाव्य में सकति का उपमान रूप में प्रयोग हुआ है ।

२. राधी या राधा -- यह भी एक पौराणिक पात्र हैं । राधा वृषभानु नामक गोप की कन्या थीं, इन्हें श्रीकृष्ण की प्रेयसी कहा गया है । कृष्ण के साथ ही राधा का नाम आता है, इनकी भी पूजा होती है । सन्तकाव्य में राधी या राधा उपमान का प्रयोग माया,मनसा, कुण्डलिनी के लिए हुआ है ।

३. रुकमिनि -- रुक्मिणी राजा भीष्मक की कन्या थीं और श्रीकृष्ण की बड़ी रानी थीं । इस उपमान का उल्लेख भी माया मनसा या कुण्डलिनी के लिए हुआ है ।

४. लाछमिं(लक्ष्मी) -- लक्ष्मी धन की अधिष्ठात्री देवी मानी जाती हैं, ये भगवान विष्णु की पत्नी हैं । लक्ष्मी उपमान का सन्तकाव्य में प्रयोग माया के लिए हुआ है ।

सामान्य

इसवर्ग में जिन उपमानों का उल्लेख हुआ है वे हैं-- माता, बिटिया,दुलहिनी, सुहागनि, सास, ननद, सहेली (पंच सखी),बिरहिनि, पणिहारि, मालिण, कलाली, कुंवरि, हजिवारी, पंडाति, डूमणी,कोठो,नारी या कामिनी आदि ।

१. बिरहिनि -- जो अपने पति या प्रिय से अलग हो उसे बिरहिनी कहते हैं । परमात्मा को पति या प्रिय के रूप में माना गया है । जीवात्मा इस संसार में जन्म लेकर माया-मोह में फंस जाती है और उसका परमात्मा से वियोग हो जाता है । जब जीवात्मा को अपनी अवस्था का ज्ञान होता है तो वह परमात्मा के विरह में व्याकुल होकर उससे मिलन कामना करती है,जीवात्मा रूपी स्त्री की यही अवस्था उसकी विरहावस्था है । अनेक कवियों ने अपने को स्त्री रूप में कल्पना करके बिरहिनी कहा है । सन्तकाव्य में भी यह उपमान इस रूप में प्रयुक्त हुआ है, जीवात्मा उपमेय के लिए ।

२.नारि,दुलहिनी -- दुलहिनी,बहुरिया आदि उपमानों का प्रयोग सन्तकवियों ने जीवात्मा के लिए किया है । नारी उपमान कहीं तो जीवात्मा के लिए आया है और कहीं-कहीं कुमति,मनी,इन्द्रिय ,कुमारी,तृष्णा आदि के लिए आया है । इन्होंने नारी निन्दा भी की है और उन्हें साधना के मार्ग में बाधक कहा है,

इसीलिए नारी,कामिनी आदि उपमानों का विभिन्न उपमेयों के लिए उल्लेख किया गया है ।

३.पंच सखी,सहेली-- भारतीय कवियों ने सखी सहेलियों को भी बहुत महत्व प्रदान किया है । नायिका की सखियों का भी वर्णन अवश्य हुआ है,क्योंकि ये सहेलियां नायिकाओं की हर प्रकार से सहायता करती हैं, उन्हें समझाने बुझाने में,सत्परामर्श देने में या संदेश पहुंचाने में सखियां ही काम आती हैं,इसीलिए इन सखियों का महत्व कुछ कम नहीं है । सन्तकवियों ने उपमान रूप में सखियों का उल्लेख अनेक स्थलों पर किया है, जिन उपमेयों के लिए यह उपमान प्रयुक्त हुआ है, वे हैं-- इन्द्रियां, सुरति, पंच ज्ञानेन्द्रियां, अन्तर्मुखी इन्द्रियां, सन्त जन, साधक, शुद्ध बुद्धि वृत्ति आदि ।

४. कलाली -- कलवाली या कलाली उसे कहते हैं जो शराब या मदिरा चुवाने और बेचने का व्यवसाय करती है । यह बहुत व्यापक व्यवसाय था । अनेक सन्तकवियों ने इन कलवालों की विशिष्ट शब्दावली के आधार पर आध्यात्मिक रूपक प्रस्तुत किया है । जिन उपमेयों के लिए कलाली उपमान आया है, वे इस प्रकार हैं-- ममता,कुबुद्धि,शक्ति,सुमति आदि ।

मानव अंग

इस वर्ग के अन्तर्गत जिन अंगों का उपमान रूप में सन्तकवियों ने उल्लेख किया है, वे हैं--तन ,मन त्वचा,कुटी,मस्तक,घटा,पग,नैनाभि,पुतरी,जिव्हा, आसन आदि । जिन उपमेयों के लिए ये उपमान आए हैं, वे हैं तन के लिए कंथा,मन के लिए कुंवरा, त्वचा के लिए सुमिरन, कुटी के लिए पिंड,जिव्हा के लिए साधु, मस्तक के लिए अहंकार, घटा के लिए प्राणायाम, पग के लिए ध्यान, नैनाभि के लिए घट,पुतरी के लिए सात्विक,आसन के लिए साधक ।
विविध उपमानों में आंसू,तिल या प्याज,विष,हुक्का या हुक्का,चन्द या मामी आदि आते हैं ।

१ आंसू-- पीड़ा,शोक और हर्ष में आंखों से गिरने वाले जल को आंसू कहते हैं। रोकर लोग अपनी पीड़ा या शोक को व्यक्त करते हैं ।मोतियों के समान दिखने वाले इन आंसुओं का उपमान रूप में प्रयोग अनेक कवियों ने किया है । सन्त कवियों ने भी इस उपमान का उल्लेख किया है ।

२. तिषा या प्यास -- जल पीने की इच्छा को या प्रबल कामना को प्यास या तृष्णा कहते हैं । सन्तकवियों ने जिन उपमेयों के लिए इस उपमान का प्रयोग किया किया है-- अशान्ति, दर्शन कामना, आध्यात्मिक तृषा, शैतान(शैतान)आदि ।

३. विष -- विष, ठाहल या जहर उस पदार्थ को कहते हैं जिसे खाने से प्राणहानि होती है । किसी न किसी रूप में यह जीवों के लिए हानिप्रद सिद्ध होता है। सन्तकवि इस संसार के मायाजाल से ऊब चुके थे अत: उन्होंने विषय वासनाओं को विषतुल्य कहा है। अत: यह उपमान वासना, माया, विषय कामादि पंचविकार आदि उपमेयों के लिए सन्तकाव्य में प्रयुक्त हुआ है ।

४. सबद या बानी -- महात्माओं के वचनों को सबद या बानी कहते हैं, शास्त्रवचन को भी सबद कहते हैं। भारतीय संस्कृति में साधु महात्माओं तथा गुरुओं को बहुत अधिक महत्व प्रदान किया गया है इसीलिए उनके वचनामृत को भी साधारण मनुष्यों के लिए बहुत उपयोगी माना गया है। महात्माओं के वचन या बानी सदुपदेश देकर सब का मार्ग प्रदर्शन करते हैं। सन्तकवियों ने भी सन्तजनों या गुरुओं के बानियों को बहुत महत्व प्रदान किया है, गुरु के सबद ही सब का कल्याण करने वाले सच्चे पथप्रदर्शक हैं और ब्रह्मप्राप्ति के साधन हैं ।

अमूर्त उपमान -- इसके अन्तर्गत माया,काम,कलंक या काल,निद्रा,पाप,ध्यान,साधन मोक्ष, व्याधि आदि आ जाते हैं। ऐसे उपमानों को अन्य किसी वर्ग में नहीं रखा जा सकता है इसलिए अमूर्त उपमान अलग रखे गए हैं ।

१. माया -- धन, सम्पत्ति, द्रव्य,लक्ष्मी, अविद्या आदि को माया कह देते हैं। भारतीय संस्कृति में यह माया शब्द बहुत व्यापक महत्व रखता है, विभिन्न रूपों में इस शब्द की व्याख्या की गई है। ईश्वर की लीला शक्ति को माया कहा गया है, इसी माया के द्वारा ईश्वर सृष्टिरचना में प्रवृत्त होता है। शंकराचार्य ने अज्ञान, भ्रम, अविद्या या अध्यास को माया कहा है। सन्तकवियों ने भी अविद्या कनक कामिनी आदि को माया कहा है । माया ने अपने आवरण में सब जीवों को ढक रखा है, उसके आकर्षण से बचना बहुत कठिन कार्य है। माया के मोहपाश में जकड़े जीव अज्ञान में डूबे रहते हैं और ब्रह्म से विमुख हो जाते हैं। इसलिए सन्तों ने माया को तिरस्कारपूर्ण दृष्टि से देखा है, उसे सर्पिणी, कामिनी, डाकिनी आदि नामों से पुकारा है। माया उपमान का प्रयोग अनेक स्थलों पर हुआ है।

हरिनाम, स्त्री या नारी आदि के लिए यह उपमान आया है।

२. करम— हमारे देश मे कर्म को बहुत महत्व प्रदान किया ७ गया है। कर्म ही मनुष्य को सफलता प्राप्त कराने में समर्थ है। कर्म से ही कार्य की सिद्धि होती है केवल मनोरथ से नहीं। गीता में निष्काम कर्म की ओर मनुष्यों को प्रवृत्त किया गया है। सद् कर्म से सद्गति प्राप्त होती है। अशिक्षित ग्रामीण व्यक्ति तक यह जानता है कि जिसके करम अच्छे हैं उसे स्वर्गलोक में स्थान मिलता है। सन्त ह कवि भी मनुष्य की करनी पर बल देते हैं, कर्म के द्वारा ही कोई ऊंचा या नीचा होता है जन्म से नहीं। उपमान रूप में भी यह शब्द प्रयुक्त हुआ है जीव उपमेय के लिए।

३. साधन— भारत में विभिन्न साधन पद्धतियों का प्रचार है। आध्यात्मिक क्षेत्र में इन साधनाओं को बहुत महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। साधक इन कठोर साधनाओं के द्वारा सिद्धि प्राप्त करता है और परमतत्व की प्राप्ति करता है । यहां योगसाधना बहुत प्रसिद्ध साधना है जिसमें चित्तवृत्ति के निरोध की शिक्षा दी जाती है। सन्त कवि भी इन साधनाओं से प्रभावित हैं। चंचल मन को कठोर साधना द्वारा निश्चंचल या स्थिर कर देना ही साधक का कर्तव्य है, यह साधना सरल नहीं धार की धार पर चलना है। कबीर सुरति शब्दयोग द्वारा चित्तवृत्ति का शब्द ब्रह्म में लय कर देना ही साधक का ए परम उद्देश्य कहते हैं। सन्तकाव्य में यह उपमान जीवात्म के लिए प्रयुक्त हुआ है ।

४. मोक्ष— जीव का जन्म मृत्यु के बन्धन से मुक्त हो जाना ही मोक्ष है। संसार के आवागमनचक्र से ऊबकर जीव मोक्ष की बड़ कामना करता है। संसार में जन्म लेकर मनुष्य कष्ट ही पाता है, व्यर्थ के मायामोह में फंसकर वह उन्हीं में आनन्द को देखता है, परन्तु अन्त में निराशा ही हाथ लगती है, तब जीव ब्रह्म ब्रह्म के वियोग में व्याकुल होकर मोक्ष की कामना करता है। सन्तकवि भी मोक्ष को महत्व प्रदान करते हैं, वे भी मुक्ति के लिए प्रयत्नशील थे और जनसाधारण को भी यही शिक्षा देते थे कि उस परमतत्व में लीन होकर चिरानन्द की प्राप्ति करो, उस ब्रह्म को प्राप्त कर लेने के बाद पुन: इस कष्टमय संसार में आने की आवश्यकता नहीं होगी। मोक्ष उपमान का प्रयोग उन्होंने गोविंद के लिए किया है ।

सन्तकाव्य में ध्यान उपमान का प्रयोग गोविंद के लिए हुआ है तथा पाप उपमान प्रभुताई के लिए आया है, निद्रा अविद्या या अज्ञान के लिए आया है, व्याधि मोक्ष के लिए आया है, अंतक या काल का उपमान रूप में प्रयोग यारी के लिए हुआ है तथा बिंब ब्रह्म या कुण्डलिनी के लिए आया है। इनके अतिरिक्त अमूर्त उपमानों में वैराग, मत्र, शील संतोष, पूजा, विघ्न, रुदन, वासना, मुक्ति या भ्रम, ज्ञान आदि भी आए हैं।

लोकविश्वास तथा मान्यताएं--

इसके अन्तर्गत सन्तकाव्य में सुपिना, डाकनी, भिंगा, भिंगुरा या भिन्द आदि उपमान रूप में प्रयुक्त हुए हैं।

सुपिना, ख्वाब-- स्वप्न अंतर्मन की प्रक्रिया है। निद्रामग्न जीव स्वप्न देखता है। नींद से न जागने तक ही स्वप्नों का अस्तित्व है, जाग जाने पर उनकी असत्यता का ज्ञान हो जाता है। अत: ये क्षणिक होते हैं, स्थायी नहीं होते। वास्तविक जीवन से इनका कोई सम्बन्ध नहीं होता है। फिर भी लोग इन स्वप्नों को महत्व देते हैं, कुछ लोगों का ऐसा विश्वास है कि ब्रह्म मुहूर्त में देखा गया स्वप्न सत्य होता है। कुछ स्वप्न सत्य होते हैं और कुछ असत्य। ऐसा माना जाता है कि कुछ स्वप्न मंगलसूचक होते हैं और कुछ अमंगलसूचक। सन्तकवियों ने जीवन, जगत और कर्म के लिए इस उपमान का उल्लेख किया है।

डाकनी-- डाकिनी या डाकनी उस बूढ़ी कुरूपा और डरावनी स्त्री को कहते हैं जो टोना टोटका जानती हो, ऐसी स्त्रियों की दृष्टि या प्रभाव से बच्चे मर जाते हैं या रोगी हो जाते हैं। ग्रामीण जनता तो इन सब बातों को बहुत महत्व देती है लेकिन सब लोग ऐसी बातों पर विश्वास नहीं करते हैं। सन्त कवियों ने माया, स्त्री या नारी के लिए इस उपमान का प्रयोग किया है।

मुसलमानों में भिंगा, भिंगुरी, भिंगुरा आदि प्रेतात्माओं को कहते हैं। सन्तकवि ने स्त्री, पुत्री तथा पुत्र के लिए इन उपमानों का प्रयोग किया है।

सामान्य जीवन चित्रण --

इसके अन्तर्गत आवास एवं उसके बनाने के उपकरण, खाद्यपदार्थ और श्रृंगार प्रसाधन सामग्री आदि आते हैं।
आवास एवं उसके बनाने के उपकरण:-- इसमें घर भवन या मंदिर, झाली या झरोखा, थंभ, कपाट, संकल, ओबरी या कोठरी, न्यूनि, बरेंडा, दुवानि, टाटी आदि उपमान आए हैं।
घर-- घर, भवन, गृह या मंदिर मनुष्यों के लिए बहुत अधिक आवश्यक है क्योंकि यहीं वह आश्रय लेता है। घर में रहकर ही मनुष्य दूसरे सब कार्यों की ओर प्रवृत्त होता है, अपने परिवार के साथ निश्चिंत होकर वह सुखपूर्वक रहता है। अतः मानवजीवन में घर को बहुत महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। भारतीय संस्कृति में घर को एक पवित्र स्थान माना गया है इसीलिए उसको मन्दिर भी कहते हैं। स्वच्छ सुन्दर गृह में भगवान का वास माना गया है। इस उपमान का प्रयोग अनेक कवियों ने किया है, शरीर का प्रतीक होकर भी यह आया है। सन्तकाव्य में भी घर, भवन, मंदिर, गढ़, महल आदि उपमान रूप में प्रयुक्त हुए हैं। जिन उपमेयों के लिए इस उपमान का उल्लेख किया गया है वे इस प्रकार हैं -- तन या शरीर, सांसारिक आसक्तियां, सुखी भाग की , हृदय, अन्तःकरण आदि।

घर के अतिरिक्त कपाट उपमान का प्रयोग ज्ञान के लिए किया गया है, झांझी या झरोखा देह के लिए, थंभ दोऊ दो पैरों के लिए तथा अहंकार के लिए, दस दरवार नव इन्द्रियद्वार तथा ब्रह्मरन्ध्र के लिए, टाटी भ्रम के लिए, न्यूनि त्रिविधा के लिए, बरेंडा मोह के लिए, छानि त्रिगुना या तृष्णा के लिए, ओबरी कागद या पुस्तक के लिए, दुवारा मुक्ति के लिए तथा संकल का मल या भ्रम के लिए प्रयोग किया गया है।
खाद्य पदार्थ -- खाद्य पदार्थ भी मानव जीवन के आवश्यक अंग हैं, मनुष्य कुछ खाकर ही जीवन धारण करता है। सन्तकाव्य में विभिन्न खाद्य पदार्थों का उपमान रूप में उल्लेख हुआ है वे अधिकतर भारतीय खाद्य सामग्री हैं। अमृत भोजन तथा खीर हरिनाम उपदेश के लिए आया है, इसी प्रकार प्रसाद दया के लिए, अन्न अनुभव के लिए, गुड़

राम के लिए, हीरा सूक्ष्म ज्ञान या सारतत्व के लिए, सिरका द्वेष के लिए, शहद आत्म के लिए, शक्कर खंड माया के लिए, मिठाई हरिनाम के लिए, मधुरस भक्तिरस के लिए, दूध शब्द के लिए, घृत उपमान रामरस के लिए, तेल जीव के लिए, बाती दया, धर्मभाव, ध्यान के लिए, आटा लौन शरीर के लिए, चबैना तत्व या संसार के लिए बिजया या भांग जीव के लिए, मद रामरस के लिए तथा स्वाति या कस्तूरी कुल कुल के लिए प्रयुक्त हुआ है।

<u>वस्त्र एवं उसके बनाने की अन्य सामग्री</u> -- वस्त्र भी मानव जीवन के लिए बहुत आवश्यक है, सभ्य सुसंस्कृत लोग विभिन्न प्रकार के वस्त्रों द्वारा अपने शरीर को सुसज्जित करते हैं। सन्तकवियों ने साधारण सुख मनुष्यों साधुओं के वस्त्रों का उपमान रूप में उल्लेख किया है तथा वस्त्र बनाने की सामग्रियों का भी उल्लेख किया है। मासी (उत्कृष्ट वस्त्र) का उल्लेख कर्म के लिए हुआ है तथा कबारी कापड़ा मगत के लिए प्रयुक्त हुआ है। धोती मन के लिए, चुनरी निरगुन के लिए, लोई या दुशाला सन्तजनों के लिए, चोला प्रेम के लिए, कंथा त्रिविध ताप के लिए, बाना प्रेम के लिए, रेंआ(नली का धाग) सांस के लिए, चरखा या चरखा मन के लिए पुरिया(ताना) शरीर के लिए, पाट मनोविकार के लिए, नली (ढरकी) मनसा या मानसिक वृत्ति के लिए, रहटा(चर्खा) मन के लिए, पिउरिया(रुई की पूनी) स्वासा के लिए, चारि खूंटी अन्त:करण चतुष्टय के लिए, पाँच कनरास बड़ा पिंजड़ा के लिए, कुप्पी(कंटेनर) कुल्मष के लिए, चद्दरा(चादर) शरीर के लिए, मलमल(बेलन) राम के लिए, नेत(रेशमी वस्त्र)सूक्ष्म या अक्षर के लिए, मुसल्ला(वह वस्त्र जिस पर बैठकर नमाज पढ़ा जाता है) विवेक या श्रद्धा के लिए प्रयुक्त हुआ है ।

<u>सज्जा एवं शृंगार प्रसाधन सामग्री</u> -- प्राचीन काल से ही मनुष्यों की यह प्रवृत्ति रही है कि वह विभिन्न प्रकार से अपने आप को सजा कर रखने की इच्छा करता है। इसके लिए वह विविध शृंगार प्रसाधनों का आश्रय लेता है। भारत में स्त्रियां सोलह शृंगार करके अपने सौन्दर्य को अधिक से अधिक प्रभावशाली बनाए रहतीं थीं। पुरुष भी वस्त्र, माला एवं सुगन्धित पदार्थों से अपने को सुसज्जित रखते थे। सन्तकवियों ने जिन सज्जा एवं शृंगार प्रसाधन सामग्री का उल्लेख किया है वे इस प्रकार हैं-- सिंगार, तिलक, पंच आभूषण, मोतिन की माला, कंगन, कनरंधु, कुंडल, गहना, अंजन, सुर्मा(वर्ष क्र)

परमलु(चन्दन), सेंदुर, कुंगु या कुमकुम केसर, कस्तूरी, दरपन आदि ।

<u>मोतिन की माल</u>-- शृंगार प्रसाधनों में मालाओं का बहुत महत्वपूर्ण स्थान है। प्राचीन काल से लेकर अब तक मालाएं भारतीय संस्कृति में अपनी महत्ता बनाए हुए हैं। प्रत्येक शुभ कार्य में मालाओं का होना आवश्य है। मन्दिरों में प्रतिदिन देवताओं को माला चढ़ाया जाता है। मालाएं चाहें पुष्पों के हों या सोने चांदी या मोतियों के प्राचीन काल से ही लोग इन्हें धारण करके प्रसन्न होते थे। मोतियों की माला भी लोगों को बहुत प्रिय है, पहले तो पुरुष भी इन्हें पहनते थे, स्त्रियों में इसका आज भी बहुत प्रचलन है। सन्तकवियों ने इसका उपमान रूप में प्रयोग हरि के लिए किया है ।

<u>परमल : चन्दन</u>-- शृंगार प्रसाधनों में चन्दन भी एक अतिप्रसिद्ध प्रसाधन है, यह शीतल और पवित्र माना जाता है, पूजा में भी यह काम आता है देवताओं को पुष्प चन्दन चढ़ाया जाता है। इस सुगन्धित पदार्थ का स्त्री और पुरुष दोनों ही लेपन करते हैं, भारतीयों को यह बहुत प्रिय है। सन्तकाव्य मे परमलु या चन्दन उपमान का उल्लेख गुरु के लिए हुआ है ।

<u>सेंदुर</u> -- भारतीय संस्कृति में सिन्दूर को बहुत महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। ईंगुर को पीस कर बनाये हुए एक प्रकार के लाल रंग के चूर्ण को सिंदूर कहते हैं। इसे सौभाग्यवती हिन्दू स्त्रियां अपने मांग में भरती हैं, सिंदूर की बिन्दी भी माथे पर लगायी जाती है। सन्तकाव्य में सिन्दूर उपमान ज्योति या ज्योति के लिए प्रयुक्त हुआ है ।

<u>दरपन या दर्पण</u> -- शृंगार करने के लिए दर्पण एक आवश्यक वस्तु है, यह मानवों के लिए बहुत उपयोगी है। प्रत्येक घर में दर्पणआवश्य रहता है, ! शृंगार प्रसाधनों में दर्पण का उपयोग होता ही है। कुछ लोग प्रातः काल सोकर उठते ही दर्पण देखना शुभ मानते हैं। इसे शीशा या आरसी भी कहते हैं। कवियों ने इसका उपमान रूप में बहुत प्रयोग किया है। अधिकतर मन या हृदय के लिए ही दर्पण उपमान आताहै । सन्त कवियों ने भी दरपन उपमान का प्रयोग मन या चित्त के लिए किया है ।

अन्य प्रसाधन सामग्री जिसका सन्तों ने प्रयोग किया है, इस प्रकार हैं -- तिलक गुरु के लिए, पंच आभूषण इन्द्रिय निग्रह के लिए, कंगन शील संतोष के

लिए, कमरबंद संतोष के लिए, कुंडल जीवात्मा के लिए, गहना जीव के लिए, अंजन ज्ञान के लिए, चुनी या वस्त्र साध के लिए, कस्तूरी राम के लिए, सिंगार सबद के लिए प्रयुक्त हुआ है। कुंभा कुमकुम करणी के लिए आया है ।

दैनिक उपयोग की वस्तुएँ --

सन्त कवियों ने दैनिक उपयोगकी वस्तुओं मुँ कुछ पात्रों तथा लिखने के उपकरणों का उपमान रूप में उल्लेख किया है ।

पात्रविशेष -- उपमान रूप में जिन पात्रों का उल्लेख किया गया है, वे हैं-- बासन जीव के लिए, पियाला भगवत्प्रेम के लिए, पात्र मति के लिए, कटोरा शरीर के लिए, तथा तमोगुण बुद्धि के लिए, कुंभ या घड़ा मय के लिए, ठलड़ी जिन के लिए, कलश शुद्ध बुधि के लिए, गागरि देह के लिए, कूंडा या कठारी घट के लिए तथा कमंडल काया या शरीर के लिए प्रयुक्त हुआ है ।

लिखने के उपकरणों में लेखनी या कलम सुरति के लिए, मसि तन के लिए, मसवाणी या दवात मन के लिए तथा कागद या कागज उपमान तन यौवन के लिए प्रयुक्त हुआ है ।

व्यवहार में आने वाली वस्तु विशेष -- व्यवहार में आने वाली जिन वस्तुओं का सन्तकवियों ने उपमान रूप मे उल्लेख किया है वे इस प्रकार हैं --बालणि(ईंधन); कोल्हू, अहरणि(निहाई), धमोड़ी, चाकी, रहट की माल, चाक, मटका, ढींकुली, लेज(रस्सी), पिंजरे, चतरावी, कुलफ, कुंजी, आसन, कोरी, विभूति, मृगछाला, माठी, कींगी, दीपक, बाती, मकान, दमाम, चाबुक, कंघी, सुई धागा, खड(सरके, तलवार), खंजर , कंघी, चौपड़, चवर, कामरी, माणिकमोति, रथ, जहाज, नौका, फिरकिड़ी(नाड़ी) आदि ।

दीपक -- व्यवहार में आने वाली वस्तुओं में दीपक को बहुत महत्त्व दिया गया है । भारतीय संस्कृति में दीपक एक महत्वपूर्ण वस्तु है। जहां बिजली नहीं है वहां तो यह प्रकाश का साधन है ही, इसके अतिरिक्त भी अन्य अनेक कामों में इसकी आवश्यकता पड़ती है। प्रत्येक शुभ कार्यों में, व संस्कारों में दीपक का जलना अत्यावश्यक है, बिना दीपक जलाए कोई भी शुभ कार्य सम्पन्न नहीं हो सकता है। घी का दीपक जलाकर देवताओं की आरती उतारी जाती है । कतिपय मन्दिरों में निरन्तर दीप जलते रहते

हैं। दीवाली में तो दीप जलाकर ही त्योहार मनाया जाता है। अत: हिन्दुओं के जीवन में दीपक एक विशेष महत्व रखता है। कवियों ने उपमान रूप में इसका उल्लेख अनेक बार किया है, यह प्रकाश का प्रतीक है। सन्तकाव्य में कई उपमेयों के लिए दीपक, दीया, दीप या दीवा उपमान का उल्लेख किया गया है जैसे -- ब्रह्मज्ञान, कलाएं, शरीर, माया, विषय वासना, ब्रह्म, विवेक, आत्मा, मनुष्य, ज्ञानप्रकाश, गुरु गुरु, उपदेश आदि ।

पिंजरा -- लोहे या बांस की तीलियों से बने फ्रेम को पिंजरा कहते हैं, इसमें पक्षियों को रखा जाता है। सुन्दर पक्षियों को पालने की प्रथा बहुत पहले से चली आ रही है। तोता, मैना, बुलबुल आदि अनेक प्रकार के पक्षियों को लोग पिंजरे में बन्द करके अपने घरों में रखते हैं, स्वतंत्रता पूर्वक विचरण करने वाला पक्षी पिंजरे में बन्दी होकर अपनी स्वतंत्रता से हाथ धो बैठता है। पिंजरा उपमान अनेक कवियों द्वारा प्रयुक्त हुआ है। मानव शरीर जो कि हड्डी का ढांचा है पिंजरा कहलाता है। कवियों ने इस उपमान का प्रयोग अनेक स्थानों में किया है। जिन उपमेयों के लिए इस उपमान का उल्लेख हुआ है, वे हैं -- शरीर, प्रेम, राम, मोह, विषयवासनाएं आदि ।

मृगछाला, बाघम्बर -- मृग की खाल जिसे मृगचर्म या मृगछाला कहते हैं पवित्र माना जाता है । इसको आसन बनाकर व्यवहार मे लाया जाता है। योगी, सन्यासी, मृगछाला पर बैठकर साधना या उपासना करते हैं। सन्तकाव्य में इस उपमान का उल्लेख त्रिकुटी के लिए हुआ है। बाघम्बर बाघ के खाल को या उसके आसन को कहते हैं, यह भी पवित्र माना जाता है, स्वयं शंकर भगवान सभी बाघम्बर पर बैठे हुए दिखाए जाते हैं। सन्तकाव्य में बाघम्बर उपमान का प्रयोग सुन्न या शून्य के लिए हुआ है ।

औषध -- औषध, औषद, औषदी, दारू दावदा इन सभी रूपों में यह उपमान सन्तकाव्य में प्रयुक्त हुआ है। औषधि भी मानवों के लिए एक उपयोगी पदार्थ है, क्योंकि मानवशरीर रोगयुक्त रहता ही है इसलिए उसे रोगमुक्त करने के लिए औषधियों की आवश्यकता पड़ती है। सन्तकाव्य में औषध उपमान रूप मे उपदेश, परम तत्व,ज्ञान, राम नाम, ब्रह्म आदि के लिए प्रयुक्त हुआ है।

<u>वाहन</u> — वाहन मनुष्य के आवागमन के साधन हैं, मनुष्य चाहे जल मार्ग से या थल मार्ग और आकाशमार्ग से कहीं जाए उसे इन वाहनों का आश्रय लेना पड़ता है । ये मानवों के लिए बहुत उपयोगी हैं, आजकल कितने प्रकार के वाहन बने हैं जिनका पहले प्रचलन न था। सन्तकवियों ने जिन वाहनों का उल्लेख किया है वे हैं— रथ, फिरकिड़ी या गाड़ी, नौका, जहाज । जिन उपमेयों के लिए यह उपमान प्रयुक्त हुआ है वे हैं— शरीर उपमेय के लिए रथ उपमान का प्रयोग हुआ है, फिरकिड़ी, ठाडीया या गाड़ी उपमान आया है मानसिक वृत्ति या मन तथा देह के लिए, नाव या नौका उपमान प्रयुक्त हुआ है ज्ञान, रामनाम, हरि आदि उपमेयों के लिए, जहाज का उल्लेख सद्गुरु, नाम, ज्ञान, शरीर आदि उपमेयों के लिए हुआ है ।

<u>खनिज पदार्थ</u> —

इसके अंतर्गत विभिन्न खनिजपदार्थों, धातुओं एवं रत्नों का उपमान रूप में उल्लेख किया गया है। जैसे — लोहा, तांबा, कोयला, कच या कांच, सोहागा, कंचन, रतन, मोती, मुक्ताहल, माणक(मानिक), पारस, नग, हीरादि ।

<u>कंचन</u> — यह एक बहुमूल्य धातु है, इससे आभूषण, मूर्तियां आदि बनते हैं। प्रत्येक देश में ही इस धातु को बहुत महत्व दिया गया है। भारत में तो सदा से ही स्वर्णाभूषण पहनने की प्रथा चली आ रही है, भारतीय स्त्रियों को सोने के आभूषण बहुत प्रिय हैं। यह शुद्ध पवित्र धातु माना गया है, भारत में अनेक मन्दिरों में सुन्दर स्वर्ण प्रतिमाएं हैं, जिन्हें सब देखने जाते हैं। सन्तकवियों ने इस उपमान का प्रयोग परमात्मा , शरीर के लिए किया है।

<u>लोहा</u> — यह काले रंग की एक प्रसिद्ध धातु है। लोहा हमारे लिए बहुत उपयोगी धातु है, इससे अनेक प्रकार की वस्तुएं बनायी जाती हैं जैसे बर्तन, शस्त्र और मशीनें। आधुनिक युग में सभी देशों के लिए यह एक महत्वपूर्ण धातु है। भारत में तो भोजन बनाने के अनेक पात्र या उपकरण लोहे के बनते हैं। लोह लोहा बल और दृढ़ता का प्रतीक है, बलवान,दृढ़,व्यक्तियों को लोह पुरुष कहते हैं। सन्तकवियों ने भी इस उपमान का प्रयोग कई उपमेयों के लिए किया है, जैसे — संसार, मुरिख नर, विषयी या कामी, जीव आदि ।

हीरा -- यह एक बहुमूल्य रत्न है जो सफेद व चमकदार होता है और बहुत सुन्दर लगता है। सम्पन्न व्यक्ति हीरे के आभूषण पहनते हैं। सन्तकाव्य में हीरा उपमान हरि, आत्म तथा रामनाम के लिए आया है।

पारस पत्थर -- पारस पत्थर के लिए यह प्रसिद्ध है कि यदि लोहा उससे छुआया जाए तो लोहा सोने में बदल जाता है, यह एक कल्पित पत्थर है। इसको स्पर्शमणि भी कहते हैं। पारसमणि बहुत ही प्रसिद्ध है, सभी कवियों ने किसी न किसी स्थान में इसका उपमान रूप में उल्लेख किया है। सन्तकवियों ने भी इस उपमान का प्रयोग राम या परमात्मा के लिए किया है ।

मोती -- यह भी एक बहुमूल्य रत्न है जो समुद्रों में सीपी में से निकलता है, मोती भी बहुत प्रसिद्ध तथा लोकप्रिय रत्न है। यह इतना सुन्दर रत्न है कि अनेक कवियों ने उपमान रूप में इसका उल्लेख किया है, सुन्दर दांतों को सदा मोती जैसे दांत कहा जाता है। आंसुओं को भी मोती के समान बताया जाता है। मोतियों की माला तो अपने आकर्षक सौन्दर्य के कारण बहुत ही लोकप्रिय है, स्त्रियों का यह प्रिय आभूषण है। सन्तकाव्य में मोती उपमान राम, मन या मनस, मुक्ति, ऐश्वर्य, नाम, मुक्तावस्था तथा ब्रह्म अपरोक्ष के लिए प्रयुक्त हुआ है ।

इनके अतिरिक्त तांबा उपमान जीव के लिए, कोयला मुर्दे के लिए, लख या लाख बुद्धि के लिए, सोहागा जीव के लिए, रतन जनम के लिए, माणक जीवन के लिए, प्रयुक्त तन मानवशरीर के लिए प्रयुक्त हुआ है ।

आयुध या अस्त्रशस्त्र --

प्राचीन काल से ही इन अस्त्र शस्त्रों का प्रयोग युद्धों में होता आ रहा है। पहले भी अनेक प्रकार के अस्त्रशस्त्रों का प्रचलन था जिनमें धनुष बाण, अंकुश, भाला, गदा, सेल, गोला, चक्र, वज्र आदि प्रमुख थे । इन अस्त्रशस्त्रों का उचित प्रयोग करने वाले शस्त्रविद्या में पारंगत लोगों को वीर समझा जाता था, ऐसे लोगों का समाज में आदर होता था। अब भी अनेक प्रकार के अस्त्र शस्त्रास्त्रों युद्धों में काम आते हैं, नित्य नवीन आयुधों का आविष्कार हो रहा है, अनेक प्रकार के घातक बम

या गीतों का प्रचलनमें बढ़ रहा है। सन्तकवियों ने जिन विभिन्न अस्त्र-शस्त्रों का उपमान रूप में प्रयोग किया है वे इस प्रकार हैं -- त्रिविध शायक उपमान तीनों गुणों के लिए प्रयुक्त हुआ है तथा भऊला आया है माया के लिए, धनुष का प्रयोग ध्यान उपमेय के लिए हुआ है, बान उपमान ध्यान के लिए प्रयुक्त हुआ है, तरगस तन के लिए, असि बचन के लिए ,कवच ज्ञान के लिए, अंकुश गुरु ज्ञान के लिए , सर उपदेश के लिए, भाला मरम के लिए, सेल सुमिरन के लिए, बखा मन के लिए, धनष या प्रत्यंचा सगुण साधना के लिए तथा मुग्दर उपमान गंभीर या गाम्भीर्य उपमेय के लिए प्रयुक्त हुआ है।

५- कलायें --

भारतीय संस्कृति ने सदा ही कलाओं को बहुत महत्व दिया है, यहां कलाकारों को बहुत सम्मान प्राप्त था। भारतीय मन्दिरों,राजमहलों या अन्य ऐतिहासिक भवनों को देखकर ही भारतीय कलाओं की समृद्धि या उत्कृष्टता का अनुमान लगाया जा सकता है। यहां के राजा लोग भी कलाप्रेमी होते थे। सन्तकाव्य में जिन कलाओं का उल्लेख उपमान रूप में हुआ है, वे इस प्रकार हैं-- काव्य कला में वेद, पुराण, कुरान आदि पुस्तकों का उल्लेख उपमान रूप में गोव्यंद या गोविन्द तथा उस की कमाई आदि उपमेयों के लिए हुआ है।

मूर्तिकला के अन्तर्गत भी विभिन्न उपमानों का उल्लेख सन्तकवियों ने किया है ।जैसे-- प्रतिमा उपमान जीवात्मा के लिए प्रयुक्त हुआ है, देहुरा ब्रह्मरन्ध्र के लिए, कागद की गुड़िया तन के लिए तथा मट्टी का खिलौना उपमान देह के लिए प्रयुक्त हुआ है। देव प्रतिमाओं या मूर्तियों की यहां पूजा होती है, इसलिए इन्हें बहुत अधिक महत्व प्रदान किया गया है । भारत की यह कलाविश्व भर में प्रसिद्ध है।

भारत की वास्तुकला भी अत्यन्त उन्नत है। यहां ऐसे सुन्दर मन्दिर या मठ आदि हैं जिन्हें देखने देश विदेशों से लोग आते हैं, वे सब हमारी उन्नत संस्कृति का परिचय दे रहे हैं। सन्तकवियों ने इसके अन्तर्गत जिन उपमानों का उल्लेख किया है, वे हैं-- मन्दिर शरीर उपमेय के लिए, मसीति या मस्जिद भी काया के लिए, मठ आराध्य के लिए, गढ़ जीवन के लिए तथा कोट उपमान त्रिकुटी के लिए

जाए हैं ।

अन्त में इस वर्ग के अन्तर्गत संगीतकला से सम्बन्धित उपमानों का उल्लेख किया गया है। विभिन्न कलाओं मे इस कला को बहुत उच्च स्थान प्राप्त है, अधिकतर लोग यहां संगीत प्रेमी होते हैं। भारतीय संस्कृति में संगीतकला को एक विशिष्ट स्थान प्राप्त है, वर्षों की साधना के पश्चात् लोग इस कला में पारंगत होते हैं। सन्तकवियों ने इस कला से सम्बन्धित जिन उपमानों का उल्लेख किया है, वे इस प्रकार हैं -- बांसि उपमान शिष्य के लिए आया है, डेरुंवा इस काम क्रोध अभिमान के लिए, ढोलक या ढोलक दुनिया के लिए, बाजा मनि के लिए, पाखाउज प्रेम के लिए, ढोल दमामा अनाहद नाद के लिए, मादल मनुष्य के लिए, धुनि अनाहद नाद के लिए, तूर भी अनाहद नाद के लिए, जन्त्र शरीर के लिए, तांति रग या नाड़ियों के लिए, रबाब तन के लिए, तबल, अनहद नाद के लिए, कंथा काया के लिए, किंगरी भी अनाहद नाद के लिए, सींगी सुन्नि या शुन्य के लिए तथा गायन उपमान बैरागी उपमेय के लिए प्रयुक्त हुआ है ।

६- पर्वोत्सव --

मानव जीवन में पर्वों एवं उत्सवों का भी बहुत महत्व है। जीवन-संग्राम में जूझते हुए मानवों के लिए ये मनोरंजन के साधन हैं, नीरस जीवन में ये नवीन उत्साह का संचार करते हैं। हमारे पर्व एवं उत्सव हमारी प्राचीन संस्कृति को सजीव रखते हैं। सन्तकाव्य में इस वर्ग से सम्बन्धित उपमान निम्नलिखित हैं-- मेला, होरी या होली, फाग, पिचकारी, तोरन, जुति आदि ।

होली -- यह हिन्दुओं का बहुत बड़ा त्योहार है, सम्पूर्ण भारत में बड़े धूमधाम से यह उत्सव मनाया जाता है। फाल्गुन मास की पूर्णिमा के दिन होलिका या होली जलायी जाती है और उसके पश्चात् दिन में लोग सब भेदभाव मिटाकर प्रेम से रंग खेलते हैं। इस समय घरों में विभिन्न प्रकार के पकवान बनाए जाते हैं।भारतीय संस्कृति में यह उत्सव बहुत महत्व रखता है यह एकता या मित्रता का प्रतीक है। सन्तकाव्य में होरी या होली उपमान का उल्लेख प्रेम साधना उपमेय के लिए हुआ है। इसी उत्सव से सम्बन्धित अन्य उपमान इस प्रकार है-- सन्तकवियों ने फाग उपमान का उल्लेख आध्यात्मिक प्रसन्नता, गुलाल अबीर का प्रयोग गगन और अरथ के लिए हुआ है,

पिचकारी ध्यान धुलि उपमेय के लिए प्रयुक्त हुआ है ।

मेला -- मेलों का भी हमारी संस्कृति में महत्वपूर्ण स्थान है। इन मेलों से मनोरंजन भी होता है और विभिन्न स्थानों के लोगों के एकत्र होने के कारण लोग एक दूसरे के सम्पर्क में आते हैं, इससे ज्ञानवृद्धि होती है, नवीन अनुभव प्राप्त होते हैं। इन मेलों के द्वारा हमारी संस्कृति अमर रहती है । भारत में तीर्थ स्थानों में होने वाले माघ मेलों और कुंभ मेलों का अपना अलग ही महत्व है, ये बहुत पहले से होते आ रहे हैं। लाखों की संख्या में लोग आकर इन मेलों के अवसरों पर गंगा नदियों में स्नान करके पुण्य अर्जन करते हैं। ये मेले स्थाई नहीं होते, कुछ दिनों के बाद समाप्त हो जाते हैं इसीलिए सन्तकवियों ने इस उपमान का प्रयोग दुनिया के लिए किया है ।

इनके अतिरिक्त तोरण उपमान का भी सन्तकवि ने उल्लेख किया है। पत्तियों आदि की उन मालाओं को तोरण कहते हैं जो सजावट के लिए खंभों और दीवारों में लटकाई जाती हैं, इन्हें बन्दनवार भी कहते हैं। विवाह आदि उत्सवों पर ये बनाए जाते हैं ।

जन्मोत्सव विशेषकर पुत्र जन्मोत्सव भारत में बहुत धूमधाम से मनाया जाता है इसे' धुलि' कहा है कबीर ने । धुलि उपमान का उल्लेख ज्ञानोदय के लिए हुआ है ।

मनोविनोद सम्बन्धी उपकरण -- प्रत्येक मनुष्य अल्पसमय के लिए अपनी चिन्ताओं एवं कर्त्तव्यों से मुक्त होकर प्रसन्न रहने का प्रयत्न करता है, इसके लिए वह मनोविनोद के विभिन्न साधनों का आश्रय लेता है। सभी अवस्था के लोगों को मनोविनोद की आवश्यकता पड़ती है, बालक,वृद्ध और युवक सभी अपनी अवस्था के अनुकूल मनोविनोद के उपकरणों का व्यवहार करते हैं। खेल तमाशा या नाटक आदि देखकर, विभिन्न खेलकर, शिकार खेलकर और अन्य साधनों के द्वारा लोग अपना मनोविनोद करते हैं । सन्तकवियों ने जिन मनोविनोद के उपकरणों का उल्लेख उपमान-रूप में किया है, वे हैं-- बाजीगर परमात्मा के लिए आया है तथा बाजीगरी उपमान संसार के लिए, बाजीगर की पुतली माया के लिए, खेल या तमाशा उपमान आया है साधना के आनन्द के लिए, खेलना या अभिनय जीव के लिए, तिकठिया का खेल त्रिगुणात्मक शरीर के लिए तथा दुकठिया का खेल कामक्रोध के लिए, जुआ के खेल जीवन के लिए,

चौपड़ आया है चित्त के लिए, पासा उपमान कर्म उपमेय के लिए आया है, दाव या दांव दुखसुख या दुःख सुख के लिए आया है, घरि चौथे या कोठा चेतन के लिए तथा गोटा गेंद या गोला उपमान का उल्लेख दुखसुख के लिए हुआ है, गुड्डी या पतंग का भी उल्लेख किया गया है ।

बाजीगरी — जादूगरी या इन्द्रजाल को कहते हैं, इसमें जादूगर या बाजीगर मनुष्यों की दृष्टि और बुद्धि को धोखा देकर ऐसे आश्चर्यजनक खेल दिखाता है जो अलौकिक जान पड़ते हैं, बाजीगर में लोगों को मोहित करने की अद्भुत क्षमता होती है । भारत में जादू या इन्द्रजाल विद्या का बहुत प्रचार है, यहां के बड़े बड़े जादूगरों ने अपनी मोहिनी शक्ति से विश्व के अनेक लोगों को मोहित किया है। यह भी मनोविनोद का एक प्रसिद्ध साधन है। सन्तकवियों ने परमात्मा को बाजीगर कहा है जो अपनी इच्छा से कुछ भी करने में समर्थ है। बाजीगरी उपमान संसार के लिए लाया गया है क्योंकि यह उसी बाजीगर की सृष्टि है। बाजीगर की पुतली माया को कहा गया है जो बाजीगर या परमात्मा के इच्छानुसार नाचती है ।

चौपड़ि — चौपड़ एक प्रकार का खेल है जो बिसात पर चार रंगों की चार चार गोटियों से खेला जाता है। यह बहुत प्रसिद्ध खेल है, पहले यह बहुत खेला जाता था। इस खेल की बिसात के लिए चौपड़ि शब्द का उल्लेख हुआ है सन्तकाव्य। यह उपमान चित्त उपमेय के लिए आया है ।

गोटा या गेंद — गेंद का खेल बहुत प्रसिद्ध खेल है। गेंद मनोविनोद का एक बहुत लोकप्रिय उपकरण है, गेंद के द्वारा अनेक प्रकार के खेल खेले जाते हैं, यह बच्चों को बहुत प्रिय है। इस उपमान का उल्लेख सुख दुःख के लिए हुआ है ।

परम्परा प्रचलित मान्यताएं —

इसमें कुछ कवि प्रसिद्धियां तथा प्रतीक आए हैं।

कवि प्रसिद्धियां — कवि अपने वर्ण्य विषय को सरस एवं आकर्षक बनाने के लिए इन कवि प्रसिद्धियों का आश्रय लेता है। इनके द्वारा कवि अपनी अप्रस्तुत योजना को सजीव रूप प्रदान करता है। सन्तकवियों ने भी कुछ कवि प्रसिद्धियों का उल्लेख किया है जो इस प्रकार हैं— सीपी में स्वाती नक्षत्र के जल के पड़ने से उसका मोती बन जाना ,

कमल का सूर्योदय होने पर विकसित होना और चन्द्रमा को देखकर बन्द हो जाना, कुमुदिनी का चन्द्रमा के उदित होने पर खिलना, भ्रमर का कमल में बन्दी हो जाना, चकई चकवे का रात्रि में वियोग होना, चकोर का चन्द्रमा को निहारना, पपीहा का स्वाति जल पीना, हंस का मोती चुगना आदि ।

प्रतीक -- सन्तकाव्य में जिन उपमानों का उल्लेख प्रतीक रूप में हुआ है वे हैं-- गगन, गुफा, चंद, सूर्य, घट, औंधा कुआ, पंच चोर, पांचों नाग, सात सुत, तस्कर, पांति, गज, मृग, दुलहिनी, बालम, राजा, किसहर, गारडू, मंच्छ, सिंघ, काल, मिरिग, ससा, चीता, काग, बटेर, बाज, मूंस, मंजार, दादुल, बेल, गाइ, सर्प आदि ।

निष्कर्ष -- सन्त कवियों ने अपने काव्य में जिन उपमानों का उल्लेख किया है । वे भारतीय संस्कृति से प्रभावित हैं या पूर्ण रूप से भारतीय ही हैं। कहीं कहीं मुस्लिम संस्कृति से प्रभावित होकर भी कुछ उपमानों का प्रयोग किया गया है परन्तु वे संख्या में बहुत कम हैं। सन्तकाव्य में प्रयुक्त उपमानों का सांस्कृतिक दृष्टि से अध्ययन करने पर जो निष्कर्ष प्राप्त होते हैं वे इस प्रकार हैं -- प्राचीन भारतीय साहित्य में उल्लिखित परम्परागत उपमानों का उल्लेख सन्तकवियों ने अनेक स्थलों पर किया जैसे -- कमल, भ्रमर, सूर्य, चन्द्र, मेघ, ज्योति, अग्नि, सागर, सरिता, पर्वत, पाषाण, वन, फूल, वृक्ष, लता, तृण, पत्र, मूल, बीज, रात्रि, दिवस, मृग, केहरि, हस्ती या गज, ससा, हंस, चकोर, मोर, चातृक, मीन, नाग नागिनी, रत्न, स्वर्ण, दीपक आदि। अत: सन्तकवि भारतीय संस्कृति से पूर्णरूपेण प्रभावित थे ।

सन्तकवियों द्वारा प्रयुक्त उपमान अधिकतर आध्यात्मिक अर्थ की अभिव्यंजना करते हैं। कुछ पौराणिक पात्र एवं वस्तुओं का उपमान रूप में उल्लेख आध्यात्मिक अर्थ की व्यंजना कराने के लिए किया गया है। जैसे कान्ह, शिव, ब्रह्मा, नारद, अमृत, चिंतामणि, कामधेनु, कल्पद्रुम आदि ।

साधनापरक अर्थों की अभिव्यक्ति के लिए सन्तों ने कुछ अमूर्त एवं संख्यापरक उपमानों का प्रयोग किया है जैसे -- माया, काम, निंद्रा, काल, पाप, ध्यान, वासना, मोक्ष, व्याधि, कुज्ञान, तेरह, बारह, पांच, पचीस, नवधा, मंठ अवतरि, नव नव, नव दस, नव बधियां, दस गोनि, सात सुत आदि । इन उपमानों

के प्रयोग में भी वे भारतीय संस्कृति से प्रभावित हैं ।

सन्तकाव्य में अनेक मौलिक उपमानों का भी प्रयोग किया गया है, व्यावहारिक जीवन से लिए गए साधारण उपमानों द्वारा इन कवियों ने अपने वर्ण्यविषय को सरल सुगम बना दिया है। भारतीय जनजीवन से लिए गए ये उपमान अनेक स्थानों पर आए हैं, जैसे-- बासन, कटोरा, तवा, लकड़ी, कलश, गाकी, कोल्हू, अहराठी, हथौड़ा, रहट की माल, ढेंकुली, लेज या रस्सी, ताराजी(तराजू) माठी, दीपक, बाती, सुई अरु धागा, सर पतवार, बंसी, औषध, कामरी(कम्बल), रथ, गाड़ी, नौका आदि। जनसाधारण के घर या भवन और इनसे सम्बन्धित अन्य उपमान झरोखी(झरोखा), खंभ, कपाट, कोठरी या कोठरी, थूनि, बलेंडा, छानि, टाटी आदि भी भारतीय संस्कृति से प्रभावित हैं, ग्रामों में ये सब शब्द इसी रूप में प्रचलित हैं ।

खाद्य पदार्थों का भी उपमान रूप में प्रयोगकिया गया है, ये पदार्थ भी भारतीय ही है जैसे-- प्रसाद, खीर, मिठाई, खांड, दूध, घृत, दही, चबेना, भांग, मद आदि भारतीय वस्त्रों एवं वस्त्र बनाने के उपकरणों का भी उल्लेख सन्तकवियों ने किया है -- चकारी कपड़ा, धोती, चुनरी, ओढ़नी या दुशाला, चोला, कंथा, चरखुला, धागा आदि। बहुत पहले से जिन शृंगार प्रसाधन सामग्रियों का व्यवहार भारत में होता आ रहा है उनका उल्लेख भी सन्तकाव्य में उपमान रूप में हुआ है। इनमें से कुछ आभूषण-- कंगन, कुंडल, बाजूबंद, पगभूषन आदि और कुछ अन्य शृंगार प्रसाधन हैं जैसे -- माला, तिलक, अंजन, चन्दन, केसर, कुमकुम, कस्तूरी, सेंदुर आदि ।

एकाध स्थलों पर मुस्लिम संस्कृति से प्रभावित उपमानों का भी उल्लेख इन कवियों ने किया है, परन्तु ऐसे उपमान बहुत कम ही हैं-- पियाला, सीक कबाब, मकतूल, मुल्ला, कुलफ, छुरी, पहला, गुलाम, चाबुक, कैंची, तख्त, कुरान, मसीति, रबाब, झबा, किबला, मक्का, शैतान, प्रेतपिशाच, जिन , पीर, फकीर आदि इनमें से कुछ का प्रयोग भारत में भी होता है ।

भारतीय संस्कृति में साधु सन्यासियों, योगियों का स्थान भी बहुत महत्वपूर्ण है। सन्तकवियों ने इनका तथा इनसे सम्बन्धित वस्त्रों एवं अन्य सामग्रियों का भी उल्लेख किया है, जैसे-- वैरागी, जोगी, साधु सन्त, मुनि, चोला, कंथा, आसन, फावरि, विभूति, मृगछाला, सींगी, खप्पर, किंगरी आदि। भारतीय साधना पद्धति एवं संस्कृति से सन्त कवि पूर्ण रूपेण परिचित हैं और प्रभावित हैं।

सन्तकवियों ने तत्कालीन समाज के कुछ व्यक्ति विशेष पात्रों एवं उनके क्रियाकलापों का उल्लेख किया है, इससे उस समय के जनजीवन का परिचय मिलता है। कलपालों की शब्दावली द्वारा जो आध्यात्मिक रूपक कबीरदास ने प्रस्तुत किया है उससे उनके व्यवसाय का पूर्ण परिचय मिल जाता है। इसी प्रकार वयन जीवियों के व्यवसाय का भी उल्लेख हुआ है। कुम्भकार, कृषक, जौहरी, सिकलीगर, फीलवान, लुहार, चौपट, सौदागर, मरजीया, बाजीगर आदि उपमानों के उल्लेख द्वारा भी उनके व्यावसायिक जीवन का ज्ञान होता है और समाज में उनके स्थान का परिचय मिलता है। इसी प्रकार गढ़पति, राजा, सहजादा, वजीर, प्रधान, दरबानी आदि पात्रों का उपमान रूप में उल्लेख करके सन्त कवियों ने तत्कालीन राजनीतिक स्थिति का ज्ञान करा दिया है।

सन्त कवियों ने पर्वोत्सवों में होली, फाग, मेला आदि का उल्लेख उपमान रूप में किया है, ये दोनों ही भारतीय पर्व या उत्सव हैं, इस प्रकार यहां भी ये कवि भारतीय संस्कृति से प्रभावित हैं। उस समय भी लोग एकता के प्रतीक स्वरूप इन पर्वों को महत्व देते थे और धूमधाम से इन्हें मनाते थे।

मनोविनोद सम्बन्धी उपकरणों का उल्लेख भी सन्तों ने किया है। उनके समय में भी बाजीगरी, चौपड़, जुआ, नाटक अभिनय, गेंदों का खेल, शिकार या शिकार, पतंग या गुड्डी आदि मनोविनोद का प्रचलन था, लोग इस प्रकार के खेल खेलकर या देखकर अपना मनोरंजन करते थे।

सन्तकाव्य में सभी प्रकार की कलाओं का भी उपमान रूप में उल्लेख हुआ है काव्यकला, मूर्तिकला, वास्तुकला एवं संगीतकला, इन कलाओं का समाज में आदर होता था। भारतीय संस्कृति से प्रभावित होकर ही इन कवियों ने विभिन्न कलाओं का उल्लेख किया है, उस समय में भी ये कलायें उन्नत अवस्था में थी।

सन्तकवियों ने बहुत पहले से चले आते हुए कुछ भारतीय कवि-प्रसिद्धियों का उल्लेख किया है जैसे -- स्वाती जल का मोती बनना, कमल का सूर्य को देखकर विकसित होना, चन्द्रमा के उदित होने पर कुमुदिनी का खिलना, भ्रमर का कमल में बन्द होना, पपीहे का स्वातीजल पीना, चकोर का चन्द्रमा को निहारना, हंस का मोती चुगना, चकई चकवे का रात्रि में वियोग होना आदि। उस समय में भी इन कविप्रसिद्धियों का प्रचलन था इसीलिए सन्तकवियों ने इन्हें अपनाकर अपने वर्ण्य विषय को आकर्षक और सरल रूप में प्रस्तुत किया है। भारतीय संस्कृति से प्रभावित होकर भारतीय उपमानों का ही सन्तों ने प्रतीक रूप में उल्लेख किया है ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि इन उपमानों या अप्रस्तुतों का प्रयोग सन्तकवियों ने भारतीय संस्कृति से प्रभावित होकर ही किया है। अन्य कवियों के समान ही इन कवियों की रचनाओं में तत्कालीन सामाजिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक स्थिति का परिचय मिलता है ।

-0-

विषय में डा० शर्मा ने अपने विचार प्रकट करते हुए कहा है--' यद्यपि यह दावा तो नहीं किया जा सकता कि कबीर मूलत: कवि थे, किन्तु यह तथ्य भी झुठलाया नहीं जा सकता कि विचार एवं अनुभूति की धूप-छांव में लोककाव्य की भक्तिपूर्ण अंगड़ाइयों का आविर्भाव हिन्दी भाषा-साहित्य में सबसे पहले कबीर-वाणी में हुआ । उसमें परवर्ती भक्ति-काव्य-कल्पतरु का एक निर्दिष्ट मुकुलरूप अंकुरित मिलता है । सच तो यह है कि कबीर-वाणी में न केवल साधनात्मक परम्पराएं अपने सरल,सहज एवं छद्म-मुक्त रूप में मिली हैं,अपितु भावाभिव्यक्ति की विविध पद्धतियां भी उभर कर मिली हैं । यही कारण है कि इसमें कबीर की रचना में विद्यापति-पदावली की मधुरता, तुलसी की वाणी की सी अटल वक्रता, नाथ-वाणी की सी प्रखरता एवं सिक्खों के सिद्धों की सी प्रतीकात्मकता मिलती है ।'[1]

सन्तकवियों ने अपने भावों एवं विचारों को समाज तक पहुंचाने के लिए अपनी स्वाभाविक प्रतिभा का आश्रय ग्रहण कर जिन वाणियों की रचना की थी,उनमें कृत्रिमतारहित सुन्दर,सफल काव्य के पर्याप्त गुण सहज रूप से आ गए हैं । व्यावहारिक अनुभवों पर आश्रित जो अलंकार अत्यन्त स्वाभाविक ढंग से सन्तकाव्य में आ गए हैं, वे सन्तकवियों के भावों एवं विचारों की अभिव्यक्ति में पूर्ण रूप से सहायक हैं साथ ही काव्य के आन्तरिक सौन्दर्य की वृद्धि में सहायक हैं । वे केवल बाह्य रूप को आकर्षक बनाकर कृत्रिम चकाचौंध की सृष्टि करके नेत्रों को विस्मयविमुग्ध करने वाले नहीं हैं । सन्तकवियों के अलंकार काव्य में एक अद्भुत प्रभाव उत्पन्न करते हैं, ये अलंकार सन्तवाणी के स्वाभाविक अंग होकर आए हैं । विशेषतया रूपक अलंकार अपने सहज स्वाभाविक रूप में अनेक स्थलों पर आया है । अनेक उदाहरणों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि सन्तकवियों के रूपक बहुत ही सुन्दर एवं प्रभावशाली हैं । वे रूपक व्यावहारिक जीवन का जीवन्त चित्र प्रस्तुत करते हैं । उपमा, प्रतिवस्तूपमा, रूपकातिशयोक्ति, उत्प्रेक्षा, सन्देह, भ्रान्तिमान्, दृष्टान्त, उदाहरण, अन्योक्ति, विशेषोक्ति,अर्थान्तरन्यास,श्लेष,तुल्ययोगिता,

---

1 डा० सरनामसिंह शर्मा : कबीर : व्यक्तित्व कृतित्व एवं सिद्धान्त',पृ०५२६ ।

विभावना, विरोधाभास आदि अलंकारों का प्रयोग भी उपमानों के सन्दर्भ में अनेक स्थलों पर हुआ है । सन्तकवियों की उलटबांसियों को विरोधाभास समन्वित रूपका-तिशयोक्ति अलंकार के अन्तर्गत रखा जा सकता है । सूक्ष्म अध्ययन करने पर हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि अलंकारों के सम्बन्ध में कबीर आदि सन्तों का कोई प्रयत्न न होते हुए भी उनकी वाणी अलंकारों की स्वाभाविक छटा से वंचित नहीं है । यों तो सन्तों की वाणी में शब्दालंकारों का अभाव नहीं है,किन्तु अर्थालंकारों की बहुलता सिद्ध है । उभयालंकार के उदाहरण भी अप्राप्य नहीं हैं । अर्थालंकार-क्षेत्र में सन्तों के उपमानों से 'सादृश्य' और विरोध दोनों की व्यंजना हुई है और कहीं-कहीं दोनों का गंगा-जमुनी रूप भी प्राप्त होता है ।

कवि अपने काव्य को अधिक प्रभावपूर्ण बनाने के लिए अप्रस्तुतों का सहारा लेता है । सन्तकवियों ने भी अप्रस्तुतों का आश्रय लेकर अपने वर्ण्य को साधारण अथवा असाधारण ढंग से व्यक्त किया है । इन अप्रस्तुतों ने उनके काव्य को अत्यन्त आकर्षक एवं सरस रूप प्रदान किया है । इनके प्रयोग द्वारा साधारण ढंग से कही गई बात भी असाधारण-सी लगती है, दादूदयाल कहते हैं--

सबद दूध घृत रामरस, कोई साध बिलोवणहार ।
दादू अमृत काढिले, गुरमुख गहै बिचारि ।।

(दादूदयाल ग्रन्थावली, साखी १-३०)

इसी प्रकार कबीरदास जी की साखी भी इस बात का स्पष्ट प्रमाण है कि अप्रस्तुतों के कारण साधारण सी बात भी कितनी आकर्षक लगती है--

'पांखड़ पंवर मन भंवर, अरथ अनुपम बास ।
राम नाम सींचा अमी, फल लागा वेसास ।।'

(कबीर ग्रन्थावली,वेसास को अंग, १० वीं साखी)

सन्त कवियों ने अप्रस्तुतों का सहारा लेकर जहां अपने वर्ण्य को असाधारण ढंग से प्रस्तुत किया है, वहां भी उनका सौन्दर्य द्रष्टव्य है । कबीर कहते हैं --

हिरदै माहरि दौं बले, धुवां न परगट होइ ।
जाकै लागी सो लखै, कै जिहिं लाई सोइ ।।

(कबीर ग्र०, साखी २-७)

सन्तों ने अपनी आन्तरिक अनुभूति की अभिव्यंजना कराने के लिए जिन अप्रस्तुतों की योजना की है, वे उनके इस उद्देश्य की प्राप्ति में पूर्ण सक्षम हैं ।

इन कवियों ने अमूर्त और मूर्त दोनों प्रकार के उपमानों का प्रयोग किया है । दृश्य उपमानों के द्वारा अदृश्य उपमेय का अत्यन्त सहज ढंग से बोध कराया गया है । प्राय: यह समझा जाता है कि मूर्त का वर्णन करने के लिए अमूर्त उपमानों का प्रयोग छायावाद आदि अत्याधुनिक काव्यविधाओं की विशेषता है, किन्तु यह देखकर आश्चर्य होता है कि सन्तों ने भी सहज भावाभिव्यक्ति के लिए इस शैली को अपनाया है । उदाहरण के लिए सन्तकाव्य में परम्परागत तथा मौलिक दोनों प्रकार के उपमान आए हैं । साहित्यस्रष्टाओं पर प्राचीन सांस्कृतिक परम्पराओं का प्रभाव पड़ना स्वाभाविक ही है, सन्तकवि भी अपने अप्रस्तुतों के चयन में स्पष्टरूप से परम्परा से प्रभावित हैं । एक ओर वेद, उपनिषद् तथा विभिन्न संस्कृत काव्यग्रन्थों से चले आते हुए परम्पराओं का प्रभाव सन्तों पर पड़ा है, तो दूसरी ओर सिद्ध और नाथ साहित्य में आए हुए उपमानों का प्रयोग भी इन कवियों ने किया है । कहीं-कहीं इस्लाम संस्कृति से प्रभावित होने के कारण अरबी-फारसी साहित्य का प्रभाव भी सन्तों पर पड़ा है ।

प्राचीन साहित्य से अप्रस्तुतों में चन्द्र, सूर्य, तारे, आकाश, मेघ, अग्नि, सरोवर, सागर, गंगा, यमुना, पर्वत, गुफा, हीरा, कनक या स्वर्ण, अमृत, कल्पवृक्ष, चिंतामणि, कमल, कुमुदिनी, केतकी, लता बेलि, वृक्ष, भ्रमर, सर्प या नाग, भृंग, पतंग मीन, अश्व, गज, मृग, सिंह, पक्षी, चातक, मयूर आदि मुख्य हैं ।

इस्लामसंस्कृति से प्रभावित होकर जिन उपमानों का चयन किया गया है, उनमें से कुछ इस प्रकार हैं-- प्याला, सुराही, मांस, कबाब, सींक, कुरान, काबा, मक्का, मदीना, काजी, मुल्ला आदि ।

सन्तकवियों ने सिद्ध-नाथ-परम्परा के अनेक उपमानों का प्रयोग अपनी वाणियों में किया है। कहीं-कहीं उनके अर्थ बदल गए हैं। अनेक स्थलों पर प्रतीक रूप में भी इन उपमानों या अप्रस्तुतों का प्रयोग हुआ है। जैसे-- चन्द्र सूर्य प्रतीक रूप में आया है इड़ा पिंगला नाड़ियों के लिए। कबीर कहते हैं कि सूर्य(पिंगला),चन्द्र (इड़ा) को मिलाकर एक घर (सुषुम्ना) में कर देने पर मैं कृतकृत्य हो गया --

सूर समाना चांद मैं, दहूं किया घर एक।
मन का चेता तब भया, कछु पूरबला लेख ।।'
(कबीर ग्र०- साखी)

दोहाकोश में सरह भी चन्द्र-सूर्य का इड़ा-पिंगला के लिए इसप्रकार प्रयोग करते हैं--

चंद सुज्ज घसि घालइ घोट्टइ।
सो आणुत्तर एत्थु पवट्टइ ।।'
--सरह, दोहाकोश ३५।

गंगा-यमुना भी इड़ा-पिंगला नाड़ियों के लिए प्रतीकवत् प्रयुक्त हुए हैं, सन्तकाव्य में इनके अनेक उदाहरण भरे पड़े हैं (इनके अतिरिक्त कुछ और उपमान ऐसे हैं, जिन्हें सन्तकवियों ने नाथ तथा सिद्ध-साहित्य से प्रभावित होकर अपनी रचनाओं में स्थान दिया है, जैसे-- चरखा, रहटा,सूत,ताना-बाना,चादर, सेज, दुलहा-दुलहिन, मंडप, पुरोहित, बादल, गिरि, गोंद,घट,हांडी,मधपात्र, सुरई,पतवार, शंख आदि।) प्राचीन भारत की दार्शनिक चिन्तन-परम्परा में प्रयुक्त कुछ अप्रस्तुतों को सन्तकाव्य में अपनाया गया है, जैसे-- रज्जुसर्प,बंध्यासुत,आकाश-कुसुम, शशशृंग आदि।

सन्तकवियों ने कुछ मौलिक अप्रस्तुतों का प्रयोग किया है। लोकजीवन से गृहीत ये अप्रस्तुत काव्य में नवीनता ले आते हैं। यह सन्तकवियों की ही विशेषता है कि प्रतिदिन के व्यावहारिक जीवन से अतिसाधारण वस्तुओं का चयन उपमान रूप में करके उन्होंने अपनी वाणियों में एक अद्भुत स्वाभाविकता तथा सरलता का समावेश किया है। इसीलिए साधारणजन सहज ही इन कवियों की ओर आकृष्ट हो जाते हैं।

ऐसे अप्रस्तुत लोकजीवन का सजीव चित्र प्रस्तुत करते हैं । ग्रामीण शब्दावली का आश्रय लेकर कृषकों, वयनजीवियों और कल्यपालों के व्यवसाय से सम्बद्ध विविध वस्तुओं का अप्रस्तुत रूप में उल्लेख किया गया है, इस शैली के कुछ अप्रस्तुत इस प्रकार हैं-- किरसाना(- कृषक),खेतु, गांव, महतो, नेनु, नकटु,धरमराई,रामुराय, माछी, मज,पुरिया, सूत,पाट,पहजल, बेठ, नली,गंडे,कलाली,मद,लाहनि, गुड,कसि, माठा,अगिनि, मुद्रा,, पोतलहारी,रावल आदि । इनके अतिरिक्त व्यावहारिक जीवन से गृहीत कुछ और उपमान हैं,जैसे-- कलश,कटोरा,थाल,तवा,कढ़ाई,अन्न, शक्कर,खांड,मिठाई, दूध,घी,दही, आरसी,सिंदूर, अंजन,माला, कस्तूरी,मंदरिया, बाजा, बोलना, सैंथ, गागर,आंधी,टाटी, धूनि, बलेंडा, छानि,मांडा,तांति, रबाब, चोला, कैंची,सूई, धागा,वस्त्र, ऊन, गंडासा, कोल्हू,दीपक,तेल,बाती, कंथा, सींगी,छत्र,गढ़, पटण,तिलक, छापा, मेखला,सोनार,निहाई,हथौड़ी,धौंकनी, सोना, टकसाल, सिक्का,पिंजड़ा,पारधी,बटाऊ आदि ।

सन्तकवियों ने अप्रस्तुतों की विरोधात्मक योजना भी की जो उलटबांसी के नाम से प्रसिद्ध है । ऐसे स्थलों पर कहीं तो परस्पर विरोधी धर्म वाले अप्रस्तुतों का कथन किया गया है औरकहीं उपमानों या अप्रस्तुतों में उनके स्वाभाविक धर्म के स्थान पर विरोधी धर्म का आरोप कर दिया जाता है । अप्रस्तुतों का विरोधात्मक योजना के उदाहरण इस प्रकार हैं --

है कोई गुरु ग्यानी जगत महिं बेद बूझै ।
पनिआ महिं पावक बरै अंधे आंखिन सूझै ।।
गाइ नाहर खाइयौ हरिनि खायो चीता ।
काग लंगर फांदिया बटेरै बाज जीता ।।१।।

--कबीर ग्रं०पद १३७

इसी प्रकार नामदेव एक स्थान पर कहते हैं--

सिंह माना पूठि फेरी बाण लागी हेरिया ।
बाहरि जाता भीतरि पेख्या भागे म्रातिनि बैरिया ।।

-- नामदेव पद ६८

इस प्रकार सन्तकवियों की अप्रस्तुतयोजना का अध्ययन करने पर हम देखते हैं कि उनके अप्रस्तुत किसी काल्पनिक जगत की उड़ान भरने वाले न होकर वास्तविक लोक के सदस्य हैं । इन कवियों की अप्रस्तुतयोजना यथार्थ के धरातल पर प्रतिष्ठित है । इन सन्तोंने औचित्य की उपेक्षा नहीं की है । डा० शर्मा कबीरदास जी की अप्रस्तुतयोजना के विषय में कहते हैं --" ऐसा प्रतीत होता है कि कबीर अप्रस्तुतयोजना के क्षेत्र में औचित्य को नहीं भुलाते । कल्पना औचित्य को कभी भी मार्ग-भ्रष्ट नहीं करती और बातों को छोड़िये, उनका आध्यात्मिक विवाह तक औचित्य से वंचित नहीं है । 'दुलहिनी गावहु मंगलचार' (पद१) वाले पद में अप्रस्तुत योजना और औचित्य-प्रस्थापना का सुयोग देखा जा सकता है । औचित्य का बाध तो कबीर की उलटबांसियों में भी नहीं हुआ ।"[1] सन्तों ने पूर्ववर्ती साहित्य से गृहीत परम्परा-प्रचलित अप्रस्तुतों को भी अपनाया है और लोकजीवन से भी उपमानों का चयन किया है । दूसरे प्रकार के स्थलों पर उन्होंने अपनी अप्रस्तुतयोजना को मौलिक एवं नवीन रूप प्रदान किया है । अप्रस्तुतों के द्वारा सन्तकाव्य में व्यंजकता, चित्रात्मकता, प्रतीकात्मकता, स्वाभाविकता आदि गुण आ गए हैं । प्रेम, विरह, भक्ति आदि प्रसंगों में सन्तकवियों की भावुकता द्रष्टव्य है । सन्तकवियों की अप्रस्तुतयोजना के द्वारा उनकी अभिरुचि तथा लोकजीवन सम्बन्धी महान् अनुभव का परिचय प्राप्त होता है । इन्हीं विशेषताओं के कारण उन्हें इतनी अधिक लोकप्रियता प्राप्त हुई है ।

-0-

---

१ कबीर : 'व्यक्तित्व कृतित्व एवं सिद्धान्त', पृ०४८५ ।

परिशिष्ट भाग

परिशिष्ट- १ में सन्तकाव्य में प्रयुक्त अप्रस्तुतों की विस्तृत वर्गीकृत सूची अकारादि क्रम से दी गई है। अप्रस्तुतों के स्थलनिर्देश के साथ उन प्रस्तुतों का निर्देश भी कर दिया गया है, जिनके लिए वे अप्रस्तुत प्रयुक्त हुए हैं, कुछ अप्रचलित शब्दों के अर्थ भी कोष्टक में दे दिए गए हैं। परिशिष्ट-२ में अलंकारों की विस्तृत सूची है।

-0-

परिशिष्ट-१

-०-

सन्तकाव्य में प्रयुक्त उपमानों की वर्गीकृत सूची

अप्रस्तुत	प्रस्तुत	कुल प्रयुक्त स्थलों की संख्या।	प्रयुक्त स्थल
प्रकृति वर्ग			
आकाश	सुषुम्ना,उच्च दशा या ईश्वरोन्मुखी प्रेम,सहस्रार या अन्तःकरण,ब्रह्मरन्ध्र, ईश्वर,शून्यावस्था ।	६	कबीर,पद ११२-६,११४-८,१२२-१२ १३०-११। हरिदास,पद १३०-४-१। यारी,मकन,शब्द १०.२ ।
अरघ	हृदय	१	दादू,पद २-१५-७
आग	अन्तःकरण	१	हरिदास,पद १३०-१-४
गगन	शिखाएं,सहस्रार,हृदय,ब्रह्माण्ड,ब्रह्मरन्ध्र, शून्यकोष,शून्य,परमात्मा,अन्तःकरण।	११	कबीर,पद-१०८-४,११७-४, १५१-१, साखी- ६-६,६-३५।दादू,पद ६.२६.३। हरिदास,पद ११६.३.१,३०.१,१५३.५.१ १७६.५.२, १८६.१.२ ।
जोति	जलदीप	१	कबीर,पद १३०-३ ।
नूर(प्रकाश)	शोभा	१	धन्ना,पद- ११६.३ ।
तारे	मानुष की जाति,परब्रह्म	२	कबीर,साखी १६-२१।नामदेव,पद१०७.१
नक्षत्र	नौ द्वार,शरीर,मौक्तिक माल	१	कबीर,पद १२२.४
बादल(धुएं)	काया	१	हरिदास,पद-१८६.२.१
भानु	गुरु	१	कबीर,पद- ५२.६
मरीचि	जाँगल के फूल	१	सुन्दरदास ११.१३.२
रवि	गुरु,प्रभु,ज्ञान,ब्रह्म,ज्योति,परमात्मा	५	सुन्दरदास १.१.२,१६.७.५।रैदास,पद ३८.१२।दादू,साखी २.५८,४.८०।

अप्रस्तुत	प्रस्तुत	कुल प्रयुक्त स्थलों की संख्या ।	प्रयुक्त स्थल
मेघ	संत भाणा	१	सुन्दरदास, २२.१६.२
मेह	स्नेह,बाह्याचार	२	दादू,साखी ३.१४६।जम्भ,पद ४५.३ ।
बादर	भ्रम,माया,अनहद नाद	३	सुन्दरदास २२.१८.५।कबीर,साखी २.५३। हरिदास,पद ५०.१.२ ।
दामिणि	ज्ञान ज्योति,जागि चिते	२	हरिदास,पद १३०.१.४,१६७.३.२ ।
बीज	ज्ञान प्रकाश,ज्ञान ज्योति	२	हरिदास,पद १२६.२.१, ५०.१.२ ।
स्वाति बूंद	परमात्मा, प्रभु, ब्रह्म	३	कबीर,साखी ११.८।सुन्दरदास,१६.७.३।यारी, भजन १६.६ ।
कुहेरा(कुहरा)	संसार, माया	३	कबीर,पद ८५.१।प्राणनाथ,किरंतन,प्रकरण ११.१०, १२८.१ ।
गैंण बिलंबी बेहु(आकाश में स्थित वृक्ष)।	काया	१	जम्भ,पद २३.११
अग्नि—			
अग्नि	कामक्रोध,दुख,विषय,हउ- मै,विरहा,चिंता मोह-लोभ क्रोध,पंचविकार, राम ।	११	सुन्दरदास, २२.१५.५।कबीर,पद ५१.५,११०.८। दादू,पद १.५६.५, ८.२७.५।हरिदास, पद १२८.१.३। नानक,सिरीराग,सबद २०.१२, गउड़ी १.५,मारू ३.७। दादू,साखी ३.१४२, १०.६० ।
अनल	जीवात्मा	१	रैदास,पद १७.२ ।
आग	कनक,कनक कामिनी,विरह, अहंकार,कुमति, माया,तृष्णा	६	प्राणनाथ,किरंतन,प्रकरण ७५.१४।कबीर,पद ६७.५, साखी ३.१३, २.५०, २.५१, १५.७१, ३०.१७ ।दादू,साखी १२.७४।नानक,सिरी १४.७ ।

अप्रस्तुत	प्रस्तुत	कुल प्रयुक्त स्थलों की संख्या ।	प्रयुक्त स्थल
पावक	आत्मा,ब्रह्म,ज्ञान,राम, माया,दुष्ट जन,सांवत (योद्धा),बालम ।	७	कबीर,पद १३७.२, साखी २.३०,२६.१३।दादू, पद १.१६.४।सुन्दरदास,१०.४.३,२१.१.५, २६.३२.१ ।
भाहि(अग्नि)	तृष्णा,अहंकार	२	नानक,वासा,सलोक २१.३, सिरीराग,१७.५ ।
अग्नि की झाल ।	कनक कामिनी,विषय वासना ।	२	कबीर,साखी ३०.१०।दादू,पद ८.७.२ ।
झाल	ब्रह्म ज्योति,आध्यात्मिक दृश्य,ज्ञान विरह,सांसारिक वस्तुएं ।	३	कबीर,पद १३४.८, साखी २.५।दादू,पद ८.७.२
अंगारे	त्रिताप,वैरभाव,विषय-विकार ।	२	कबीर,पद ११४.८,साखी २.५३ ।
दौं	विरह	२	कबीर,साखी २.७, १३.१ ।
दावानल	दु:ख,ज्ञान	२	प्राणनाथ, किरंतन,प्रकरण १३१.२५।कबीर, साखी १.२३ ।
दौं	सांसारिक कष्ट	१	कबीर,साखी १६.२ ।
धूम	मन,बाह्याचार	२	दादू,साखी १०.६०। कबीर,साखी २.७ ।
धुवाँ का धौल-हर।	संसार	१	कबीर,साखी १५.४० ।
धूम कैसो बाद ।	मन	१	सुन्दरदास, ११.२०.७
धुंधरियणां छोर (धुएं की छोर)	मेरं(ममत्व का भाव)	१	जम्भ,पद २३.२ ।
धुंवर का बादल मेह	राम बिना,प्राणविहीन काया ।	२	हरिदास,पद १६८.१.२।जम्भ,पद २३.८

अप्रस्तुत	प्रस्तुत	कुल प्रयुक्त स्थलों की संख्या ।	प्रयुक्त स्थल
मनी	प्रभु,मन	२	सुन्दरदास,१६.७.२ । दादू,साखी ४.२७५
माणिक	सत्य,पवना,मन,ज्ञान,रिद,जीव,नाम,गुरु.	८	दादू,साखी४.६४,४.२०३ । जम्भ,पद १६.१२ । नानक, सिरी राग,सबद २१.३,२२.११,राग मारू,सबद १०.३,१०.१२
मुक्ता	मुक्ति	१	कबीर,साखी ६.३४
मुक्ताहल	मुक्ति,मन	३	कबीर,पद २८.४ ।दादू,साखी ४.५५,पद १०.१
मोती	मुक्तावस्था,नाम,ब्रह्म,राम,मनस,प्रभु,मन	८	कबीर,साखी ६.१८,१८.५,२२.१० । दादू, साखी ४.५८,४.२०३ । रैदास,पद ४०.८ । नानक,बाणी,सबद १२.२ । हरिदास,पद १४०.१
मोती मुक्ताहल	ऐश्वर्य	१	कबीर,पद ६५.४
रतन	ज्ञान,कमल,गुण,मन,राम,सत्य,नाम,आत्मा,हरि,सबद,नेम	१७	कबीर,पद ४३.३,६०.१,६७.२,साखी २.५२,३.१५ दादू,पद १.३१.४,११.५.२,दादू,साखी–४.६१,४.२०३,६.१ ।नानक,सिरी,सबद २१.१२,माझ,पउड़ी ४.१,गउड़ी,सबद ४.६,बाणी १६.१८.१२,मलार ५.४।हरिदास,पद १७६.२.२
हीरा या हीर	जीव,संसार,मुक्तिजन,विषयी या कामी,मन,क्रियाहीन व व्यक्ति,जीव,भगत	११	कबीर,साखी १.३०,६.४१,२४.११,३०.१७ ।क पद १.१७,१४.१० । रैदास,पद ८.२ ।नानक,म सबद ३.७ ।सुन्दरदास,१.१४.१ ।नामदेव,१६२.
[illegible]	बुद्धि	१	मीरा, मिश्रित,शब्द२४.७
हंस	जीवात्मा	१	कबीर,साखी २.६
[illegible]	दादू,जीवात्मा	२	कबीर,पद ३४.४,साखी ११.१
[illegible]	जीव,संतोष	२	कबीर,पद १८.६ । नानक,सोरठि,सबद २.२

अप्रस्तुत	प्रस्तुत	कुल प्रयुक्त स्थलों की संख्या ।	प्रयुक्त स्थल
हीरा	राम नाम, परमात्मा, हरि, शरीर का प्रकाश, स्नेसा, आतम, जनम ।	२०	कबीर, साखी १.११, ६.३२, १५.५५, १८.१, १८.१२ जग्ग, पद ११६.४ । दादू, साखी २.६६, ४.२०३, १२.८७ पद १.४१.४ रैदास, पद १०८.१ । नानक, सिरी, सबद २१.४, बासा १७.७ । हरिदास, पद २६.१.४, ३१.१.२, ६७.३.१, १०३.२.२, ६६१.१.४ नामदेव, पद १.१, २७.१
जगत:-			
साँई	त्रिगुण	१	कबीर, पद २५.२
धरती	काया के गुण, कुंडलिनी, काया, अन्त:करण, ध्यान	५	कबीर, पद ११२.७, १२२.१२, १२२.१४ । हरिदास, पद १२८.१.३ । जग्ग, पद २७.२१
भूमि	पूरब जनम, हृदय, कुसंग, ब्रह्म, सुबुधि, सुवासि, आत्मा	६	कबीर, पद ६०.२, साखी २४.१ । नानक, बासा, सबद १६.६ । दादू, साखी ४.११५, ४.२४५ । हरिदास, पद १२८.१.४ । मीरा, कवित्त १२.१
काछर (बंजर भूमि)	छोभ	१	रैदास, पद ८६.३
खेह	विषिधाग्रह आचरण	१	कबीर, साखी १२.६
धामि (वार्मि बर्मि काश्मिटी)		१	कबीर, पद ६५.३
माटी	पंचतत्त्व, गुनी, शरीर, बहुठीयोमनी (बर्बोविचार)	४	कबीर, पद ६५.३, साखी २२.६ । नानक, रामकली, सबद ७.४ । सुन्दरदास, २.१३.२
धूरि	पाप, मन	२	नानक, बाबा, सबद १३.१ । सुन्दरदास, २२.१५.१

अप्रस्तुत	प्रस्तुत	कुल प्रयुक्त स्थलों की संख्या	प्रयुक्त स्थल
रैन(रजकण)	तुम(जीव)	१	प्राणनाथ, किरंतन,प्रकरण ८६.११
कांकर	आचार या पाखण्ड, विषय,वासना,नश्वर जगत	३	कबीर,साखी १८.८ ।दादू,साखी १२.८७।दादू, साखी १२.१४०
चकमक	चित	१	कबीर,साखी २६.१३
पाहन	निर्गुणी,पिरथिमी,परमा-त्मा,जगत,माया,मूढ़प्राणी, पाप	७	कबीर,साखी २२.६,२४.२।रैदास,पद ४३.४। दादू,साखी १२.१४१,१२.१४१ ।जम्भा,पद १०५.५। नानक,मारू,सबद २.८
पंथा	आगम	१	दादू,पद ६.१८.२
सेत फटिक	रोकमाई	१	यारी,भजन,शब्द १०७.१
धान	संतोष,पंचज्ञानेन्द्रियां, सिद्धि	३	दादू,साखी ४.२४५ ।कबीर,पद ५६.३।जम्भ, पद ५३.३
जड	मर्म	१	कबीर,पद ११०.३
गगरिया	शरीर,संसार,अविद्या, काया	८	कबीर,पद ६५.१,११०.३,१२०.१,१५४.४ । हरिदास पद २.३.१।नानक,गुजरी,अष्ट० १.१,बसंत ६.१। दादू,पद ६.१८.५
बखर	शरीर	१	हरिदास,पद १४३.२.१
कनकपुर	मोक्ष	१	कबीर,पद ५६.७
कासी	काया	१	कबीर,साखी २६.११
काबा	करणी	१	नानक,माझ,सलोकु १०.३
किलडा	देही	१	कबीर,पद १२६.३
गोकुल	शरीर	१	हरिदास,पद १४०.१.२
द्वारिका	चित्त	१	कबीर,साखी २६.११
बनारस	कुलक	१	कबीर,पद १३१.११

अप्रस्तुत	प्रस्तुत	कुल प्रयुक्त स्थलों की संख्या	प्रयुक्त स्थल
मथुरा नगरी	ब्रह्मरन्ध्र,काया,मन	३	कबीर,पद १३१.६,साखी २६.११।हरिदास,पद १२६.३.१
मका	मनु	१	कबीर,पद १२६.३
तीर्थ	गोव्यंद,आतम,परमात्मा	३	दादू,साखी ८.६।नानक,वाया,सलोकु १६.६ । रैदास,पद २०.६
गांउ	शरीर,देही,संसार	३	कबीर,पद ४१.१,४१.३,१०५.१
गली	ग्यांन,हृदय मस्तिष्क	२	कबीर,पद १४४.५ ।हरिदास,पद १७६.३.४
घाटे (स्तिथान)	मुख	१	हरिदास, पद १२८.३.१
उस कुटि	परमात्मा	१	कबीर,साखी ६-३,६
घाट	सहज सुम्नि,वृत्ति	२	कबीर,साखी १०-७।दादू,पद ७-८-२
तीर	परमात्मा,पापपुन्य	२	कबीर,साखी १६-३८।गोरख,जोगी और जो०म०, ग्रन्थ १-४
गोबाडि	संसार,शरीर	२	नामदेव, पद १२२-३।दादू,पद २-१२-६
मैदाना	संसार	१	कबीर,पद ५६-४
मंड	रचना,ध्यान,शरीर	१	कबीर,पद १३०-७।
त्री मंड	त्रिवेणी,त्रिकुटी	१	कबीर,पद १३०-७
मृत्तिका को पिंड	देह	१	सुन्दरदास,पद ४-६-१
बाबारि	शरीर	१	कबीर,साखी १-३२
हाट	संसार,साधु(साधु)संगति दरबाबा,जीवात्मा,मृत्यु	७	कबीर,साखी १-१५,३१-८।नानक,सोरठि,सबद २-६मारू ११-८,मारू,असट०२-२४।रैदास,पद३-६। हरिदास,पद १७८-१-४ ।
चित्रशारि (परदेश)	प्रभात्मा,स्थूल काया मैं	३	कबीर,पद १५१-३,साखी ६-६।रैदास,पद ६१-७।

अप्रस्तुत	प्रस्तुत	कुल प्रयुक्त स्थलों की संख्या	प्रयुक्त स्थल
पच्छिम	मेरुदण्ड,सुषुम्ना मार्ग	२	हरिदास,पद ११६-१-३,१८६-१-२
पूरब	त्रिकुटी	१	हरिदास,पद ११६-१-३
पताल	मूलाधार चक्र,पाप मार्ग नाभि कुण्ड	३	कबीर,पद ११७-४,साखी ६-३८। हरिदास,पद १८६-२-२ ।
बन	शरीर,सहज स्थिति,संसार, अंग,कामिनी यौवन ।	१०	कबीर,पद७१-५,१३८-३,१४१-१,साखी १०-४,१५-६०। हरिदास,पद२-७-६, २-१०-१। दादू,साखी १२-५०,१२-५६। सुन्दरदास ६-१-१ ।
बनखण्ड,बनराइ	बाह्याचार,शरीर,संसार	५	कबीर,पद११८-७,७१-६,साखी १६-३६। दादू,पद१६-२१-४,६-१८-४।
मसान	घट	१	कबीर,साखी २-१६
पेईअड़ै (पेहर)	संसार	१	नानक,माझ,असट० १-१३
सासुरै	लोक या संसार	२	नानक,सोरठि,सलोक१-३। कबीर,पद १०६-१ ।
मूला	त्रिगुण	१	मीरा,मेवाणी,शब्द५-१-४
जल			
जम(जल)	प्रेमाभक्ति या सख्याभक्ति, वैराग्य ।	२	कबीर,साखी ३-१६। मीरा,साखी ७-१
जल	परमात्मा,ब्रह्म,संसार,भक्तिरस रस,मूलाधार चक्र,अन्तःकरण, माया,काया, प्रेम या भक्ति, नराकाश,जीव,प्राण,मन, अमृत,राम,परज्योति,प्रीति, हरि,उपदेश,गोपद,हरि का नाम,ब्रह्म,ज्ञान,आत्मा,प्रभु सीख मनुष्य ।	३६	कबीर,पद १५-२,१८-४,३४-१,५२-५, ५७-७,११०-३,११५-४,१२२-४,१२२-७, साखी २-५१। नामदेव,पद ११५-२। रैदास पद ४६-४,रैदास पद५२-३,८५-८। हरिदास,पद ८१-४-१,१०२-२-१,११५-१ २,१२८-१-४,१२६-३-२,१३०-१-३, १३०-४-२,१५५-१-३,१८८-२-२। नानक सिरी,सबद२०-१२,आसा१२-३,परमाति विभास ६-४। प्राणनाथ,कलस,प्रकरण ६-१ प्रकाशप्रकरण ५-१२-२। दादू,पद६-८-६, ८-२७-६,१०-१-१,१६-१६-२,साखी २-५३, २-६२,३-१३,४-२६८,१२-१२४। मीरा

अप्रस्तुत	प्रस्तुत	कुल प्रयुक्त स्थलों की संख्या।	प्रयुक्त स्थल
कांदो(कीचड़)	विषय विकार	१	कबीर,साखी ९-१३
कीच	प्रेम	१	कबीर,पद १४४-५।
झड़(वर्षा)	आनन्द,भक्ति	२	हरिदास,पद११६-१-४,१२६-२-१
बरखा	ब्रह्म बाणि	१	हरिदास,पद १४२-१-२
पंक	पंच विकार,मनोविकार	२	नामदेव,पद२९-३।रैदास,पद५९-३
पाला	बड़बोध,भक्त	२	कबीर,साखी ६-३।दादू,साखी४-२७८
फेन बुदबुद	जीव	१	मीरा,कवित्त १२-५ ।
जलनिधि	गु(रु),मन,माया	३	कबीर,पद१-३,३६-१।नामदेव,पद१०६-३
जलहर	भक्तिरस,संसार,परमात्मा	३	कबीर,पद११२-६७,साखी२-२६।दादू, पद १६-२१-३।
दरियाव(समुद्र)	गुरु,मित्र	२	कबीर,पद १-६।दादू,साखी४-६४।
महोदधि	परमात्मा	१	रैदास,पद १७-२।
रैनाकर (रत्नाकर)	परमात्मा,मोक्ष	२	कबीर,साखी२-६।प्राणनाथ,किरंतन, प्रकरण१३३-१।
सिंधु	ब्रह्म	२	कबीर,पद१८-५।प्राणनाथ,किरंतन, प्रकरण३-१।
समंद वा समुद्र	संसार,परमात्मा,अन्तःकरण शरीर,मानस,काल,राम,काम	१७	नामदेव,पद ५०-१,५३-४।कबीर,पद ११४-८,१२२-३,साखी २-५४,८-६,७, ११-१,१६-१०।रैदास,पद४६-५,८५-१। दादू-पद१-१२-२।सुन्दरदास ३-२५-३। नानक,मारू,असट०२-१।हरिदास,पद १३७-२-२,१४३-३-२,१६४-३-२।मीरा, उपदेश,शब्द१६-७ ।
सागर	विष,संसार,दुख,मन,गुरु, बहु,हु(हरि)	११	दादूपद८-७-४,१५-१७-१,१६-६-४साखी ४-५५।मीरा,गुरु और नाम महिमा शब्द३-४।नानक,मारू असट०५-२१,वासा सबद,२२-२।नामदेव,पद ४६-४।कबीर,क साखी६-३२,३१-२५।

अप्रस्तुत	प्रस्तुत	कुल प्रयुक्त स्थलों की संख्या।	प्रयुक्त स्थल
खार समुद्र	विषय वासना	१	कबीर,साखी ३०-५
सागर सप्त	सप्तधातु	२	हरिदास,पद४५-२-१,१७६-३-१।
सुख सागर	हरि	१	कबीर,पद ५३-८
संपत सुख	मन	१	हरिदास,पद १८६-२-१
घुमण वासा (भंवर)।	घर	१	नानक,मारू,सबद२-८
(उदक) भंवरी	संसार चक्र,भ्रम,मन	४	भीखा,कुंडलिया १७-४,जोगी और जोशब्द१-४।दादू,साखी ४-६०। हरिदास,पद ४-१-२।
काम तणा लहिरोइं(तरंग)	नेहं(ममत्व)	१	जम्भ,पद २३-३
तरंग	मन,जीवात्मा,लोभ,प्रेम, लहरि(लहर की लहर)	६	नामदेव,पद७-२,रैदास,पद ४६-४, ७६-६।कबीर,पद५७-७।दादू,पद८-७-४ साखी४-६६।
लहरि	लोभ,गुलपुष्पा,विषै,काल जीवात्मा,ध्यान,सुख	८	नामदेव,पद५०-२।कबीर,पद६२-२। साखी १-१०,२६-७।रैदास,पद१७-२। दादू,पद १०-७-२,साखी ४-२८। प्राणनाथ,प्रकाश,प्रकरण११-८।
लहर तरंग	जीव	१	[illegible] भीखा,कवित्त१२-५।
धार	कर्मकाण्ड	१	कबीर,साखी१-१७
दरिया	जीव,मनसंसार,गुरु	७	कबीर,पद१-६,साखी२-५२।दादू,पद १६-११,साखी२-२७।हरिदास,पद १३-४-१,११७-१-२।नानक,परभाती विभास,सबद ६-५।

अप्रस्तुत	प्रस्तुत	कुल प्रयुक्त स्थलों की संख्या	प्रयुक्त स्थल
नदिया,नदी	भक्त,जीव,नौ द्वार,विषय इच्छा वासना,कुंडलिनी, वृत्ति,नाड़ी,दुख सुख, त्रिष्णा,नौ सौ नाड़ियां, मोह,प्राणविहीन काया	१४	नामदेव,पद ५३-४।कबीर,पद १-५, १२२-१३,साखी २-५४।हरिदास,पद २-१०-१,४४-१-२,४५-२-१,४६-२, १३०-३-२,१८७-२-१,२७६-३-१। रैदास,पद ४६-५।मीरा,जोगी और जो०शब्द१-४।अन्य,पद २३-८ ।
नदी को प्रवाह	मन,गोष्टिल ज्ञान	२	सुन्दरदास,३-२५-३,२२-१-४
हंकारा(तीव्र-नदी प्रवाह)	पुकारा	१	रैदास,पद ४६-५
सलिला	जीव,सुरति(चित्तवृत्ति)	२	कबीर,पद १८-५,साखी २-५१
गंगा	गुरु,कुंडलिनी,वाणी,साधु चित्तवृत्ति,नामप्रेम,मन ।	६	कबीर,पद १-५,१२२-३,साखी १६-१०। सुन्दरदास२२-२-३।हरिदास,पद११६-३-१,१५३-१-३ ।
गंग जमुन	इड़ा पिंगला,मन प्राण, जीवरासी(दो रस्सियां)	६	कबीर,साखी १०-७।रैदास,पद७४-७। दादू,पद१-६७-२।हरिदास,पद१२५-२-१, १४२-१-३।अन्य,पद १०६-३।
त्रिवेणी	इड़ा पिंगला सुषुम्ना, नाड़ियां, इन तीन नाड़ियों का संगम,त्रिकुटी	३	दादू,पद१-६६-२।हरिदास,पद४५-३-२।
सरवर	हरि,ग्यांन,सरीर,जीवात्मा संसार,मन,हृदय,आत्म,ब्रह्म, सुंनि,सत्संग,हरिगुरु ।	१५	नामदेव,पद ७-२,११६-६।कबीर,पद५-५, ७८-५,८८-५।दादू,पद८-३४-३,१०-१-१ १०-१-७,साखी २-५३,४-५५,४-५५,४-५८ ४-६६।नानक,बारा,सबद१२-१।सिरी राग,सबद १६-५ ।
सरि	अन्तःकरण,संतोष	२	कबीर,साखी १२-७।नानक,परभाती बिभास,सबद ६-४ ।
सरोवरघाट	गुरु शब्द	१	मीरा,गुरु और नाममहिमा शब्द५-१
सरवरि	सत्संग	१	नानक,सूही,सबद १-६

अप्रस्तुत	प्रस्तुत	कुल प्रयुक्त स्थलों की संख्या ।	प्रयुक्त स्थल
मेरु(पर्वत)	त्रिवलिलिण रूप,ताप,गोंदू, मियांणी(मयानो)।	४	हरिदास,पद १८८-१-३।दादू,पद ४-७-३।जम्भ,पद२७-२४,३४,पद६३-२०
सुम्निसिखर	ब्रह्मरन्ध्र	२	कबीर,साखी ६-१८,१०-२
वनस्पति			
फल	ब्रह्म(परसोतम),आत्मबोध, प्रेमा भक्ति,आत्मज्ञान,वृद्ध शरीर,तन ताप,वैराग, विषै,त्रिगुण भाव,केवल अधिष्ठान,कर्म,पाप पुन्नि, निवाणु,रामनामु,रूप ।	१८	कबीर,पद१०८-३,११२-६,१४६-१, साखी १३-१,१४-३०,१५-५,३१-२१, ३२-१०।दादू,पद१-८८-४,८-३४-२,६-६-२,साखी४-८८,४-२८२।हरिदास,पद ६६-३-१।नानक,बसंतु१-५,आसा१६-७, आसा,सबद८-१।मीरा,मिश्रित,शब्द२६।
कावंच फली	भक्त या रैदास	१	रैदास,पद ११३-१
गुलौचा	पाप	१	रैदास,पद ८५-५
ढोंढा(मदार का फल)	हक्यारथ जनम(व्यर्थ जन्म)	१	जम्भ,पद २५-१६
निबौला	करम	१	रैदास,पद ८५-५
फूल	सांसारिक विषय,गुण,भाव भक्ति,मिथ्यानुभव,शरीर,वसु वचन ।	६	कबीर,पद७५-५,१०८-३,११६-६,१४१-४। नानक,बसंतु,सबद१-५।सुन्दरदास१४-५-२।
पुहुपबास	आत्मकमल,तत या परगास	२	कबीर,पद११२-५।जम्भ,पद१०७-१३ ।
बास	गोविन्द,ब्रह्म,वरण अनूपम, जीव,वासना	५	कबीर,पद१४१-४,साखी६-१७,३२-१०। दादू,साखी४-२०६,१२-१६३।
कंवल	मन,जीवात्मा,साधु,ब्रह्म, शरीर,नकार या कुण्डल भक्त,गुरु मुख,हृदय,परमनिधि, आत्म,परब्रह्म,करतार,हरि, नारी मुख,प्राण,जीव ।	२३	कबीर,पद१०-१५,१८-४,३४-१,७५-१, ७८-५ साखी६-१६,६-१७,७६-३२,६-३६। सुन्दरदास१६-७-५।नानक,आसा,सबद १२-१,हरिदास-पद१२५-१-३,१३०-१-२, १४०-१-४,१८६-१-३।नामदेव,पद७४-१। दादू,साखी ४-६०,४-३०७,पद१०-१-५, १०-२-४,१३-१-६,१९-२१-३,साखी १२-१६३ ।

अप्रस्तुत	प्रस्तुत	कुलप्रयुक्त स्थलों का संख्या ।	प्रयुक्त स्थल
तरवर	ब्रह्म,शरीर,आत्मा,साधनमार्ग माया,हरि,तत,संसार,सांझ त्रिभुवण राया(राम)चेतन प्राण।	१६	कबीर,पद१०८-३,११२-३,११६-४, ११६-५,१४६-१,साखी१६-३६,३१-२१। नामदेव पद७-३,६७-४।नानक,गउड़ी, सबद६-६।हरिदास,सोरठि,पद७४-३, ११७-१-४,१४३-३-१-२,१५३-३-१। दादू,पद६-१६-३,६८-१६-६,साखी ३-१००,४-१११,४-११५।
तरु	संत	१	सुन्दरदास ६-२-६
द्रुम	साधारण मनुष्य	२	सुन्दरदास१-१४-३,२२-३-२
पेड़	ईश्वर,गुण,करम,माया	४	कबीर,पद ३८-५,१०८-३।नानक ,बसंतु सबद १-५ । प्राणनाथ,किरंतन,प्रकरण २८-३।
बिरछि	संसार,शरीर,अमरपुरुष, भक्तिमार्ग,अक्षर,पापपुन्य	८	कबीर,पद५५-४,११२-७,१५२-३,साखी १३-१,१४-३०।नानक,आसा,सबद १६-६।मीरा,विनती शब्द१२-२। हरिदास,पद ६०-१-३ ।
बिटप	विश्व या जग	२	सुन्दरदास ११-२३-१।दादू,साखी १२-१०७।
सूखा	नर	१	सुन्दरदास ६-२-५
रूखां	मगन,सहकार,परमात्मा में लीन,सत,गुणी,ज्ञानि (हरि) ।	४	कबीर,साखी २-५४,२८-१४।मीरा, मिश्रित शब्द२६-२।नानक,बसंतु,सबद १-४ ।
डाल	सूखा मन अभिमानु	१	नानक,बसंतु १-६
कंकड़ी	कंकाल,बड़ा	१	कबीर,पद १३१-३
बांस	मेरुदण्ड,अवनायक,बड़ा	१	कबीर,पद १३१-३

अप्रस्तुत	प्रस्तुत	कुल प्रयुक्त स्थलों की संख्या ।	प्रयुक्त स्थल
अफीम	आलम	१	सुन्दरदास, २६-३८-३
ब०क अंकुर	आत्मा	१	कबीर, पद ११६-५
घुन	देह, अकिंचन भक्त, उदास	३	कबीर, पद ६२-५, साखी २-५०, १२-६
खाखड़े(सूखे नदी)	बोध	१	प्राणनाथ, प्रकाश, प्रकरण ६-१२-२
बज्र	कमठ तथा वक्र देह	२	कबीर, पद११२-३। सुन्दरदास, २६-१३-५
धरा	कर्मकाण्ड, मेरुदण्ड, इन्द्रिय, प्रकृति, विकार, संसार, आत्मा, प्राण, वायु, ज्ञानेन्द्रियां, जीव, पशुपति, मानव, जिज्ञासु ।	१३	कबीर, पद११६-६, १२४-८, १५२-४ साखी १६-३६। दादू, पद१८-३४-४, साखी ४-२४५, ४-२५४। हरिदास १५३-१-३। सुन्दरदास १८-२३-३। नानक, बसंत सबद १-६, परभाती बि० सबद ७-७, सूही १-६, आसा सबद२०-१।
पालव	माया	१	दादू, साखी ८-७१
पीपर को पात	मन	१	सुन्दरदास ११-२०-१
बाज़ु (बीज)	बहु मानु	१	नानक, सिरी, सबद१३-७
बीज	कर्म, संचित पुण्य, नाम, पाप पुंज, फूल परैली पूजा, सत संतोष, मुक्ति, पुण्य पाप, जीव, वासना, आचरण	१२	कबीर, पद ६०-२, साखी १५-४१। नानक० सोरठि सबद २-२, आसा सलोक२०-२, गउड़ी सबद५-४। धर्म्म, पद ७१-१०, १०६-४। मीरा, गुरु और नाम०शब्द ३-७, उपदेश शब्द८-७, मेघमाला ७-२। दादू, साखी४-८८।
मूल	प्राण, ईश्वरभक्ति, मूलाधार चक्र, कारण, राम, अनादिकाल	६	कबीर, पद ११९-६, १२१-३। दादू, साखी ४-१११, ८-६४, ८-७१। सुन्दरदास११-२३-४
जड़ी (मूल)	भक्ति, विषयासक्ति, सुरति, सांसारिक वैभव ।	४	कबीर, पद २-१, साखी १३-१। दादू, साखी४-११५। हरिदास, पद१०३-३-२।

अप्रस्तुत	प्रस्तुत	कुल प्रयुक्त स्थलों की संख्या ।	प्रयुक्त स्थल
किरसी	बुधि,भेदी	२	कबीर,पद ६१-५।धम्म,पद २८-१७
कायर का खेत	मूर्ख नर, कर्महीनता,शरीर	३	कबीर, साखी २४-१५।धम्म पद २०-३। नानक,बसंत ७-३३ ।
खेत	शरीर,जीवन,नाम,स्वास्थ्य रामनाम	७	कबीर,पद ६१-१,साखी ६५-५४,पद २८-३,४१-७।नानक,सोरठि सबद २-१। मीरा,मेवबानी शब्द ७-२,उपदेश ८-७।
खेती	तत्वज्ञान,साधना,माया, रामनाम ।	४	हरिदास,पद १२८-१-१।दादू,साखी १२-४६।नामदेव,पद २-१।नानक,गउड़ी, सबद ५-४ ।
वायु			
आंधी	ज्ञान	१	कबीर,पद ५२-१
पवन	सांस,गुरमुख	२	कबीर,पद ११२-६।धम्म,पद २८-२२
पुरवा ँ झकोरे (पवन का झोंका)	काल	२	धम्म,पद २३-२,११
पौन का फेर	मन	१	सुन्दरदास ११-२०-३
त्रिविधि पवन	त्रिगुण	१	हरिदास,पद १३०-२-१
मरुत	अंश	१	कबीर,साखी ४-२
वायु मधुरादि	मन	१	सुन्दरदास ११-१३-४
वायु	वायु अंग	१	सुन्दरदास २२-१८-५
समय			
अंधकार	संदेह,अज्ञान	२	सुन्दरदास,२२-१६-६।कबीर,पद ७२-५
दिन	जन्म	१	प्राणनाथ,कलस,प्रकरण १०-१
बादर	जीवन	१	हरिदास,पद ६०-३-२
ओस	जीवन	१	कबीर,साखी १५-३८

अप्रस्तुत	प्रस्तुत	कुल प्रयुक्त स्थलों की संख्या ।	प्रयुक्त स्थल
पुतरी	मलिक	१	कबीर,साखी ७-२
पग	साच	१	दादू,साखी ४-३१६
चारों चांव	काम,क्रोध,लोभ,मोहादि	१	सुन्दरदास २१-१३-३
पटल(आंख का जाला)	अज्ञान	१	सुन्दरदास,२२-१८-४
पिंड	धर्म कुरबे,बोध	२	प्राणनाथ, किरंतन,प्रकरण ३-१। जम्भ,पद४६-३।
मस्तकि	अहंकार	१	दादू,साखी ४-२५२
मन	मुंदरा	१	जम्भ,पद २७-६२
मूठी	चित	१	नामदेव, पद ७१-६
स्वासा	सुमिरन	१	नामदेव,पद ३७-४

आयुध या अस्त्र शस्त्र

अप्रस्तुत	प्रस्तुत	कुल प्रयुक्त स्थलों की संख्या ।	प्रयुक्त स्थल
असि	बचन	१	सुन्दरदास १४-५-३
अंकुश	गुरु ज्ञान	२	सुन्दरदास २१-१३-६।कबीर,साखी २६-२
आयुध	सार(तत्व),गुण	२	हरिदास,पद २-४-३,१९७-१-२
कमान	सुरति,सुबुधि,काया,करही	४	कबीर,पद ४-४,२५-३,साखी २६-२०। सुन्दरदास,पद २१-६-१ ।
कवच	ब्रह्म ज्ञान	१	सुन्दरदास,पद २१-७-१
बाण	पीर,गुरज्ञान,ज्ञान,माया	७	कबीर,पद ४-५,४६-५,साखी १४-३५। दादू,साखी १-८५,१०६ १०-७४। हरिदास,पद २३-१-२,४५-१-३ ।
खांडे की धार	भक्ति	१	कबीर,साखी १४-१६
गोली	ज्ञान	१	हरिदास,पद १५९-१-३
गंडासी	ज्ञान	१	नामदेव,पद ८७-३

अप्रस्तुत	प्रस्तुत	कुल प्रयुक्त स्थलों की संख्या ।	प्रयुक्त स्थल
चक्र कैसो फेर	मन	१	सुन्दरदास ११-२०-४
तरगस	तन	१	कबीर, पद ४-४
तीर	भगति, तिसना, प्राण सांस, सबद	४	कबीर, पद ८-१, २५-४, ११७-४। हरिदास पद ११३-१-३ ।
त्रिशूल	ध्यान, बीज	२	कबीर, पद १२१-४, १२८-६
धजा	मन, ध्रुव, ऊर्ध्व पवन	३	कबीर, साखी २६-७। मीरा, मैकमानी शब्द ५-१२, मिश्रित ११-२।
ध्वजा की उड़ान	मन	१	सुन्दरदास ११-२०-२
नीसाणु	सबदु	१	नानक, सिरी रागु, सबद २२-१४
पनच	सगुण साधना	१	कबीर, पद १२४-५
बांण	ग्यांन, उपदेश, पंच, तत, सबद, स्वास, राम, काल, बिरह, कटाक्ष, प्रेम ।	१३	कबीर, पद १२८-४ साखी १-१२, १-२३, २६-२०। दादू, साखी १-२७, १२-१८, पद ८-३७-१, १०-५-१७, १७-४-४। सुन्दरदास ६-१-६, २१-६-१। हरिदास पद १३७-१-२। प्राणनाथ, किरंतन, प्रकरण १०-१ ।
सर	बिरह, उपदेश	३	कबीर, पद १०६-८, साखी २-५५। दादू, पद ८-६-८।
भड़ाका	मरण, करम	२	कबीर, साखी १४-७। हरिदास, पद १०६-२-२
मुगदर	गंभीर	१	कबीर, पद ४-५
सनाह	ग्यान	१	कबीर, पद २५-३
सूल	बिरह, सुंदरि, संसार, सुख	३	दादू पद २-५-५। कबीर, साखी ३०-१७। सुन्दरदास २८-१५-१ ।

अप्रस्तुत	प्रयुक्त	कुल प्रयुक्त स्थलों की संख्या ।	प्रयुक्त स्थल
कक			
अमलुगोला(कूठा गोला)	माया	१	नानक,सिरी राग,सबद५-१
कण	सत्कर्म	१	अग्र,पद २८-२०
कपाट	शरीर	१	दादू,पद ६-५-५
कांची	घृणा	१	कबीर,साखी २२-५
खीर	हरि नांउ	१	कबीर,साखी २७-१
खरचु(पाथेय)	चांगिआईआ(शुभकार्य)	१	नानक,सोरठि,सबद२-१०
गांकी	ग्यांन	१	दादू,साखी४-३२२
गुड़	(गुरु का)सबद,ग्यान,राम मनही,आत्मानुभूति	६	कबीर,पद५१-३,५६-३।नामदेव,पद३७-४ ८७-१।हरिदास,पद१५६-१-४।दादू, साखी६-३।
घृत या घीव	तत्व,रांमरस,पीव,संतोष	६	कबीर,साखी २२-५।दादू,साखी १-२६, ३१,३२,४-२७६।नानक,परमाती बिभास सबद ७-८।
सनेह(घी)	सुरति बत्ती	१	यारी,मंगल,शब्द१३-१
चबैना	जगत(संसार)	१	कबीर,साखी १६-१६
टिपके(कटाई की बूंद)	कपट	१	कबीर,साखी २२-५
तेल	प्रेमभक्ति,जोति,प्रेम,सांच, सील,सत,सने सुषमनी, प्राण,मारुत,सातम,स्नेह अंजना परमात्म ।	१२	कबीर,साखी १-१५,२-२२,२-३०,३-१६। रैदास,पद ८१-६।दादू,पद१८-१-२, साखी१-३७।सुन्दरदास३-२-४,३-१७-८, २६-३१-१,२६-३२-१।अग्र,पद१०७-१३।
दूध	अनुराग,माखन सुरे(सुरेवक्त) सबद,उपदेश,प्रांण,मन,राम प्रेम ।	९	कबीर,साखी २२-५,२६-२२।दादू,साखी १-२६,१-३१,४-२७६,२८३,३२२।नानक परमातिबिभास,सबद७-८सूहा सबद१-२

अप्रस्तुत	प्रस्तुत	कुल प्रयुक्त स्थलों की संख्या ।	प्रयुक्त स्थल
भठी	दया या धर्मभाव, ध्यान	१	कबीर, पद १३१-७
पोसति	देह	१	सुन्दरदास, पद२६-३२-३
प्रसाद	दया	१	दादू, साखी४-२४५
बरे(बड़े)	मनोविकार	१	कबीर, पद ११४-१
विजया(भांग)	बोध	१	मीरा, साखी१-२
भांग	हरि भउ	१	नानक, तिलंग, सबद२-१
मिठाई	हरि का नाम	१	कबीर, पद २२-६।
मीठी खांड	माया	१	कबीर, साखी ३१-७
महुवा	ध्यान	१	कबीर, पद ५६-३
मधु(मदिरा)	माइआ(माया), रामरस	२	नानक, आसा, सबद५-७।कबीर, पद५१-७
मांडु	ममता, मन बुद्धि या चंचल बुद्धियां ।	२	कबीर, पद १२०-२, १२४-२
महारसु	भक्तिरस, नाम, अमृतरस	२	कबीर, पद ५६-५, १२२-१४
रस	रामभक्ति, भक्तिरस, रांम, आत्मानन्द, आतम, विषयरस	८	कबीर, पद ५१-२, ५६-२।दादू, पद१-५५-१ ५६-१०, १०-१-५।साखी४-३०५।सुन्दरदास पद २६-३२-३।हरिदास, पद२-४-६।
रसायन	रामभक्ति, राम, भक्तिरस	५	कबीर, पद६-३, ७८-५, १०६-३, साखी १४-३३।दादू, साखी२-६६ ।
शकरकंदु(शक्कर)	माइआ(माया)	१	नानक, गउड़ी, सबद१६-५।
सुरा	निकृष्ट करनी	२	कबीर, साखी३३-१३।नानक, सिरीरागु, सबद५-६.।
हाड़ी	शंका, शक्यावस्था	१	कबीर, पद १३१-७
हिरदा	हेम	१	रैदास, पद ७६=४

अप्रस्तुत	प्रस्तुत	कुल प्रयुक्त स्थलों की संख्या ।	प्रयुक्त स्थल
गुदरी	ध्यान,अगम ज्ञान	२	कबीर,साखी १५-८५।मीरा,साखी४-१
घूंघट	माया का आवरण	१	दादू,पद ६६-७-३
चरखुला	चित्त	१	कबीर,पद ११०-२
चरखा को ख्याल	मन	१	सुन्दरदास,पद १९-२०-५
(दोउ)चमरख	इड़ापिंगला,दो गुण या प्रवृत्ति निवृत्ति के मार्ग	१	कबीर,पद १३६-३
चुनरी	निरगुन	१	मारी,भजन,शब्द६-१
चोला	प्रेम,शरीर,काम	५	कबीर,पद१७-३,५०-४।नानक,तिलंग, सबद३-८,सूही ४-३,बसंत८-५
चौंगी	सींगी	१	कबीर,पद १३३-५
चौक(चंदोवा)	सतगुरु	१	कबीर,साखी१-१८
झूठा	झूठ,परनिंदा	२	नानक,सिरीराग,सबद४-१,सिरीराग की वार६-१
झोगूंटो(योगपट्ट)	मन	१	[illegible],पद५०-१
ठाठरि	स्थिरबुद्धि	१	हरिदास,पद ५०-६-१
डोरा या डोरी	ध्यान,शब्द,प्रेम,स्वांस,मन (ज्ञानेन्द्रिय चारों अंत:करण)	५	कबीर,पद १४६-७।दादू,साखी१०-६३ मीरा साखी८-२।प्राणनाथ,प्रकाश, प्रकरण५-३६-२।हरिदास,पद३३-२-१।
तार(सूत)	शब्द,मन	२	कबीर,पद १५०-४,साखी२६-२३।
तागा	नाम,ध्यान या सुमिरण	२	कबीर,पद १३६-४।मीरा,मिश्रित शब्द २०-३ ।
ताना	काया	१	कबीर,पद १५०-२
धागा	प्रेम,भक्ति,ममता,प्रभाव,चित्त वृत्ति ।		नामदेव,पद १८-५।रैदास,पद४०-८। हरिदास,पद५०-३-९,११३-३-१।दादू पद१८-९-२,साखी७-४० ।

अप्रस्तुत	प्रस्तुत	कुल प्रयुक्त स्थलों की संख्या।	प्रयुक्त स्थल
धोता	मनु,ध्यान	२	नानक,आसा,सबद२०-१।दादू,साखी ४-२४५।
नली	मनसा(मानसिकबुद्धि),बंद सुरुज,नांव	३	कबीर,पद१११-६,१५०-३।दादू,पद १८-१-४ ।
नीठो	सिवाहो कदा करणी	१	नानक,सिरीराग,सबद७-७०।
नैत(रेशमीवस्त्र)	अन्तर या हृदय	१	हरिदास,पद१०६-३-१
पट	हृदय,अज्ञान,ब्रह्म,प्रेम	४	दादू,पद१६-७-३,साखी१२-७-६।रैदास पद ४६-३।नामदेव,८८-२ ।
पटल(आवरण)	सम्पत्ति विपत्ति	१	रैदास,पद ३०-५
पाट	मनोविकार	१	कबीर,पद १११-४
पाग	प्रेम	१	दादू,पद १८-१-२
पूरी	शरीर	१	कबीर,पद १५०-४
पुरिया	शरीर	२	कबीर,पद १११-३,साखी १५-४
पछेवरा(चदरा)	शरीर	१	कबीर,पद ५३-६
पछल(नाड़ी)	आधार	१	कबीर,पद १११-५
पहिरणु	पैरविबाबु(प्रभु चरणों का ध्यान)	१	नानक,सिरी राग,सबद७-७
परदा	अज्ञान,मरण	३	दादू,साखी१-४२,१-७७,३-६६
फंदे	विषय वासना	१	कबीर,साखी ३१-१
माठो(उत्कृष्टवस्त्र) कर्म		१	कबीर,पद १११-१
मखतूल(रेशम)	राम	१	रैदास,पद २६-५
मजीठ	नाम का नाम,बीच रंगरवै	३	नानक,तिलंग,सबद,३-६,सूहो४-३। अन्य,पद २५-२०।
मुछड़ा(वस्त्र,चमक	[illegible](वस्त्र)	१	नानक,वार माफ का सलोक१०-२

अप्रस्तुत	प्रस्तुत	कुल प्रयुक्त स्थलों की संख्या।	प्रयुक्त स्थल
रहटा	मन	१	कबीर,पद १३६-१
रैंणा(गऊ का थाम)	सांस	१	कबीर,साखी १५-६६
राछ	ध्यान	१	दादू,पद १८-१-३
रता पैनणु (लाल पोशाक)	मधुरता	१	नानक,सिरीराग,सबद७-६
लोइ(दुशाला)	सन्त जन	१	कबीर,साखी २४-१७
सुपेदी(सफेदवस्त्र)	सतु दानु	१	नानक,सिरी रागु,सबद७-६
सुई	सुरति	१	नामदेव,पद १८-५
सूत	ब्रह्म,भक्ति,सप्तधातु,बुद्धि	४	रैदास,पद४६-३। कबीर,पद११०-१। दादू पद१८-१-६
साफी(कपड़े का छन्ना)	सहज सुभाव	१	मीरा,साखी २-१
धोति(चादर)	ममता	१	धन्ना,पद २७-२४
सौंड	चिंता	१	हरिदास,पद २-४-१

शृंगार एवं सज्जा सामग्री

अप्रस्तुत	प्रस्तुत	कुल प्रयुक्त स्थलों की संख्या।	प्रयुक्त स्थल
अंजन	ज्ञान,ज्ञानोपदेश	०२	दादू,पद ८-२-७,साखी १-६
काजर	कुमति	१	कबीर,पद १७-५
आरसी की ऊपरी ओर	रजोगुण बुद्धि	१	सुन्दरदास,पद २३-१३-३
आरसी के दूजी ओर।	सत्वगुण बुद्धि	१	सुन्दरदास, २३-१३-५
हरवा(हार)	प्रभु	१	नानक,गूजरी,सबद१-९
(कलंक) दाग	पंचविकार और तीन गुण	१	मीरा,मिश्रित१६-५
दाग	प्रेम प्रीति	१	मीरा,मिश्रित १६-८

[illegible]

अप्रस्तुत	प्रस्तुत	कुल प्रयुक्त स्थलों का संख्या ।	प्रयुक्त स्थल
कुंगु (कुमकुम या केसर)	करणी	१	नानक,गुजरी,सबद ८-२
कमरबंद	संतोष	१	नानक,सिरोरागु,सबद ७-८
कंगन	सील संतोस	१	कबीर,पद१७-४
कटिक(कंकण)	जीव	१	रैदास,पद ३३-२
कस्तूरी	राम	१	कबीर,साखी ७-१
कुंडल	बोध	१	मीरा,कवित १२-३
घनसार	ज्ञानप्रकास	१	सुन्दरदास,पद २३-२-३
चंदनबास	परमार्थ	१	हरिदास,पद १०३-३-१
चन्दनठोगा (चन्दन का टुकड़ा)	साधु	१	नानक,गुजरी,सबद१-१
धूप	अहंकार	१	रैदास,पद ८०-३
तिलक	गुर	१	दादू,साखी४-२४५
दरपन	हृदय,चित,मन	४	कबीर,पद७२-७,साखी १-८।दादू साखी१-६२,१० -८२
परमल	प्रीति,गुरू	२	हरिदास,पद १४०-२-२।नानक,परभाती बिभास,सबद६-७
धुंवो (धूम्र)	पाप	१	हरिदास,पद आरती १८४-२-२
पुहुप	जीवात्मा,इन्द्रियनिग्रह	२	कबीर,पद५७-५।दादू,साखी ८-२६
माला	मन,जाप,स्वासोस्वास,सुरति व प्रेम।	६	दादू,साखी १-६६,१-६८,४-२४५।व सुन्दरदास२६-२१-२।हरिदास,आरती १८४-१-३। रैदास, पद ८०४-४
मोतिन की माल करि		१	कबीर,साखी २८-५
सिंगार	[illegible]	१	कबीर,पद १७-३

अप्रस्तुत	प्रस्तुत	कुल प्रयुक्त स्थलों की संख्या ।	प्रयुक्त स्थल
सोने	ब्रह्म	१	कबीर,पद १८-६
सेंदुर	जोति	१	मीरां,मिश्रित १६-१०
रोग, औषधियां			
औषध	उपदेश,परमतत्व,ज्ञान, रामनाम ।	४	सुन्दरदास,पद२-८-७।हरिदास,५०-१-३, १०३-१-४,दादू,साखी २-६२ ।
अउखध मंत्र मूलु	हरि	१	नानक,गउड़ी,सबद१६-१
दारू(दवा)	ब्रह्म,वैद्य	२	दादू,साखी३-११।सुन्दरदास२६-३२-१
वैद औषधि	परमात्मा	१	नामदेव,पद ६६-५
व्याधि	दरिद्रता,विकार,विषय मौंक	४	कबीर,पद६५-४।दादू,साखी१२-१२४,पद ८-२७-३।रैदास,पद ७०-४।
दैनिक उपयोग की वस्तुएं			
पात्रविशेष--			
कलश	देह,सिर,प्रेम,काया,कुंभक पूरक ।	५	हरिदास,पद ६०-२-१,१७६-२-१,१८४-२-१। दादू,साखी ४-२४५।मीरां,मिश्रित१६-८ ।
कनक कलश	सहस्रदल कमल,सुखसुरति,अंबेकुल	३	दादू,पद ७-२३-४। कबीर,पद १३३-५,साखी ३३-७ ।
पाका कलश	पूर्णज्ञानी	१	कबीर,साखी १२-१
कटोरा	काया	१	दादू,साखी४-२८३
कुंभ	काया,ईश्वर,नर	३	हरिदास,पद १०२-२-१।यारी,भजन शब्द १०-२।सुन्दरदास २-२१-३ ।
कुंभरा	ब्रह्मा	१	कबीर,पद ६५-३
कांचा कुंभ	तन,अविद्या अविद्या,शरीर	५	कबीर,पद६८-४,साखी१५-५६।अन्य,पद५५-८। रैदास,पद ८५-८।नामदेव,पद ७५-४ ।
काचे करवै	मानव शरीर	२	कबीर,पद ७०-४।हरिदास,पद १२८-३-१
कासइ(प्याला)	नर	१	नानक,तिलंग,सबद २-३

अप्रस्तुत	प्रस्तुत	कुल प्रयुक्त स्थलों की संख्या।	प्रयुक्त स्थल
कुंभि(घड़ा)	मै(मय)	१	नानक,आसा,सलोकु२०-५
खलड़ी (मंद रखने का पात्र)	धातु	१	नानक,तिलंग,सबद २-१
गागरि	जिसना,देह,रामनाम,काया	५	कबीर,पद ४४-३,५०-३।नानक,आसा,सबद २२-१।नामदेव,२६-५। दादू,पद १३-३-६।
घट	शरीर	१	रैदास,पद ३६-२
घड़ा	हरि सुमिरन,सहस्रार या हृदय कमल,भक्तिहीन प्राणी।	४	कबीर,साखी३-२३,पद १२२-७,धम्म,पद४५-३ ५५-४।
चीपी (कटोरा)	ध्यान	१	मीरा,साखी १८-१
तवा	तमोगुन बुद्धी	१	सुन्दरदास,पद २३-१३-१
दोहनि	नैन	१	यारी,भजन,शब्द १२-१
पंखुड़िया	कुलनाथ या मायानाथ,इड़ा पिंगला,स्वाधिष्ठान,मणि-पुर चक्र।	१	कबीर,पद १३१-७
पियाला	भजन,भगवत्प्रेम,नाम,प्रीति या प्रेम	६	कबीर,पद १३३-७।रैदास,पद७६-१।मीरा, साखी२-२।दादू,पद १-५६-८,७-३-७,६-२६-३ साखी ४-२२१, ८-७७ ।हरिदास६७-२-२ ।
पात्र	भक्ति	१	दादू,साखी ४-२४५-५
बासन	जीव,आत्मा या मन,देह, संसार।	५	मीरा,कवित्त १२-१।दादू,साखी४-३०४, १०-११७। धम्म,पद १-६ ।
भंजन या भाजन	लोक,जीवजन्तु	२	दादू,साखी४-३२२।सुन्दरदास१५-१-१
भांड या भांडे	सुरमति,शरीर,पाखंडी कथा वाचक।	४	कबीर,पद ५२-४,७६-४।नानक,सूही सबद-५-१। हरिदास १३२-१-४ ।

अप्रस्तुत	प्रस्तुत	कुल प्रयुक्त स्थलों की संख्या ।	प्रयुक्त स्थल
मटुकी	तनु	१	कबीर,पद १२७-३
शराब	देह	१	सुन्दरदास,पद २६-३१-१
लिखने के उपकरण			
कागद	धन जोबन,काइबा या काया,करणी,हृदयकमल सुन्न ।	५	कबीर,पद ७४-४।नानक,बनासरी,सबद ७-१,मारू,सबद ३-१।रैदास,पद ७३-८। यारी,कवित्त १-३ ।
कलम	मानिक	१	यारी,कवित्त १-३
मसि	मन,मति	१	कबीर,साखी २-२१।रैदास,पद ७३-८
मसवाणी(दवात)	मनु	१	नानक,मारू,सबद३-१
लेखनी	सुरति,करंक	२	रैदास,पद ७३-५।कबीर,साखी २-२१
व्यवहार में आने वाली वस्तुएं			
अहरणि(निहाई)	अचंचल मनसा	१	जम्भ,पद ६६-५
अधारीसाहू (धौंकनी)	पवंण	१	जम्भ,पद ६६-७
आक	काटा मन(विरक्तमन)	१	कबीर,साखी२६-२२
ईंटी	मनु	१	नानक,सूही,सबद१-४
कल	ममता,पंचविकार(कामादि)	२	हरिदास,पद १५६-१-३।कबीर,पद५१-४
कतनी	तप,काया	२	कबीर,साखी१-३०।दादू,पद१-५६-३
कमंडल	काया	१	कबीर,साखी१२-३
काच	विषय,माया मोह,संसार	३	दादू,पद २०-६-३।हरिदास,पद१६१-१-४। नानक,मारू,पउडी४-१
कसपटी	धनु	१	नानक,सिरीराग,सबद२१-२
कुठार	करम	१	हरिदास,पद १५०-२

अप्रस्तुत	प्रस्तुत	कुल प्रयुक्त स्थलों की संख्या ।	प्रयुक्त स्थल
कुदाली	सबद,सुरति	१	रैदास,पद ७१-७
कुहाड़ा	करम	२	दादू,साखी १२-५६। कबीर,साखी १५-६०
कुलफ (ताला)	कुकरम	१	जम्भ,पद ६७-१
कुंजी	प्रान,हरि,कृपा	३	कबीर,पद ८०-४। मीरा,कुंडलिया६-१। प्राणनाथ,किरंतन,प्रकरण६७-६।
ताला कुंजी	उपदेश	१	दादू,साखि १-५
कालबुत	नश्वर शरीर	१	प्राणनाथ,प्रकाश,प्रकरण ४,६-१
कोथली	रस नीरस	१	कबीर,साखी३१-१५
कोल्हू	ध्यान,जोग	२	नामदेव,पद ८७-३। मीरा,उपदेश,शब्द१६-५
खपर	छल या सत्याचरण, बाह्याडम्बर	२	कबीर,पद १४२-७। कबीर,साखी२-५
खड़(खरपतवार)	दुष्कर्म	१	जम्भ,पद २८-२०
खरसांन	विरह,ध्यान	२	कबीर,साखी १७-८। जम्भ,पद१-१७
गुरु की घाटि	ज्ञान का अम्बार	१	रैदास,पद ७३-२
गाँठि(बेला)	दुःख,गुण	१	कबीर,पद ११६-५
गोटी	खिड़िया प्रभु	१	मीरा,मिश्रित १५-४
घनिया(घानी)	विष	१	मीरा,उपदेश,शब्द१६-५
घास की टाटी	तनु	१	रैदास,पद १५-३
घोड़े पाखर सुभे घातकि ।	कलकालि कुफड़ा तेरी बाट	१	नानक,सिरीराग,शब्द ७-११
चंवर	निरंजन देव	१	हरिदास,पद १८४-३-१
चाबुक	चित,प्रेम	२	कबीर,पद ४-३,साखी १५-३८
चक्कु(चाक)	करणी	१	नानक,सलोक १०८१०१६०१० रामकलीसबद७-५
चाकी	संसार	२	कबीर,साखी १२-१,१६-५

अप्रस्तुत	प्रस्तुत	कुल प्रयुक्त स्थलों की संख्या।	प्रयुक्त स्थल
चौकी	अन्तःकरण, चित्त	२	हरिदास, पद ५१-२-१, १८४-१-२
चौक	अन्तःकरण चतुष्टय इंगला पिंगला।	२	कबीर, पद १०६-४। मीरा मिश्रित १६-७
चाम	बाह्याचार	१	कबीर, साखी १८-६
चूल्हा	चित्त, कष्ट पड़ना	२	कबीर, पद ११०-८, साखी १८-८
छोलना	सबद	१	कबीर, साखी १-८
छेंक	बाधाएं	१	कबीर, साखी १५-२७
जनेऊ	शिवानु, ब्रह्म	२	नानक, आसा, सबद २०-१। मीरा, साखी ४-२
जाल	माया, विषु, रैनि, कुंभीपास शरीर, लोभ।	६	प्राणनाथ, प्रकाश, प्रकरण २०-२५। नानक, नाक, सबद ३-५, २-४। बम्म, पद २६-२८। कबीर, पद १३७-४।
जेवरी	कर्म	१	कबीर, साखी १५-२५
जीभ	सिकली	१	कबीर, पद ८१-३
झोली	पशु, किया या नामा, भावना, अपराध।	४	नानक, रामकली, सबद ४-२। कबीर, पद १४२-७ साखी २-५। मीरा, साखि १२-१।
टोप	नम्रता, विवेक, मनी (अहंकार) सुमिरण।	४	कबीर, पद २५-३। सुन्दरदास २१-७-२। हरिदास पद ४०-१-३, १६७-१-२।
टाटी (टोपी)	तप	१	मीरा, साखी ६-१
डंडासा (डंडा)	मनु	१	नानक, गउड़ी, सबद १५-२
डोंगरि	माला	१	कबीर, साखी २५-२१
डोंकुली	सुरति	१	कबीर, साखी १२-६
ढलवी (जप की [illegible] वासिहु माखी माला)		१	नानक, माम, सलोकु १०-४
तखत	हृदय	१	दादू, पद २-१५-५
ठाकुर	ज्ञान, मनु, प्रभु	[illegible]	हरिदास, पद ४३-२-१। नानक, सूही ६-७, ६-५

अप्रस्तुत	प्रस्तुत	कुल प्रयुक्त स्थलों की संख्या ।	प्रयुक्त स्थल
तुला	चित्त,रामनाम	२	नानक,सूही ६-५।नामदेव,पद १६-१
तापनैं	प्रेम,शब्द,मन	३	कबीर,पद ८१-४।दादू,साखी १-१२७,१२७
तोलु(बटखरा)	प्रभु	१	नानक,सूहा,सबद ६-७
छाबा(पलड़ा)	घट(हृदय)	१	नानक,मारू,सबद ११-७
डंडो(तराजू की डंडी) ।	डंडीजिह्वा	१	नानक,मारू,सबद ११-७
तंबू	नामनाम	१	मीरा,भेदबानो,शब्द ५-७
छुरी	ज्ञान	१	कबीर,साखी १५-३८
तुमा(तुंबा)	तन मन	१	मीरा,साखी७-१
दीप	ब्रह्मज्ञान,ज्ञान,विवेक	३	कबीर,पद १३०-६।यारी,मकल,शब्द६-६। रैदास,पद २७-४
दीपक	ज्ञान,शरीर,माया,ब्रह्म,उपदेश राम,देह,प्रभु,विषयवासना गुरु,मनुष्य,ज्ञान प्रकाश ।	१७	कबीर,पद ७२-५,साखी १-१५,१-२६,२-३०। नामदेव,पद १०७-५।दादू,पद ८-२७-६,साखी १-४,४-१८०,८-५६,१२-६८,१२-११०।रैदास ५०-६।धरनीदास,पद १८४-१-३।नानक,वाणी १८-८,नानक सलोक१-१।सुन्दरदास३-१७-८, २३-२-२ ।
दीया	ज्ञान,शरीर,आत्मा	३	दादू,साखी १-३६।रैदास,पद८०-५,८१-६।
दीवा	कलाएं,तन या शरीर,ज्ञान, परमात्मा,चन्द्र सूर्य।	६	कबीर,साखी १-३,२-२२,३३-१६।नानक,रामकली सबद ७-३,सूही,सलोक ८-१।रैदास,पद२०-५।
दीपक,ज्योति	माया,प्राण,दुःख,चेतन	५	कबीर,साखी १-२५,१६-२२,रमैनी १५-२। सुन्दरदास२६-३१-२ ।
धंध	पवन	१	मीरासाखी८-१
दोपहर	आकाश बाड़ी	१	कबीर,साखी १६-५

अप्रस्तुत	प्रस्तुत	कुल प्रयुक्त स्थलों की संख्या ।	प्रयुक्त स्थल
धन	हरि का नाम	१	कबीर,पद २२-१
पिंजरु	सु(राम),शरीर,तन,मोह प्रेम,विषयवासना	१०	कबीर,पद६-४।दादू,पद४-१-७,७-५-६, १६-२-७,साखी२-३८,२-८२,३-१२४।नामदेव ७५-१।सुन्दरदास२-१८-१।नानक,मारु आसट० २-२४ ।
पछीता	प्रेम,गुरु,साधनमार्ग	२	कबीर,पद २५-५,१३४-८
पांवड़े	सहज	१	कबीर,पद ८१-२
पठांन	सहज	१	कबीर,पद ४-३
पोलनहारो	सुखमन(सुषुम्ना)	१	कबीर,पद ५९-६
पासि या पास	कासि,सरसु	२	दादू,पद७-२-७।नानक,वासा,सलोकु२०-५
फाही(पाश)	वही	१	नानक,मारु,सबद३-५
फाहुलि(बड़ाकं)	अगम अचिंत	१	मीरा,साखी १८-१
बटुवा	आनंद	१	मीरा,साखी१२-१
बाघम्बर	सुन्न	१	मीरा,साखी१६-२
बिभूति	ध्यान	१	कबीर,पद १४२-७
बिछोवना	ब्रह्मविचार	१	कबीर,पद १२७-१
बंधी	करम	१	कबीर,पद १५२-८
बटोला	काम क्रोध	१	कबीर,पद ५६-६
भिछुका	गुरु,माया या भ्रम	२	कबीर,पद ६१-५।नामदेव,पद ७२-६
बाती	जीव,प्राण,अंत:करण मन,साधु,अहंकार ।	८	कबीर,साखी२-२२,३-१६।सुन्दरदास३-२-४, २६-३१-१।रैदास,पद २०-५,२५-७,४०-६, ८३-६ ।
बसोठे(दूरणा)	कामक्रोध	१	नानक,बसंत,सबद७-७
बगुला(पहरी)	कर्म	१	कबीर,साखी १६-२०

अप्रस्तुत	प्रस्तुत	कुल प्रयुक्त स्थलों की संख्या ।	प्रयुक्त स्थल
भाठी	चौदह भुवन, भौ, गगन, स्वानुभूति, भाव भाठि गगनमंडल(वृत्ति की भट्टी)	६	कबीर,पद ५१-५,५६-३,१३३-५।रैदास,पद ७६-५।दादू,पद १-५६-३।हरिदास,पद १५६-२-१।
भारणु(भट्टा)	काइआ	१	नानक,मारू सबद३-७
मुड़ा	मांच(सत्य)रामरोष,नाम	३	कबीर,पद १४२-५।हरिदास,पद४०-१-४। मीरा,साखी १५-२ ।
मलाह	बांधपुर	१	मीरा,मेवबानी,शब्द५-३-१
मसकला(सिकलीगरों का औजार)	ग्यान	१	कबीर,साखी १-८
माणिक मोति	हृदय प्रदेश	१	हरिदास,पद ५१-१-१
मोट	ममता	१	सुन्दरदास २-६-२
मुदरा	मांच	१	दादू,साखी १२-६२
मुदर	मन	१	कबीर,पद ४-२
मांकी	सुन्नशिखर	१	मीरा,मिश्रित १६-७
मृगछाला	त्रिकुटी	१	मीरा,साखी १२-२
रहट	बकुआरा	१	कबीर,साखी २-४८।
रहट की माल	मन,स्वासप्रस्वास,कर	३	सुन्दरदास,११-२०-५।कबीर,साखी १६-३३। नानक,बसंत सबद ७-५ ।
रंङणि(रंग माठी मिट्टी)	काइआ	१	नानक,सिरी,सबद३-६
रजु	जीव	१	रैदास,पद १६-३
लेज(रस्सी)	लौ, जीवन	२	कबीर,साखी १२-६।नाम
लगाम	लौ,सुरति,ज्यों	३	कबीर,पद ४-३,८१- ३
लालन	काया	१	कबीर,पद ५१-३

अप्रस्तुत	प्रस्तुत	कुल प्रयुक्त स्थलों की संख्या ।	प्रयुक्त स्थल
बालणि (ईंधन)	काम क्रोध	१	हरिदास,पद १५६-१-४
वलरु (सेवा)	हरिजसु,साचा,नाम,सचु नामु	४	नानक,सिरीराग,सबद२३-५,मारू१०-२, गउड़ी६-६,सोरठि२-६।
सहज	धन	१	कबीर,पद ६८-५
संनो (संसो)	चित	१	नानक,मारू,सबद ३-८
संपटु (डिब्बा)	मन	१	नानक,सूही,सबद१-६
सुतरीअ पो (ऊँट घोड़े पर का डंडा)	अनहद	१	मीरा,मिश्रित१६-२
सेज	हृदय,सबै,सुहाग,सुख	५	दादू,पद२-४-१।हरिदास,पद२-४-२,५९-४-२ १२६-१-३।सुन्दरदास२३-३१-१६
संजोग (सामग्रियां)	सकल	१	कबीर,साखी १४-२७
सालग्राम	हरि	१	नानक,बसंत,सबद७-१
सिंघासण	आत्म कंवल	१	हरिदास,पद १८४-१-२
सिहणी	साखी	१	नानक,रामकली,सबद४-१
सांकर	माया	१	कबीर,साखी ३१-६
चोटा बुंगि	दुष्कर्म	१	हरिदास,पद १७८-२-२
चचोडी	नाम	१	अग्र,पद ६६-५
हथिंठा (सोंगुर)	आकर्षक वेशभूषा	१	कबीर,साखी २५-३
वाहन			
महलिका (गाड़ी)	देह	१	नानक,रामकली,सबद११-५
जहाज	राम,नांव का नाम,ज्ञान	३	कबीर,पद६७-२।हरिदास,पद१३३-१-२ सुन्दरदास२२-७-२ ।
डूंगर	पंच विकार	१	हरिदास,पद २-१०-१

अप्रस्तुत	प्रस्तुत	कुल प्रयुक्त स्थलों की संख्या ।	प्रयुक्त स्थल
नाव या नौका	ज्ञान, रामनाम, हरि, नरदेही	५	दादू, साखी १-१६, २-२७, दादूपद १-१६-२ । नामदेव, पद ३४-३। मीरा, उपदेश शब्द १६-७।
पोत	भ्रम या अज्ञान, प्रेम	२	सुन्दरदास, पद २२-६-२। दादू, पद १-५६-४
पालकी	सुरति निरति	१	मीरा, मिश्रित १६-४
फिरकिहो (गढी)	मानसिक वृत्ति या मन	१	कबीर, साखी ४-३३
बेड़ा (नाव)	सत, जीवन, शरीर, संसार, अनित्य, रामनामु जपि, मत जप तप ।	८	नानक, सिरी राग, सबद १९-१, रामकली ६-१। प्राणनाथ, किरंतन, प्रकरण १३३-६। कबीर, साखी १५-२७। नामदेव, पद ५०-३। नानक, बसंत, सबद ७-२, मारू २-९, सूही ४-१ ।
बोहिथ	राम, रामनाम, सिद्ध, शरीर सतिगुरु, हरि जी का नाव	८	कबीर, रमैनी, २०-६, साखी १५-४१। नानक, गउड़ी सबद ७-८, मारू असटपदी २-१, सबद १०-२, असट० २-६। दादू, साखी १०-१४। हरिदास, पद २-५-२।
बेरा	[illegible], जीवन, मनति नांव सुरति	४	कबीर, साखी १-१०। दादू, पद १-१२-४, १५-१७-१ हरिदास, पद १३-४-१।
रथ	शरीर	१	रैदास, पद ७५-१
कलाएं			
मूर्तिकला--			
देव	ब्रह्म	१	दादूपद ६-२४-१
देवल	शरीर या काया, मूर्तिपूजा	४	कबीर, साखी ६-१४, १२-७, २६-७। हरिदास, पद १७६-१-१
पुतला	जीवात्मा	१	रैदास, पद ४६-५
माटी को पुतरा	शरीर	१	रैदास, पद ३२-१

अप्रस्तुत	प्रस्तुत	प्रयुक्त स्थलों की संख्या ।	प्रयुक्त स्थल
वास्तुकला--			
कोट	माया,द्वन्द,काया,त्रिकुटी काजबा	५	कबीर,पद४-५,२५-२।जम्भ,पद६७-१।हरिदास पद ४५-१-२।नानक,सूही,पउड़ी५-१।
गढ़	शरीर,ब्रह्मस्थान,सहस्रार, जोबन,अमरगुफा,काया।	६	कबीर,पद २५-१,७२-३,१३०-३। साखी६-१८। दादू,पद ७-१७-१।रैदास,८-६-१५।
गेह	करमकोटि	१	कबीर,पद १०-३
घरीखाना	शरीर	१	रैदास,व पद १०३-८
देहुरा(देवालय)	मन,प्राण,शरीर,परमात्मा दशम द्वार(ब्रह्मरन्ध्र)	५	दादू,साखी १-७४,पद६-२४-१।नानक,गउड़ी, सबद१४-६।कबीर,साखी६-१४,२६-११।
भवन	हृदय,मन	२	दादू,पद १३-१-३ साखी१-८०।
मंदिर	शरीर,मनसा,हृदय	८	नामदेव,पद १४१-३।कबीर,पद ६-४,साखी १६-२२,१५-५५।रैदास,पद ८०-३।दादू,पद ८-३७-४,साखी४-२४५,४-२५२ ।
मसीति(मस्जिद)	शरीर,मन,काया,मिहर	४	कबीर,पद१२६-२।दादू,साखी१-७४,४-२१२। नानक,माझ,सलोकु१०-१ ।
महल	आराध्य,त्रिकुटी,हृदय, शरीर,बासणि,अंत:करण आत्मा,मोक्ष,देह ।	१०	नामदेव,पद५६-८।कबीर,पद१४४-७।दादू,पद १-६५-४,६-७-४,१०-२-६,२२-६-५,साखी७-७ नानक,मलार,सबद५-३।हरिदास,२-४-१, ५१-४-२ ।
मठ	मन की गति	१	कबीर,साखी १०-७
मढ़ोली(मठ)	शरीर	१	नानक,गउड़ी,सबद १४-४
संगीत कला--			
कंसा(कांस ताल)	शरीर,जीव या प्राण	२	कबीर,पद ११७-५।जम्भ,पद ,२५-६।
किंगरी	अनाहद,अनाहदनाद	२	कबीर,पद १३३-१,१४२-६।
गीत	उपदेश	१	कबीर,साखी ५-६

अप्रस्तुत	प्रस्तुत	कुल प्रयुक्त स्थलों की संख्या।	प्रयुक्त स्थल
गाजन	बैरागी	१	कबीर,साखी ३२-१३
यंत्र	शरीर	१	कबीर,साखी १६-१
डेरु(डमरू)	काम,क्रोध,अभिमान	१	कबीरद,पद हरिदास,पद ३३-१-३
ढोल	ज्ञान,मोह	२	कबीर,पद १४-२।हरिदास,पद३३-२-२
ढोल दमामा	अनाहद	१	मीरा,मेवबानी,शब्द ५-६
तबल	अनहद	१	कबीर,पद ४-७
ताल मजीरे		१	नानक,आसा,सबद४-१
तांति	रग(नाड़ियां)	१	कबीर,साखी २-१७
तूर	अनाहद नाद	२	कबीर,पद १०६-८,साखी ६-३६
तार	श्वास या प्राण	१	कबीर,साखी १६-१
धुनि	अनाहद नाद	१	हरिदास,पद १७६-५-२
बाजा	अनाहद नाद	२	कबीर,पद ५६-३,१४४-७
बांसि	चित्त	१	कबीर,साखी १-५
बेनु	अनाहद नाद	१	कबीर,पद १२२-१०
मादल	मनुष्य	१	दादू,साखी १२-१०२
रबाब	तन	१	कबीर,साखी २-१७
बेणि(बेणु)	अनाहद नाद	१	हरिदास,पद १४०-१-२
सींगी	सुम्नि(शून्य)मांझ रहाउं	२	कबीर,पद १४२-८।अन्यपद ५०-१

पर्वोत्सव

अप्रस्तुत	प्रस्तुत	कुल प्रयुक्त स्थलों की संख्या।	प्रयुक्त स्थल
अबीर	अरथ	१	हरिदास,पद १४०-२-१
गुलाल	गरब	१	हरिदास,पद १४०-२-१
पिचकारी	ध्यान धुनि	१	कबीर,पद १४४-३
फाग	आध्यात्मिक प्रसन्नता	१	हरिदास,पद १४०-३-२
मेला	दुनिया	१	कबीर,पद ८७-२
रोजा	सीहु	१	नानक,माझ,सलोकु १०-२।

अप्रस्तुत	प्रस्तुत	कुल प्रयुक्त स्थलों की संख्या ।	प्रयुक्त स्थल
पिजाडु	जिज्ञासु	१	नानक,गौड़ी,सबद ३-४
धुति	ब्रह्म ज्ञानोदय	१	कबीर,साखी, ३-१४
सुंनति(सुन्नत संस्कार)	धरम	१	नानक,माझ,सलोक १०-२
होरी	प्रेम साधना	१	कबीर,पद १४४-१
क्रीड़ाविनोद सम्बन्धी			
उपकरण ---			
अहेरा	साधना	१	कबीर,पद १३८-६
कागद की गुड़िया	तन,मन	२	दादू,पद १-२४-४। दादू,साखी १०-१५
गोटा(गेंद,गोला)	दुख,सुख	१	हरिदास,पद ३३-३-१
घर	प्रेम	१	हरिदास,पद ४६-३-२
घर चौथे(कोठा)	चेतन	१	हरिदास,पद ४६-४-१
चौपड़	प्रेमाभक्ति,चित्त	२	कबीर,साखी १-३२। हरिदास,पद ४६-४-१
चाल	चौरासी(योनियां)	१	हरिदास,पद ४६-३-१
जुगे ओगठि	साधना प्रक्रिया	१	हरिदास,पद ४६,१-२
दाव	दुख सुख	१	हरिदास,पद ४६-३-१
जुग	बोल	१	हरिदास,पद ४६-४-१
झूला	जीवन	२	सुन्दरदास,पद २-१-२,२-१३-८
तमाशा	आध्यात्मिक अनुभूति	१	कबीर,पद १५५-८
तिकठिया(खेल)	लव(त्रिगुणात्मक)	१	मीरा,मिश्रित १५-४
दुकठिया	काम क्रोध	१	मीरा मिश्रित १५-५
पाके(चौपड़ में जाना,घर)	सुरति	१	हरिदास,पद ४६-४-२
पेरना(हृदय,अभिलाष)	जीव,जीवन	३	कबीर,पद१२८-१०,साखी १५-४,१५-५५।

अप्रस्तुत	प्रस्तुत	कुल प्रयुक्त स्थलों की संख्या।	प्रयुक्त स्थल
पासा	कर्म,कूर,कपट,प्रेम,त्रिविधि ताप।	५	कबीर,पद ६०-८,६३-४,साखी १-३३।हरिदास पद ४६-३-१।
पाटो	प्रेम	१	रैदास,पद ७३-४
बाजी	जगु, संसार	४	रैदास,३२-७।दादू,पद १८-८-२,साखी १२-७६।हरिदास,२३-१-१
बाजीगरी	संसार	१	कबीर,पद ६०-१
बाजीगर की पुतली	माया	१	दादू,साखी १२-१०८।
मट्टी को खिलौना	देह	१	यारी,कवित्त ८-२
मुजरा	विषय वासना	१	नामदेव,पद २७-१
सौदे(सैर,तमाशा)	साधना का आनन्द	१	रैदास,पद ३५-११
सावज(शिकार)	मन	१	कबीर,पद १२४-४
सारी	प्राण	१	हरिदास,पद ४६-३-२

लोकविश्वास और मान्यतायें

अप्रस्तुत	प्रस्तुत	कुल प्रयुक्त स्थलों की संख्या।	प्रयुक्त स्थल
पिंगा(मूल)	मनुष्य	१	नानक,बिहागड़ा,सलोक१-१
पिंगा या सिकदार (कुलमियों की स्वामिनी)।	जीव	१	नानक,बिहागड़ा,सलोक१-२
पिंगुरी(मुर्गिनी)	जीव	१	नानक,बिहागड़ासलोक१-२
पिंगुरा(जिन्न)	गुरु(पुरु)	१	नानक,बिहागड़ा।सलोक१-२
डाकनी	माया	१	दादू,साखी१२-२४
भूत	पंच इन्द्रिय	१	दादू,साखी१०-५७
भूतिया	जीवन,मोह,संसार,जगु	५	कबीर,पद ६७-३।रैदास,पद१७-५।दादू,साखी१२-६हरिदास,पद२-६-१।नानक,सिरी,सबद.११-१।

अप्रस्तुत	प्रस्तुत	कुल प्रयुक्त स्थलों की संख्या ।	प्रयुक्त स्थल
चौहटै	त्रिकुटि	१	कबीर,साखी १-३२
धार	विषय	२	दादू,पद२०-५-४।नानक,माझ पउड़ी४-८
जहर फल	माया	१	हरिदास,पद २-८-५
जंजाली	विषय वासना	१	दादू,साखी १-८२
जमाती	पंच(ज्ञानेन्द्रियां)	१	दादू,साखी ४-२१२
टोटा(घाटा)	पाप कर्म	१	हरिदास,पद २८-२-२
ठाढ़ अमोलिक	परमात्मा	१	हरिदास,पद ४६-२-२
तत	बासण	१	हरिदास,पद ४५-१-२
तिवाई	त्रिताप	१	कबीर,पद १११
तीन ठकुराई	त्रिगुण	१	हरिदास,पद १७६-३-२
धन	हरि का नाम,आत्मानुभूति,आत्मानन्द,नराइंण,राम-नाम,परमात्मा।	७	कबीर पद २२-१,१८८-३।नामदेवपद१८५-४,१२८-१,रैदास,पद ३६-५।नानक,माझ,पउड़ी ३-५,सिरी,सबद २१-६ ।
धनु जोबनु	माया	१	नानक,सिरी,सबद ७-८
धूरि	क्षित्यादि(पंचभूत)	१	कबीर,साखी १५-४
निधि	रामनाम	१	कबीर,पद २२-६
निसरनी(सीढ़ी)	साधनाधार	१	नामदेव,पद ५६-८
परमनिधि	परम तत्व या ज्ञान	१	हरिदास,पद ४६-१-२
प्यास	आध्यात्मिक तृष्णा,अशांति,दर्शन,कामना,वैराग्य।	५	कबीर,साखी३-१६।हरिदास,पद१०३-१।रैदास,पद १३-१२।धन्ना,पद ७२-१०।
पूंजी	हरि का नाम,सांच,धन्न	३	कबीर,पद २२-४,१२६-४।हरिदास,पद१-५-१
पैंडी कथा	परमार्थ	१	हरिदास,पद १०६-१-२
पदारथ	राम,परम तत्व,मुक्ति,मानुष,पंच ज्ञानेन्द्रियां ।	६	कबीर,साखी१८-४,१८-६।नानक सिरी,सबद १२-५,मारू,असट पदीआं५-२२,माझ सलोक १-१।दादू साखी ४-२७३ ।

अप्रस्तुत	प्रस्तुत	कुल प्रयुक्त स्थलों की संख्या ।	प्रयुक्त स्थल
पेईअड़ा(पीहर) (मैका)	संसार	१	नानक,सिरी,सबद २४-८
पेवकड़ै(नैहर)	संसार	१	नानक,आसा,सबद २७-१
फांसी	करम	१	प्राणनाथ किरंतन,प्रकरण ३६-१०
बिसाहना	साधना की उपलब्धि	१	कबीर,साखी १-१५
बिरख या बिख	वासना,विषय,माया,बन्धन	७	कबीर,पद३९-५।हरिदास,पद२-७-६।दादूपद १-१०-६,२०-६-५साखी१-८०।सुन्दरदास १४-५- ५।नामदेव,पद २७-३
बिरख फल	कनक कांमिनी	१	कबीर,साखी ३०-९
बिरख के बन	संसार,बिखिया(विषय)	२	कबीर,साखी१९-४।नामदेव,पद६२-१
बिष बेलि	नारी,तीरथ ब्रत	२	सुन्दरदास,पद ९-२-२।कबीर,साखी २६-५
बिहु नाट	काम क्रोध	१	नानक,गउड़ी,सबद ६-८
बेट (मजूरी)	उपासना	१	कबीर,पद १११-७
ब्याजु	पाप,कर्मों का बंधाव	१	कबीर, पद १२६-२
बणिज	सांसारिक जीवन,करनी	१	कबीर,पद १२६-१
भावरि	संक्रमण या भ्रमण	१	कबीर,पद १०९-५
भंवरि	कष्ट या बाधा	१	कबीर,साखी २५-२
भीरव	अंजन,नादु	२	दादू,साखी१-६९।नानक,रामकली,सबद४-२
भार(बोझा)	अहंकार	१	कबीर,साखी १५-२७
भरु(भार)	पाप	१	प्राणनाथ,किरंतन,प्रकरण१३३-६
मदन(मोम)	मुद्रा	१	कबीर,पद ५१-६
मूल	संचित पुण्य,मनुष्य देह	१	कबीर,पद १२६-२
रंग	प्रेम	१	दादू,पद १-६७-२
रासि(पूंजी)	बीज,पिंड	१	नानक,गउड़ी१३-१२
लाहा(लाभ)	सुकृत	१	हरिदास,पद १७२-२-१

अप्रस्तुत	प्रस्तुत	कुल प्रयुक्त स्थलों की संख्या।	प्रयुक्त स्थल
बिणजो मठो	अच्छा कर्म	१	हरिदास,पद १७८-२-१
बस्त(परमतत्व)	ध्येय	१	दादू,पद ६-१८-३
मित	आत्मज्ञान,अमल	२	हरिदास,पद १५-२-२,२२-१-१
सउदागरी	मुक्तिसाधन(शास्त्रश्रवण)	१	नानक,सोरठि,सबद २-६
सडि(चिंता)	विरह	१	कबीर, पद १३५-६
साच(द्रव्य)	सांच(सत्य)	१	हरिदास,पद १०३-२-१
सारी(बिसात)	शरीर	२	हरिदास,पद४६-१-२।कबीर,साखी १-३३
साहुरै(ससुराल)	परलोक	१	नानक,तिलंग सिरी,सबद २४-८
सूआ	विपत्ति	१	कबीर,साखी १५-४१
सलोना	मनुष्य,जन्म,जीवन	२	हरिदास,पद १-२-५।दादू,साखी २-६६
हलाहल	विषय	१	दादू,साखी १२-६२

व्यक्ति विशेष(पुरुष वर्ग)--

पौराणिक--

अप्रस्तुत	प्रस्तुत	कुल प्रयुक्त स्थलों की संख्या।	प्रयुक्त स्थल
इन्द्र	मन	१	हरिदास,पद १३०-४-१
कान्ह	साधक-योगी,जीव,शिवतत्व	२	कबीर,पद १३१-६,१३१-१०
गोविंद	मन	१	कबीर,साखी २६-६
गोरख	मन	१	कबीर साखी २६-६
नारद	मन	१	नानक,आसा,सबद४-२
ब्रह्मा	आत्मा या माया	१	नानक,आसा,सबद२०-१
महेश	आत्मा	१	दादू,साखी ४-२४५-१
वासदेव	जीव	१	दादू,साखी४-२७६
शिव	गोव्यंद	१	दादू,साखी८-११

सामान्य

अप्रस्तुत	प्रस्तुत	कुल प्रयुक्त स्थलों की संख्या।	प्रयुक्त स्थल
कोठरी	काल	३	कबीर,रमैनी १२-१,साखी १६-३।दादू,पद८-१०

अप्रस्तुत	प्रस्तुत	कुल प्रयुक्त स्थलों की संख्या।	प्रयुक्त स्थल
अमली	कलक रामभक्त,हरि	३	[illegible]दादू,साखी३-१३५। नानक,गउड़ी,सबद १-१,१-१
अंधे	आत्मा,अन्तर्यामी	१	कबीर,पद १३७-२
अनबीठा	जीव(आत्मा)अन्तर्यामि	१	कबीर,पद १२२-६
अगधार	चेतनि (आत्मा	१	कबीर,साखी ६४-२५
आशिक	जीवात्मा,साधक या भक्त	२	दादू,साखी३-१३७,४-२२१
अरि आतुर	विकार	१	हरिदास,पद १६७-१-३
औषध	मन	१	कबीर,साखी २६-६
उमराव	काल	१	मीरां,मेघवाणी,शब्द५-१३
कंता	जीव	१	कबीर,पद १२४-२
कनिहार(केवट)	सतसंगति,गुरु	२	सुन्दरदास,२२-८-२।मीरां,उपदेश,शब्द१६-७
कसौटीहार	हरि	१	रैदास,पद ७२-३
पांच (कहार)	पंच ज्ञानेन्द्रियां	१	मीरां,मिश्रित १६-४
कसाई	विरह	१	दादू,पद ६-५-४
कलाल	गुरु,ब्रह्म या व्यापक चेतन	२	कबीर,साखी१४-३३।दादू,साखी४-२०१
काजी	शिव	१	कबीर,पद ४१-२
कामी दुरित	नामदेव	१	नामदेव,पद११५-५
किरसाना	पंच ज्ञानेन्द्रियां,कर्मेन्द्रियें (बुद्धी होना)करणी, परमात्मा।	४	कबीर,पद ४१-३।धन्ना,पद ४६-३।नानक, सोरठि,सबद २-१,सिरी,सबद १३-६
कीर	काल	१	कबीर,साखी १६-३८
कुलाल	ब्रह्म	२	दादू,पद ६-२३-३।सुन्दरदास१५-१-१
कुम्हार	ब्रह्म	१	मीरां,कवित्त १२-१
कुटुंब	काम,पंचज्ञानेन्द्रिय या इंद्रियां	२	दादू,पद १-४०-५।कबीर,पद १३८-४

अप्रस्तुत	प्रस्तुत	कुल प्रयुक्त स्थलों की संख्या ।	प्रयुक्त स्थल
जेठ	जरावस्था,ज्ञान	१	कबीर,पद १३५-३
जोगी	आतम,परमेश्वर,मन,साधक, धर्मगुरु ये ।	५	दादू,पद६-१८-२ साखी १२-७४।कबीर,पद १५१-१,साखी २-५,जम्भ,पद४६-३।हरिदास, पद१७६-६-२ ।
जौहरी	मन,पारिख,सन्त या भक्त ।	३	कबीर,साखी १८-१।दादू,साखी १०-७३,१२-८८ ।
झींवर	काल	१	कबीर,साखी १६-७
[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
टांडो(बंजरों का समूह)	शरीर,देह साँस	७१	कबीर,पद १२६-७
ठग	पंच ज्ञानेन्द्रियां,हरि,ज्ञानी माया ।	४	नामदेव,पद ६२-१।कबीर,पद४६-१।सुंदरदास १३-१-३।
ठाकुर	हरि	१	कबीर,पद ३८-३
ढिंभक	जीव	१	हरिदास,पद १ -१-२
डोलणहार	मन	१	कबीर,साखी १२-६
ढुंढावंत	नामदेव	१	नामदेव,पद ११५-२
(पंच)तस्कर	ज्ञानेन्द्रियां	१	नानक,परभाती,विभास,सबद ७-५
तोडणहारा	प्रभु	१	नानक,सूही,सबद ६-७
दोयफल	सुख दुख का द्वन्द्व,माया, काम क्रोधादि ।	२	कबीर,पद ५६-२।हरिदास,पद१६७-२-१
दरवानी	दुःख सुख	१	कबीर,पद २५-३
दरबी	हरि	१	नामदेव,पद १३०-१
दवादु	दरद	१	नानक,सूही,सलोक८-३

अप्रस्तुत	प्रस्तुत	कुल प्रयुक्त स्थलों की संख्या ।	प्रयुक्त स्थल
दाता	परमात्मा,गुरु	२	कबीर,पद १८८-३।नानक,माझ,सलोक १-१।
दासा	जीवात्मा	१	कबीर,पद १८-४
दुंदर	परमात्मा,परमेश्वर	२	कबीर,पद १५-१,१०६-६
दुसटा(दुष्ट)	कामादि विकार	१	नानक,बसंत,सबद ६-१
देवाना(दिवाना)मैं(भक्त)		१	नानक,तिलंग,सबद२-२
देवर	योगी,मोक्ष या काम	१	कबीर,पद १३५-४
देवर जेठ	सांसारिक विकार	१	नानक,सोरठि,सलोक१-६
धुतारे(ठग)	परमात्मा	१	दादू,पद ६-२२-१
नरेस	जीव	१	सुन्दरदास२३-३१-२
नरपति	जीव	१	रैदास,पद १७-५
नुरिजनर	नामदेव	१	नामदेव,पद ११५-३
नचटा	मन	१	दादू,साखी१०-५६
नट	मन	१	कबीर,पद १४-१
नटवर	शरीर,गोविंद	१	कबीर,पद १२२-१०
नाह(पति)	राम या परमेश्वर,परमात्मा	२	कबीर,पद १३५-६।मीरा मिश्रित१६-१०
नांव(नाव)	पंच ज्ञानेन्द्रियां तथा अंत:- करण चतुष्टय ।	१	हरिदास,पद १७६-६-१
नाकसु	जीव	१	कबीर,पद १२६-३
निधन	भक्त	१	कबीर,पद २२-६
नेहु(नायक)	दादू	१	नानक,आसा,सलोक२१-२
परधान	पंच ज्ञानेन्द्रियां	१	दादू,साखी४-११७
परवार(परिवार)	नवरिवैरी(कुमाबुद्धि)	१	नानक,सिरी,सबद७-१६
परदेसी	जीवात्मा	१	दादू,पद ८-१८-४

अप्रस्तुत	प्रस्तुत	कुल प्रयुक्त स्थलों की संख्या ।	प्रयुक्त स्थल
पंथी	मानव	२	कबीर,साखी १६-३०।दादू,पद७-७-१
पंच पहरुआ	पंच ज्ञानेन्द्रियां	२	कबीर,पद ८०-५।हरिदास,पद१५३-४-१
पंगुल	जीवन्मुक्त	१	कबीर,साखी १-१२
पति	ब्रह्म,प्राण	२	कबीर,साखी ६-१५।दादू,पद ८-१६-५
पारिख	ज्ञानी	१	कबीर,साखी १८-४
पायक(भूत)	पानी,अग्नि,पवन	१	मीरा,मेवबानी,शब्द ५-८
पारधी	शरीर,काल,प्राणी,ज्ञानी ज्ञान ।	५	कबीर,पद १२२-६,१२४-५,१३८-५,साखी १६-३७,दादू, साखी१२-१४७ ।
पातिसाहो	रामदेव,राम	२	कबीर,पद ५-४,दादू,पद ७-२३-१
पांथी(पंथी)	जीवात्मा	१	दादू,पद ८-४-२।
पिता	पारब्रह्म,संतोष	२	नामदेव,पद१०-८।नानक,मलहो,सबद३-१
पिसण	पांच परबल(पंच इन्द्रियां)	१	हरिदास,पद १६४-१-३।
पंच पियारे	पंच विकार	१	कबीर,साखी १४-१०
पिया	हरि,रामा,परमात्मा,शरीर	६	कबीर,पद६-५,११-१,१७-१,१७-६,१०६-१, १३६-१।
पिर	परमात्मा	१	नानक,बारा,सबद २२-५
पीरू	प्रभु	१	नानक,माझ,सलोक,१०-३
पीव	परमेश्वर	१	कबीर,साखी२-२२
पीलवान	प्राण	१	सुन्दरदास२१-१३-४
पुरिख	ब्रह्म	१	कबीर,पद १०६-७
पूत	जीव,ज्ञान पुत्र,विविध देवी-वाचक,ज्ञान।	३	कबीर,पद११६-३,११८-८,साखी ३-२०
पैकार(व्यापारी)	नारायण	१	मीरा,मेवबानी,शब्द,५-३-८
प्रजा	इन्द्रियां	१	दादू,साखी१२-३२

कोश ग्रन्थ

आप्टे संस्कृत कोश, संस्कृत इंग्लिश डिक्शनरी

प्रामाणिक हिन्दी कोश -- श्री रामचन्द्र वर्मा

संक्षिप्त हिन्दी शब्द सागर -- सं० रामचन्द्र वर्मा,नागरी प्रचारिणी सभा, काशी,२०१४वि० ।

हिन्दी विश्वकोश,खण्ड-७

हिन्दी साहित्य कोश(भाग१) पारिभाषिक शब्दावली। -- प्रधान संपादक धीरेन्द्र वर्मा,ज्ञानमण्डल लि० वाराणसी-१, द्वि०सं०,सम्वत् २०२० ।

हिन्दी साहित्य(द्वितीय खण्ड) -- सं०डा० धीरेन्द्र वर्मा,ब्रजेश्वर वर्मा,पं०उमाशंकर शुक्ल,भारतीय हिन्दी परिषद्,प्रयाग ।

जायसी साहित्य में अप्रस्तुतयोजना -- विद्याधर

मध्ययुग के हिन्दी सूफी काव्य में अप्रस्तुतविधान । -- डा० रामकुमारी मिश्र

पत्रिकाएं

आलोचना, पूर्णांक,३१ नवांक, १ जुलाई १६६४ ।

दृष्टिकोण(अंक २ सत्र १६७१-७२)ईश्वरशरण डिग्री कालेज,इलाहाबाद,शक१८६३-६४।

सम्मेलन पत्रिका, भाग ५१ संख्या ३-४, हिन्दी साहित्य सम्मेलन,प्रयाग ।

सम्मेलन पत्रिका, भाग ५४ संख्या१-२ , हिन्दी साहित्य सम्मेलन,प्रयाग । १८६०शक १६६६ई०

सम्मेलन पत्रिका,भाग ५६ संख्या१ पौष-फाल्गुन, हिन्दी साहित्य सम्मेलन,प्रयाग, शक १८६१ ।

हिन्दी अनुशीलन -- धीरेन्द्र वर्मा विशेषांक

-0-